दो शब्द

हिंदी भाषा-शिक्षण पर अभी तक बहुत कम सामग्री प्रकाशित हुई है। जो कुछ प्रकाशित भी है, ऐसी नहीं है जिसमें आधुनिक भाषा-शिक्षण के मुख्य सिद्धांतों को पृष्ठभूमि में रखते हुए, हिंदी भाषा-शिक्षण की प्रमुख समस्याओं पर मातृ-भाषा-शिक्षण तथा अन्य भाषा-शिक्षण, दोनों ही दृष्टियों से विचार किया गया हो। प्रस्तुत पुस्तक इसी कमी को दृष्टि में रखते हुए लिखी गई है।

इस पुस्तक के आरंभ के अध्यायों में पृष्ठभूमि के रूप में उन सिद्धांतों का विवेचन है जिनकी जानकारी हिंदी भाषा-शिक्षण में अपेक्षित है। इस अंश में उदाहरण प्राय: हिंदी से ही लिये गये हैं। यह अंश एक प्रकार से हिंदी भाषा-शिक्षणविज्ञान की भूमिका है। इसके बाद हिंदी भाषा-शिक्षण की कुछ मुख्य समस्याओं पर विस्तार से विचार किया गया है। इसके पश्चात् दृश्य-श्रव्य और प्रोद्योगिकी विषयक प्रश्नों का विवेचन है, तथा अंत में भाषा-मूल्यांकन पर विचार किया गया है।

आशा है, हिंदी भाषा-शिक्षण में रुचि रखनेवालों के लिए पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

—लेखक द्वय

विषय-सूची

दो शब्द 3

1. भाषा-शिक्षण और उसका उद्देश्य (भोलानाथ तिवारी) 9-15
भाषा-शिक्षण—भाषा—भाषा के प्रकार—भाषा-शिक्षण का उद्देश्य।

2. भाषा-शिक्षण : अर्जन और अधिगम (भोलानाथ तिवारी) 16-29
मातृभाषा-अर्जन—अन्य भाषा-अधिगम—पाँच पक्ष—मातृ-भाषा-शिक्षण और अधिगम।

3. भाषा-कौशल (कैलाशचन्द्र भाटिया) 30-40
भाषा-कौशल के भेद—प्रधान कौशल—गौण कौशल—उच्चरित तथा लिखित भाषा तथा भाषा-कौशल—उच्चरित भाषा से संबंधित कौशल—लिखित भाषा से संबंधित कौशल—विभिन्न भाषा-कौशल—सुनना—बोलना—पढ़ना—लिखना—मातृभाषा के उद्देश्य और भाषा-कौशल—स्तर तथा भाषा कौशल—प्राथमिक स्तर—माध्यमिक तथा स्नातकीय स्तर—अन्य भाषा-शिक्षण—माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी—उच्च माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी।

4. भाषा-शिक्षण-पद्धतियाँ (भोलानाथ तिवारी) 41-48
मातृभाषा-शिक्षण-पद्धतियाँ—बालोद्यान (किंडरगार्टन)-पद्धति—मांटेसरी-पद्धति—डाल्टन-पद्धति—खोज (ह्यूरिस्टिक)-पद्धति—अप्रत्यक्ष भाषा-शिक्षण-पद्धति—अन्य भाषा-शिक्षण-पद्धतियाँ।

5. व्यतिरेकी विश्लेषण (कैलाशचन्द्र भाटिया) 49-67

तुलनात्मक अध्ययन और व्यतिरेकी विश्लेषण—मातृभाषा/अन्य भाषा तथा व्यतिरेकी विश्लेषण—भाषा-संपर्क तथा व्याघात—मातृभाषा का व्याघात—व्याघात पर नियंत्रण तथा शक्षिक पक्ष—आधार-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा—व्यतिरेकी विश्लेषण-पद्धति—व्यतिरेकी विश्लेषण : ध्वनि व्यवस्था—उद्देश्य—हिंदी-अँग्रेज़ी—हिंदी तथा भारतीय भाषाएँ—व्यतिरेकी विश्लेषण तथा उच्चारण-शिक्षण—व्यतिरेकी विश्लेषण और शब्दावली—व्यतिरेकी विश्लेषण : लेखन व्यवस्था—व्यतिरेकी विश्लेषण : व्याकरणिक व्यवस्था—भाषा-शिक्षण में व्यतिरेकी विश्लेषण की उपयोगिता—निष्कर्ष तथा सीमाएँ।

6. सामग्री-निर्माण (कैलाशचन्द्र भाटिया) 68-77

सामग्री-निर्माण के आवश्यक तत्त्व—अन्य भाषा-शिक्षण तथा सामग्री-निर्माण—श्रव्य सामग्री-निर्माण—दृश्य सामग्री-निर्माण—पाठ्य-पुस्तक—पत्राचार पाठ्य-सामग्री—अभिक्रमित अध्ययन पाठ्य-सामग्री—सामग्री-निर्माण तथा शिक्षण-संकेत—अनुस्तरण—निष्कर्ष।

7. अभिरचना-अभ्यास (भोलानाथ तिवारी) 78-84

अभिरचना-अभ्यास के मुख्य तत्त्व—अभिरचना-अभ्यास के प्रकार—अभिरचना-अभ्यास के लाभ।

8. अशुद्धि-विश्लेषण (भोलानाथ तिवारी) 85-103

अशुद्धि-विश्लेषण और अशुद्धि-शोधन की स्थितियाँ—अशुद्धियाँ—मातृभाषा में होनेवाली अशुद्धियाँ—चूक—भूल—त्रुटि—भाषिक व्याघात जनित त्रुटियाँ—अतिसामान्यीकरण जनित त्रुटियाँ—अन्य भाषा में होनेवाली अशुद्धियाँ—उच्चारण—शब्द-रचना—रूप-रचना—शब्द-प्रयोग—वाक्य—मुहावरे—लोकोक्ति—सामाजिक अर्थ की भूलें—नियमों-उपनियमों का अज्ञान या अधूरा ज्ञान—नियमों-उपनियमों का अधूरा प्रयोग—अपवादों का अज्ञान अथवा सामान्यीकरण—भ्रांत धारणा—अशुद्धि-विश्लेषण का उद्देश्य—अंतरभाषा।

9. हिंदी उच्चारण-शिक्षण (भोलानाथ तिवारी) 104-111

हिंदी उच्चारण-शिक्षण : अन्य भाषा के रूप में—मातभाषा के

रूप में—सभी हिंदी बोली-भाषियों में प्राप्त भूलें—कुछ हिंदी बोली-भाषियों में प्राप्त भूलें।

10. नागरी लपि-शिक्षण (भोलानाथ तिवारी) 112-116

नागरी-लिपि—मानक रूप—मूलव्यंजन—संयुक्त व्यंजन—मानकेतर रूप—वर्गीकरण—मुक्तता और बद्धता के आधार पर—रेखाओं (स्ट्रोक) की सख्या के आधार पर—मातृभाषा शिक्षण में—अन्य भाषा-शिक्षण में।

11. हिंदी वर्तनी-शिक्षण (भोलानाथ तिवारी) 117-124

हिंदी वर्तनी-शिक्षण—लिपि के समुचित ज्ञान का न होना—लिपि में अस्पष्टता—संधि के नियमों की जानकारी का अभाव—शब्द-रचना की जानकारी का अभाव—वर्तमान उच्चारण का प्रभाव—हिंदी की ध्वनि-व्यवस्आ की समुचित जानकारी का अभाव—कुछ शब्दों की कई वर्तनियों का प्रचलन।

12. व्याकरणिक-शिक्षण (कैलाशचन्द्र भाटिया) 125-132

व्याकरण का महत्त्व और उद्देश्य—व्याकरण-शिक्षण की विभिन्न विधियाँ—सूत्र पद्धति—पाठ्य-पुस्तक पद्धति—विश्लेषणात्मक पद्धति—प्रासंगिक पद्धति—प्रयोग पद्धति—शिक्षण-पद्धतियाँ—व्याकरण के विभिन्न स्वरूप—प्रस्तुतीकरण की विधि—व्याकरण किन कक्षाओं में पढ़ाया जाए—कक्षा तथा पद्धति—व्याकरण-शिक्षण में सतर्कता।

13. शब्दावली का शिक्षण (कैलाशचन्द्र भाटिया) 133-144

बेसिक शब्दावली का आधार—बेसिक शब्दावली और पर्याय—समान शब्दावली—हिंदी तथा अन्य किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली का व्यतिरेकी अध्ययन—प्रयोग-भिन्नता—कोशीय अर्थ के साथ प्रयोगार्थ—शब्दावली का चयन और आवृत्ति—शब्द-संरचना—शब्द-शिक्षण तकनीक—संदर्भ से अर्थ निकालना—व्याख्या—विलोम—पर्याय—व्युत्पत्ति।

14. दृश्य-श्रव्य तथा प्रोद्योगिकी (कैलाशचन्द्र भाटिया) 145-196

आवश्यकता तथा उपयोगिता—दृश्य उपकरण—पट्ट (बोर्ड)—श्याम पट्ट (ब्लैक बोर्ड)—नम्दा पट्ट (फेल्ट बोर्ड)—

चुम्बकीय पट्ट (मैग्नेटिक बोर्ड)—चित्रादि—चित्र तथा रेखाचित्र—छायाचित्र (फ़ोटो)—व्यंग्य चित्र (कार्टून) पोस्टर —प्रतिकृति—सारणी तथा मानचित्र—फ्लैश कार्ड—प्रक्षेपक —ओवरहेड प्रक्षेपक—स्लाइड प्रक्षेपक—अपारदर्शी प्रक्षेपक —चित्रपट्टी (फ़िल्म स्ट्रिप)—श्रव्य—लिंग्वा रिकार्ड—टेप-रिकार्डर—रेडियो—स्पर्श उपकरण—दृश्य-श्रव्य उपकरण—चलचित्र—दूरदर्शन—प्रौद्योगिकी—अभिक्रमित अध्ययन—अभिक्रमित अध्ययन के प्रकार—रेखीय प्रोग्रामिंग—शाखीय प्रोग्रामिंग—शाखीय पद्धति की विशेषताएँ—प्रोग्राम तथा शिक्षक की उपस्थिति—प्रोग्रामों में अनुदेशों का महत्त्व—भाषा-शिक्षण तथा अभिक्रमित अध्ययन—जाँच के आधार पर प्रोग्राम—शिक्षण मशीन—अन्य शिक्षण विधियाँ—भाषा-प्रयोगशाला—कन्सोल आदि—प्रोग्राम के अनुसार—विद्यार्थी की क्रियाशीलता के अनुसार—श्रव्य क्रियाशील प्रयोगशाला —प्राभ्यास प्रकार—टेप पाठों की रिकार्डिंग—मास्टर टेप लाइब्रेरी—भारत में भाषा-प्रयोगशालाओं का भविष्य—बेसिक प्रयोगशाला।

15. भाषा-मूल्यांकन (भोलानाथ तिवारी) 197-201

मूल्यांकन, परीक्षण, परीक्षा—मूल्यांकन का उद्देश्य—मूल्यांकन के प्रकार—स्वरूप के आधार पर मूल्यांकन—अनुवाद—व्याकरणिक विश्लेषण—शब्दार्थ और शब्द-प्रयोग—रूपांतरण —रिक्त पूर्ति—अपठितांश—श्रुतलेख—मौखिक परीक्षा—योजन—वियोजन—निर्धारण।

सहायक ग्रंथ 202

भाषा-शिक्षण और उसका उद्देश्य

1

0.0. 'भाषा-शिक्षण'

भाषा-शिक्षण का अर्थ है 'भाषा की शिक्षा देना'। भाषा की शिक्षा देने में चार बातें आती हैं : सुनने की शिक्षा, बोलने की शिक्षा, पढ़ने की शिक्षा और लिखने की शिक्षा। इन्हें क्रमशः सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना या श्रवण, भाषण, पठन (अथवा वाचन) तथा लेखन कहते हैं। संक्षेप में **भाषा-शिक्षण से आशय है किसी भाषा के बोलने, सुनने, पढ़ने और लिखने की शिक्षा देना।** इसमें बोलने अथवा 'भाषण' का अर्थ है स्वर-व्यंजन के उच्चारण, संगम, अनुतान, बलाघात तथा व्याकरणिक नियमों आदि की दृष्टि से ठीक बोलना; 'श्रवण' का अर्थ है किसी को बोलते सुनना तथा सुनकर उसे समझ लेना; 'पठन' का अर्थ है मौन या मुखर रूप से किसी लिखित सामग्री को पढ़ना और उसे समझ लेना; तथा 'लेखन' का अर्थ है वर्तनी और व्याकरण आदि की दृष्टि से शुद्ध रूप में तथा अर्थ की दृष्टि से तर्कसंगत रूप में लिखना। किसी भाषा के सर्वांगीण शिक्षण में उपर्युक्त सारी बातें आती हैं, किंतु भाषा-शिक्षण, भाषा-शिक्षार्थी की आवश्यकतानुसार कभी तो इन चारों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) की शिक्षा देता है, और कभी इनमें से तीन या दो को ही चुन लेता है। इस दृष्टि से यहां भाषा और उसके प्रकारों पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक होगा।

1.0. भाषा

भाषा मानव-मुखोच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके सहारे समाज-विशेष के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं।[1]

1. इसकी विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए 'भाषाविज्ञान' (भोलानाथ तिवारी) का पहला अध्याय।

भाषा-शिक्षण के प्रसंग में भाषा की निम्नांकित विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है :

1. भाषा मानव-मुख से उच्चरित होती है।
2. भाषा के सभी शब्द प्रतीक होते हैं। उदाहरण के लिए 'फूल' एक चीज़ का प्रतीक है, तो 'फल' दूसरी चीज़ का, और 'कांटा' तीसरी चीज़ का।
3. ये प्रतीक यादृच्छिक(arbitrary) होते हैं। प्रतीकों के यादृच्छिक होने का अर्थ यह है कि उनका अर्थ से कोई 'भौतिक' या 'सहज' संबंध नहीं होता, बल्कि 'माना हुआ' होता है। अर्थात् 'फूल' शब्द, या उसकी ध्वनियां फ+ऊ+ल से 'फूल' नाम की वस्तु का कोई भौतिक या सहज संबंध नहीं है। यह संबंध समाज द्वारा माना हुआ है। कल, यदि समाज चाहे तो उस चीज़ के लिए 'फूल' शब्द को छोड़कर किसी अन्य शब्द को स्वीकार कर सकता है।
4. भाषा में एक व्यवस्था होती है। व्याकरण के नियम उसी व्यवस्था को प्रकट करते हैं। भाषा-शिक्षक का काम भाषा-शिक्षार्थी के मन में इस व्यवस्था को बिठला देना है।
5. मूलतः, भाषा वक्ता और श्रोता के बीच की चीज़ होती है। लेखक और पाठक के बीच की लिखित भाषा, वक्ता-श्रोता के बीच की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित होती है। इसीलिए भाषा सिखाने में सुनने-बोलने का विशिष्ट स्थान है।
6. भाषा अर्जित की जा सकती है या सीखी जा सकती है। मातृभाषा समाज से अर्जित की जाती है और अन्य भाषा व्यक्ति एवं पुस्तक आदि से सीखी जाती है।
7. भाषा में सर्जनात्मकता होती है, अर्थात् भाषा की व्यवस्था के आधार पर वक्ता या लेखक, संदर्भ, परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार नित नये-नये वाक्य बना सकता है, तथा बनाता रहता है।

1.1. भाषा के प्रकार

उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त भाषा के कई भेद या प्रकार हो सकते हैं, जिनमें से इस प्रसंग की दृष्टि से मुख्य नीचे दिए जा रहे हैं।

'भाषा' शिक्षण की दृष्टि से मूलतः दो प्रकार की होती है : 'मातृभाषा' (Mother tongue) तथा 'अन्य भाषा' (Other tongue)।

मातृभाषा(Mother tongue)—'मातृभाषा' का मूल अर्थ है वह भाषा जो बच्चे की मां की भाषा होती है। बच्चा इस भाषा को अपनी मां से तथा उसके आस-पास के समाज से सहज रूप में अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धीरे-धीरे सीखता है। इस प्रकार मातृभाषा बच्चे की अपनी भाषा होती है।

'मातृभाषा' तथा 'अन्य भाषा' में मुख्यतः ये अंतर हैं : (1) मातृभाषा मूलतः अपनी भाषा होती है जबकि अन्य भाषा अपनी नहीं होती। (2) मातृभाषा का अर्जन बच्चा अपने घर, अपने समाज से करता है, किंतु अन्य भाषा अध्यापक, पुस्तक या अन्य समाज आदि से सीखी जाती है। (3) बच्चा पहले मातृभाषा का ही अर्जन करता है, अतः उसकी जड़ें बच्चे के मस्तिष्क में गहरी होती हैं, और अन्य भाषा, अपनी मातृभाषा के आधार पर ही सीखी जाती है। परिणाम यह होता है कि लिखने तथा बोलने की जो दक्षता मातृभाषा में प्राप्त होती है, वह प्रायः अन्य भाषा में नहीं; क्योंकि मातृभाषा सहज रूप से अर्जित की हुई होती है, जबकि अन्य भाषा एक प्रकार से ऊपर से आरोपित होती है।

प्रथम भाषा (First language)—कभी-कभी मातृभाषा और प्रथम भाषा में अंतर करते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी भाषाभाषी क्षेत्र के बच्चे प्रथम भाषा के रूप में भोजपुरी, अवधी, ब्रज, हरियाणी आदि विभिन्न बोलियों को अपने घर पर अपने आस-पास के समाज में अर्जित करते हैं, और स्कूल जाने पर धीरे-धीरे हिंदी सीखते हैं तथा हिंदी को अपनी मातृभाषा कहते हैं। अर्थात् जब, मातृभाषा से भिन्न, कोई बोली, मातृभाषा के सीखने के पूर्व अपनी मां तथा अपने समाज से अर्जित की जाए तो उसे प्रथम भाषा कह सकते हैं। यहां यह संकेत्य है कि ऐसे लोगों की वास्तविक मातृभाषा वह प्रथम भाषा या बोली (जैसे भोजपुरी ब्रज आदि) ही होती है, और तथाकथित मातृभाषा (जैसे मानक हिंदी) एक प्रकार से अन्य भाषा होती है, और यही कारण है कि उसे सीखने में प्रथम भाषा बहुत कुछ वैसे ही व्याघात उपस्थित करती है जैसे अन्य भाषा सीखने में मातृभाषा।

अर्थात् जो लोग, बचपन में एक भाषा अर्जित करते हैं, तथा बड़े होने पर वही उनकी अपनी भाषा रहती है, उनके लिए 'प्रथम भाषा' तथा 'मातृभाषा' दोनों एक ही होती हैं। इसके विपरीत जो लोग बचपन में एक 'बोली' अर्जित करते हैं तथा बड़े होने पर अपनी भाषा के रूप में एकभाषा 'सीखते' हैं, उनकी प्रथम भाषा तो वह बोली[1] होती है तथा उनकी बाद में सीखी जाने वाली अपनी भाषा, मातृभाषा होती है। हिंदी की यह दूसरी ही स्थिति है। अर्थात् **हिंदी भाषी लोगों में अधिकांश की प्रथम भाषा विभिन्न बोलियां हैं, तथा मातृभाषा हिंदी है।** शहरों में बसे उन थोड़े परिवारों की स्थिति अपवाद की हो सकती है जिनमें कोई बोली न बोली जाकर प्रायः मानक हिंदी ही बोली जाती है। यहां प्रथम भाषा का प्रयोग मातृबोली के लिए किया गया। भाषा-शिक्षण में प्रथम भाषा (भा-1) मातृभाषा को कहते हैं, तथा द्वितीय भाषा (भा-2)

1. इसे मातृबोली कहना उपयुक्त होगा। इस रूप में हिंदी भाषियों की मातृबोलियां तो भोजपुरी, ब्रज, अवधी आदि हैं और मातृभाषा हिंदी है।

बाद में सीखी जाने वाली भाषा को। ऐसे ही अनुवाद में कभी-कभी प्रथम भाषा स्रोत भाषा को कहते हैं तथा द्वितीय भाषा लक्ष्य भाषा को।

अन्य भाषा (Other tongue)—मातृभाषा के अतिरिक्त हर भाषा अन्य भाषा होती है। अन्य भाषा में दो प्रकार की भाषाएं आती हैं : **द्वितीय भाषा** तथा **विदेशी भाषा**। उदाहरण के लिए अंग्रेजी इस समय भारतवासियों के लिए द्वितीय भाषा है (यद्यपि जब पहले-पहले यहां आई थी तो विदेशी भाषा थी) तो रूसी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि विदेशी भाषाएं हैं। **द्वितीय भाषा** तथा **विदेशी भाषा** में निम्नांकित अंतर हैं : (1) द्वितीय भाषा, मातृभाषा जैसी बिल्कुल निकट की न होने पर भी विदेशी भाषा की तरह बिल्कुल अलग की नहीं होती। (2) आपसी प्रभावों के कारण मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा में शब्द-भंडार के स्तर पर समानता होती है। यों ध्वनि या व्याकरण आदि अन्य स्तरों पर भी समानताएं हो सकती हैं। उदाहरण के लिए हिंदी-अंग्रेजी में ध्वनि, व्याकरण (वाक्य-रचना) तथा शब्द-भंडार में इन तीनों स्तरों पर कई समानताएं हैं। (3) विदेशी भाषा सीखना बहुत आवश्यक नहीं होता, किंतु उसकी तुलना में द्वितीय भाषा सीखना प्रायः आवश्यक होता है। उसके बिना अपने देश और समाज में भी कभी-कभी काम नहीं चलता या मुश्किल से चलता है। इस प्रकार द्वितीय भाषा सीखने के पीछे एक सामाजिक दबाव होता है जो विदेशी भाषा सीखने के पीछे नहीं होता। इस समय भारत में अंग्रेज़ी की यही स्थिति है। अनेक तकनीकी विषयों में अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हो सकता है, आगे चलकर हिंदी भारत के हिंदीतर भाषाभाषियों के लिए अंग्रेजी की स्थानापन्न द्वितीय भाषा बन जाए। (4) मातृभाषा व्यक्ति की अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। द्वितीय भाषा भी इस दृष्टि से काफी निकट होती है। लोग कभी-कभी 'द्वितीय भाषा' में साहित्यिक रचनाएं भी करते हैं। उदाहरण के लिए बहुत-से भारतीयों ने अंग्रेज़ी में कविता, कहानी, उपन्यास आदि लिखे हैं, और लिख रहे हैं। बहुत-से हिंदीतर भारतीय (पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मराठी आदि भाषी) इसी प्रकार हिंदी में लिख रहे हैं, किंतु विदेशी भाषा में ऐसा प्रायः नहीं होता। अपवाद की बात और है। इस तरह द्वितीय भाषा का सर्जनात्मक लेखन में प्रयोग होता है, किंतु विदेशी भाषा का नहीं। (5) विदेशी भाषा अन्य देशों की संस्कृति को समझने का माध्यम होती है, किंतु द्वितीय भाषा अपने देश, अपनी संस्कृति को समझने में, मातृभाषा के विकल्प रूप में काम करती है—कभी-कभी प्रायः अच्छे विकल्प का। उदाहरण के लिए भारत और भारतीय संस्कृति, सभ्यता, इतिहास आदि के बारे में जानने के लिए अंग्रेज़ी, किसी भी भारतीय भाषा की तुलना में अच्छा साधन है। (6) द्वितीय भाषा का, उस क्षेत्र में, जहां वह द्वितीय भाषा होती है, प्रायः एक अलग मानक रूप बन जाता है, जो उसी भाषा के मूल देश में प्रचलित मातृभाषा के मानक

रूप से भिन्न होता है। इसी अर्थ में 'भारतीय अंग्रेज़ी' का अपना मानक रूप है जो इंग्लैंड की 'मानक अंग्रेज़ी' से भिन्न है।

प्रयोग के आधार पर 'अन्य भाषा' के निम्नांकित अन्य भेद भी किए जा सकते हैं :

(1) **पुस्तकालयी** (Library) **भाषा**—यह भाषा समाज में सामान्य बोल-चाल के लिए प्रयुक्त नहीं होती, और न लेखन में ही लोग इसका प्रयोग करते हैं। प्राचीन विषयों, सभ्यता एवं संस्कृति आदि की जानकारी के लिए, या प्राचीन पुस्तकों एवं अभिलेखों आदि को पढ़ने के लिए इसका प्रयोग होता है। ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाएं आज पुस्तकालयी भाषा ही हैं। इनकी शिक्षा में पढ़ने पर ही विशेष बल दिया जाना चाहिए; बोलने, सुनने, लिखने पर नहीं। इसे **सहायक** (auxiliary) **भाषा** भी कहा गया है।

(2) **समतुल्य**(Equative) **भाषा**—जब किसी भाषा के प्रयोग का विस्तार इतना हो जाए कि वह मातृभाषा की तरह समाज-विशेष में प्रयुक्त होने लगे, अर्थात् वह लोगों के लिए मातृभाषा की समतुल्य हो जाए तो उसे समतुल्य भाषा कहते हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न देशों के बहुत-से लोग अमेरिका में जाकर अपनी मातृभाषा को छोड़कर मातृभाषा के समतुल्य अंग्रेज़ी बोलने लगे हैं, अतः यह उनके लिए समतुल्य भाषा है। ऐसे ही बहुत से पंजाबी हिंदी प्रदेश में आ कर बस गए हैं, और वे अपने घर में पंजाबी बोलते हैं, किंतु अन्यत्र हिंदी को समतुल्य भाषा के रूप में प्रयुक्त करते हैं। समतुल्य भाषा के शिक्षण में बोलने, सुनने, पढ़ने और लिखने, इन चारों पर बल देना चाहिए।

(3) **संपूरक** (Suplementary) **भाषा**—जब कोई भाषा अस्थायी रूप से, और यह भी कुछ ही संदर्भों में प्रयुक्त हो, तो उसे संपूरक भाषा कहते हैं। पर्यटकों, व्यापारियों आदि द्वारा देश-विशेष (जहां वे जा रहे हों) की भाषा इसी श्रेणी की होती है। इसके शिक्षण में बोलने तथा सुनने पर ही विशेष बल देना चाहिए।

(4) **संपर्क** (Link) **भाषा**—जब कोई भाषा केवल दूसरे भाषाभाषियों से संपर्क के लिए प्रयुक्त हो, तो उसे संपर्क भाषा कहते हैं। हिंदी धीरे-धीरे भारत की संपर्क भाषा बनती जा रही है। 'अंग्रेज़ी' भारत में एक सीमा तक संपर्क भाषा है। इसके शिक्षण में बोलने-सुनने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। एक ही भाषा संपर्क और परिपूरक दोनों ही भाषाएं हो सकती है।

(5) **परिपूरक** (Complementary) **भाषा**—मातृभाषा के साथ-साथ सामाजिक स्तर पर परिपूरक रूप में प्रयुक्त होने वाली भाषा है। प्रायः इसका प्रयोग जिन परिस्थितियों में होता है, उनमें मातृभाषा का नहीं होता तथा जिन परिस्थितियों में मातृभाषा का प्रयोग होता है, इसका नहीं होता। इस तरह इसका तथा मातृभाषा का वितरण परिपूरक होता है। एक सीमा तक, भारत

में, अंग्रेजी मातृभाषाओं के साथ परिपूरक वितरण में है। हमारा समाज दो में विभक्त है। एक समाज में होने पर हम हिंदी आदि भारतीय भाषाएं बोलते हैं तो दूसरे समाज में अंग्रेज़ी। अहिंदी भाषी भारतीयों के लिए हिंदी की भी आगे चलकर यही स्थिति होने की संभावना है। इसके शिक्षण में बोलना, सुनना, पढ़ना तथा लिखना चारों पर बल देने की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार 'भाषा-शिक्षण' में 'भाषा' का अर्थ उपर्युक्त प्रकारों-उपप्रकारों में कोई भी भाषा या सभी हो सकती हैं।

2.0. भाषा-शिक्षण का उद्देश्य

भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों को मूलतः दो वर्गों में रखा जा सकता है: मातृभाषा-शिक्षण के उद्देश्य, अन्य भाषा-शिक्षण के उद्देश्य।

2.1. **मातृभाषा-शिक्षण के उद्देश्य**—मातृभाषा-शिक्षण के उद्देश्य संक्षेप में इस प्रकार हैं: (1) व्यक्ति को मातृभाषा तथा उसकी विशेषताओं से परिचित कराना; (2) उसे मातृभाषा के माध्यम से विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनाना; (3) उसमें भाषा के चारों कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) का विकास कराना ताकि वह शुद्ध उच्चारण, शुद्ध शब्द-रचना, शुद्ध रूप-रचना, शुद्ध वाक्य-रचना कर सके, अपनी शब्द-संपदा का समुचित विकास कर सके, दूसरों को सुनकर या पढ़कर ठीक अर्थ ग्रहण कर सके, तथा अवसर और संदर्भ के अनुकूल बोल और लिखकर अपने भावों और विचारों को ठीक अभिव्यक्ति दे सके; (4) मातृभाषा में लिखित साहित्य तक उसकी पहुंच कराना ताकि वह उसका समुचित रसास्वादन एवं मूल्यांकन कर सके; (5) यदि उसमें सर्जनात्मक प्रतिभा है तो कवि एवं लेखक के रूप में उसका समुचित विकास कराना; (6) भाषा और तर्क-शक्ति का सीधा संबंध है, अतः उसमें समुचित तर्क-शक्ति का विकास कराना; (7) समवेततः व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण (बौद्धिक एवं भावनात्मक आदि) विकास करके उसे मुक्त-दृष्टि का समाजोपयोगी एक अच्छा नागरिक और अधिक-से-अधिक पूर्ण मानव बनाना। कहना न होगा कि मातृभाषा के शिक्षण बिना मनुष्य अशिक्षित रहता है, और अशिक्षित व्यक्ति में उपर्युक्त बातें नहीं आ सकतीं।

2.2. **अन्य भाषा-शिक्षण के उद्देश्य**—मनुष्य 'अन्य भाषा' कई उद्देश्यों से पढ़ता है अतः इसके उद्देश्य अनेक प्रकार के हो सकते हैं: (1) कुछ लोग लेखक, अध्यापक, दुभाषिया तथा अनुवादक आदि बनने के लिए कोई मातृभाषेतर भाषा पढ़ते हैं, अतः ऐसे लोगों के लिए अन्य भाषा-शिक्षण का उद्देश्य होता है, उस भाषा में उनकी गति प्रायः मातृभाषा जैसी करा देना, ताकि वे उसे केवल सुन-पढ़कर समझ ही न सकें, एक सीमा तक उसमें सोच भी सकें। (2) सम-तुल्य, संपर्क एवं परिपूरक भाषा के रूप में अन्य भाषा-शिक्षण का उद्देश्य होता

है, उस भाषा में समतुल्य, संपर्क एवं परिपूरक भाषा के उपयुक्त दक्षता प्रदान करना । ये दक्षताएं पूर्व संकेतित (ऊपर 1 में) दक्षता से कम होती हैं । (3) पुस्तकालयी भाषा के रूप में अन्य भाषा-शिक्षण का उद्देश्य यह होता है कि पढ़ने वाला उस भाषा में लिखित साहित्य को पढ़कर समझ सके । उसमें सुनने, बोलने तथा लिखने के कौशल का विकास आवश्यक नहीं होता । (4) संपूरक भाषा के रूप में अन्य भाषा-शिक्षण का उद्देश्य यह होता है कि पढ़ने वाला सामान्य बोलचाल के वाक्यों और शब्दों को सुनकर समझ सके तथा आवश्यक-तानुसार उस भाषा के उन सीमित वाक्यों को बोल सके । पढ़ने और लिखने के भाषा-कौशल का विकास, इसमें प्रायः अपेक्षित नहीं होता ।

समवेत रूप से, अपनी भाषा पढ़कर जैसे हम अपनी संस्कृति से परिचित होते हैं, वैसे ही अन्य भाषा पढ़कर उसकी संस्कृति का हमें परिचय मिलता है । साथ ही अपनी भाषा पढ़कर जैसे हम अपने भाषाभाषी लोगों से जुड़ते हैं, हमारे व्यक्तित्व का समाजीकरण होता है और हमारी दृष्टि की संकीर्णता कम हो जाती है, उसी प्रकार अन्य भाषा पढ़कर हम अपने से ऊपर उठकर बाहर से जुड़ते हैं, हमारे व्यक्तित्व का अंतर्राष्ट्रीयकरण होता है, और हमारी दृष्टि और भी मुक्त हो जाती है । इस तरह, जैसे मातृभाषा-शिक्षण का महत्तम उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को 'स्व' से उठाकर पूरे मातृभाषी समाज के उप-युक्त बनाना होता है, वैसे ही अन्य भाषा-शिक्षण का महत्तम उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को अंतर्राष्ट्रीय स्तर देना है। जिस व्यक्ति ने जितनी अधिक अन्य भाषाएं सच्चे अर्थों में सीखी होंगी, उसके व्यक्तित्व में यह मुक्तता और अंत-र्राष्ट्रीयता उतनी ही अधिक होगी ।

2 भाषा-शिक्षण : अर्जन और अधिगम

0.0. बच्चा समाज से अपनी मातृभाषा (प्रथम भाषा) सीखता है। इसे 'भाषा का अर्जन' (Language acquisition) कहते हैं। मातृभाषा सीख लेने के बाद कोई दूसरी भाषा सीखना भाषा-अधिगम (Language learning) कहलाता है। इस तरह मातृभाषा के प्रसंग में 'अर्जन' तथा अन्य भाषा के प्रसंग में 'अधिगम' का प्रयोग होता है। यों जैसे अंग्रेज़ी में दोनों ही के लिए 'लैंग्विज-लर्निंग' का प्रयोग (जैसे, मैके—Language Teaching Analysis, पृ० 99) होता है, वैसे ही सामान्यतः दोनों को हिंदी में 'भाषा सीखना' कहते हैं।

1. मातृभाषा-अर्जन

1.0. भाषा का अर्जन एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। बच्चा लगभग तीन महीने से लेकर पांच वर्ष की उम्र तक भाषा का अर्जन समाज (मां-बाप, परिवार, साथ खेलने वाले, तथा आस-पास के समाज) से करता जाता है। इसके बाद स्कूल में जाने के बाद भाषा की विधिवत् शिक्षा उसके भाषार्जन में सहायक होती है। लगभग आठ वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते अपने परिवेश की दृष्टि से भाषा पर उसका पर्याप्त अधिकार हो जाता है, तथा वह अपनी भाषा की लगभग तीन हज़ार आधारभूत शब्दावली का भलीभांति प्रयोग कर लेता है। पन्द्रह की उम्र तक भाषा पर उसका अधिकार और भी अधिक हो जाता है, तथा उसकी पूरी संरचना को वह आतमसात् कर लेता है। उसके बाद उसके भाषा-ज्ञान में सक्रिय और निष्क्रिय शब्दों की दृष्टि से ही उल्लेख्य वृद्धि होती है, जो लगभग जीवन के अंत तक चलती रहती है।

1.1. जन्म के बाद बच्चे का मुख्यतः दो स्तरों पर विकास शुरू होता है : शारीरिक स्तर पर और मानसिक स्तर पर। अपनी भाषा का अर्जन मुख्यतः मानसिक विकास से जुड़ा हुआ है। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि सामान्यतः ठीक मानसिक विकास के बिना भाषा का ठीक अर्जन नहीं हो सकता, और भाषा के ठीक अर्जन के बिना ठीक मानसिक विकास नहीं हो सकता। मानसिक दृष्टि

से अविकसित और जन्म से पागल बच्चों को अपवाद मानना पड़ेगा। यों वे भाषा का प्रयोग कर तो लेते हैं, किंतु वैसा नहीं जैसा सामान्य बच्चे करते हैं। पशु मनुष्य की तुलना में मानसिक दृष्टि से अविकसित होते हैं, तथा वे मानव-जैसी भाषा से विहीन भी होते हैं। यह तथ्य भी मानसिक विकास और भाषा-र्जन के संबंध की ही पुष्टि कर रहा है। जहां तक शारीरिक विकास का प्रश्न है उससे भी भाषा का अर्जन असंबद्ध नहीं है। हां, मानसिक विकास की तुलना में शारीरिक विकास से संबंध कम अवश्य होता है।

1.2. जन्म[1] से लेकर लगभग तीन महीने की उम्र तक बच्चा रोता-चिल्लाता है, जिसका संबंध भूख या किसी प्रकार के कष्ट की अभिव्यक्ति से होता है। इसके बाद वह प्रायः तरह-तरह की ध्वनियां निकालता है, जिसमें व्यंजनवत् ध्वनियां प्रायः बहुत कम होती हैं तथा स्वरवत् ज़्यादा। इनका अनुपात 5:1 के आस-पास होता है। इस प्रसंग में यह जानना रुचिकर होगा कि हिंदी भाषा में स्वर-व्यंजन का सामान्य अनुपात प्रायः बराबर का है। बच्चे के स्वर-व्यंजन के 5:1 के अनुपात में धीरे-धीरे व्यंजन का अनुपात बढ़ता जाता है और 7-8 महीने तक आते-आते यह अनुपात 4:1 के लगभग हो जाता है। बच्चा इस उम्र तक आते-आते पा-पा, बा-बा, ता-ता, दा-दा, आ-आ, ऊ-ऊ, फू-फू, बूआ, फूआ जैसे 'निरर्थक' अक्षरों (syllables) और अक्षर-अनुक्रमों को बार-बार दुहराता है, जैसे वह ध्वनियों का अभ्यास कर रहा हो। यहां इन्हें 'निरर्थक' इसलिए कहा गया है कि बच्चा इन्हें अर्थ-विशेष से जोड़े बिना ही बोलता है। वस्तुतः स्वयं बोलकर बच्चा इन ध्वनियों को सुनता है तथा फिर उन्हें दुहराता है। यह उसका एक प्रकार से खिलवाड़ होता है, किंतु इस खिलवाड़ के माध्यम से उसके विभिन्न उच्चारण अवयव विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण में अभ्यस्त होते जाते हैं, तथा भाषा-अर्जन की दृष्टि से इसे 'अभ्यास' या 'उच्चारण-अभ्यास' कहा जा सकता है। इसके साथ-साथ बच्चे में अनुकरण की क्षमता भी विकसित हो जाती है। मैंने प्रायः यह पाया है कि बच्चा पा-पा, पा-पा तीन-चार बार कहकर चुप हो जाए, और कोई व्यक्ति पा-पा कह दे, तो सुनकर, वह पुनः पा-पा पा-पा कहने लगता है। बा-बा, ता-ता, दा-दा, फू-फू, बूआ-बूआ आदि के विषय में भी यही बात है। दस-ग्यारह महीने से लेकर चौदह-पंद्रह महीने की उम्र तक आते-आते प्रायः सभी प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण बच्चा करने लगता है।

1.3. बच्चा शब्द की पहचान सात-आठ महीने की उम्र में करने लगता है॥ शब्द की पहचान से आशय ध्वनियों के अनुक्रम और अर्थ से उनके संबंध से है

1. यहां विकास-विषयक तथ्य राजीव (18 वर्ष,) सौरभ (7 वर्ष), श्वेता (4 वर्ष) तथा हिमांशु (8 महीने) के विकासात्मक अध्ययन और कई देशी-विदेशी विद्वानों की प्रकाशित सामग्री पर आधारित है। महीने तथा वर्ष की बात औसत की दृष्टि से की जा रही है। अपवा-दतः कुछ बच्चे पहले अथवा बाद में अर्जन के उस बिंदु पर पहुंचते भी देखे जाते हैं।

हिमांशु के भाषा-भंडार में, आठ महीने की उम्र तक आते-आते दूध, चिड़िया, गाड़ी, चंदा मामा, नमस्ते, और ताली ये छः शब्द आ गए थे। वह इनका उच्चारण नहीं कर सकता था, किंतु दूध के समय से पांच मिनट पहले भी 'दूध' कह दिया जाए तो रोने लगता था, दिन में 'चिड़िया' कहते ही आसमान की ओर देखने लगता था, 'गाड़ी' कहते ही गैरज की ओर ताकने लगता था, तथा कभी-कभी यह सोचकर कि गाड़ी पर घूमने चलना है (यह उसे बहुत पसंद है) बहुत प्रसन्न भी हो जाता था। 'नमस्ते' कहने पर दोनों हाथ अत्यंत अव्यवस्थित ढंग से मिलाते हुए ऊपर उठाने से भी उसके मन में इस क्रिया और उच्चरित इस शब्द के संबंध की समझ का पता चलता था। ऐसे ही 'ताली' कहने पर ताली बजाता था। यह ध्यान देने की बात है कि ये सभी संज्ञा शब्द हैं, इनका अर्थ मूर्त है ('नमस्ते' का सामान्य अर्थ अमूर्त है, किंतु उसके लिए यह भी मूर्त था, क्योंकि उसके लिए नमस्ते का संबंध अभिवादन-भावना से न होकर हाथ उठाने की मूर्त क्रिया से था) तथा उसके लिए ये वाक्य रहे हैं। 'नमस्ते' का अर्थ 'नमस्ते करो' है तो गाड़ी का अर्थ है 'गाड़ी कहां है?' बच्चे से बोले गए ये शब्दरूप वाक्य प्रायः आज्ञा के होते हैं।

1.4. एक वर्ष की उम्र तक आते-आते बच्चा काफी शब्द बोलने लगता है, साथ ही उनके अर्थ की भी उसे मोटी समझ हो जाती है। बच्चों के ऐसे कुछ शब्द हैं : मम (पानी), मामा (मां), पापा (बाप), दादा (बड़ा भाई), बाबा (पिता के पिता), दीदी (बहन) आदि। डेढ़-दो साल से उसके शब्द-भंडार में बहुत तेज़ी से वृद्धि होती है। यह तेज़ी छः-सात वर्ष की उम्र तक चलती रहती है। इसके बाद शब्द-भंडार में नये शब्दों के आने की गति कम हो जाती है तथा उसका संबंध उसके पठन-पाठन तथा परिवेश से जुड़ा होता है।

1.5. जहां तक भाषा के वाग्भाग (Parts of speech) का संबंध है, प्रारम्भ में बच्चा संज्ञा शब्द सीखता और बोलता है जो उसके लिए, जैसा कि पीछे कहा गया, प्रकार्यात्मक दृष्टि से वाक्य के समान ही होते हैं। ढाई-तीन साल तक आते-आते वह क्रिया, विशेषण और क्रियाविशेषण का प्रयोग भी क्रमशः करने लगता है और सात-आठ वर्ष की आयु तक आते-आते वह भाषा की संरचना को काफी हद तक आत्मसात् कर लेता है। व्याकरण या संरचना को बच्चा सादृश्य के आधार पर सीखता है। श्वेता (2 वर्ष से कुछ कम) एक दिन मेरे साथ खड़ी थी। कोई सज्जन आए। मैंने यों ही पूछा 'श्वेता, ये कौन हैं?' श्वेता ने तुरन्त उत्तर दिया, 'आंटा', इसके पूर्व या बाद में भी मैंने कहीं यह 'आंटा' शब्द सुना नहीं। यह निश्चय ही श्वेता का अपना निर्माण था। उसे औरतों को 'आंटी' कहना सिखाया गया था। साथ ही वह नानी-नाना, चाची-चाचा शब्दों से परिचित थी। लगता है कि सादृश्य के आधार पर हिंदी में ई (स्त्री०), आ (पु०) का नियम उसके मस्तिष्क ने निकाल लिया था, जिसके आधार पर उसने ज्ञात शब्द

'आंटी' से नया शब्द 'आंटा' बना डाला ! यों यह उल्लेख्य है कि बच्चे वाक्य की संरचना पहले आत्मसात् करते हैं तथा रूपों की अपेक्षाकृत बाद में ।

1.6. जहां तक बच्चे द्वारा उच्चरित प्रारंभ के निरर्थक ध्वनि-अनुक्रमों में अर्थ भरने का प्रश्न है, यह काम परिवार या समाज के लोग करते हैं । बच्चा यों ही खेल-खेल में पापा, मामा कहता है। 'पापा' कहने पर पिता की ओर दूसरों द्वारा संकेत करने तथा 'मामा' कहने पर मां की ओर संकेत करने के आधार पर बच्चा, इन शब्दों से संकेतित व्यक्तियों को संबद्ध कर लेता है। इस तरह, दूसरों द्वारा, संकेत करते हुए शब्द के उच्चारण का बच्चा अनुकरण करके उन शब्दों को बोलना तथा मूर्त व्यक्तियों, वस्तुओं और क्रियाओं से संकेत के आधार पर जोड़ना शुरू करता है । इस प्रकार शब्दों के मूर्त अर्थ से उसका साक्षात्कार होता है, और ये ध्वनि और अर्थ के संबंध उसके मस्तिष्क में बैठते चले जाते हैं । उन शब्दों के स्वयं प्रयोग करने और अपेक्षित परिणाम पाने पर उसकी अर्थ की समझ और भी बलवती होती जाती है। ऐसा भी होता है कि बहुत-से शब्दों के अर्थ प्रारंभ में वह बहुत ठीक नहीं समझ पाता, किंतु लोगों के भाषा-प्रयोग, संदर्भ और शब्दों के साहचर्य के आधार पर धीरे-धीरे वह ठीक अर्थ पकड़ लेता है । एक शब्द के कई अर्थ हों तो एक समय में वह एक ही अर्थ सीखता है— वह अर्थ, जिसका उसे प्रसंग विशेष में किसी भी रूप में सामना करना पड़ा हो । प्रारंभ में उसके अर्थ में अतिव्याप्ति दोष भी खूब होता है। चार पैर के जानवर से 'गाय' रूप में उसका परिचय होने पर सादृश्य के आधार पर भैंस, घोड़ा, बकरी सभी उसके लिए प्रारंभ में 'गाय' होते हैं, और फिर धीरे-धीरे ज्ञान के साथ अर्थ का संकोच प्रारंभ होता है तथा भैंस, घोड़ा, बकरी, आदि के अर्थ से परिचित होने पर 'गाय' का अर्थ केवल 'गाय' रह जाता है। ऐसे ही हर पेय 'दूध', हर खाना 'रोटी', हर पुरुष 'पापा', हर स्त्री 'ममी' के उदाहरण भी बच्चों की प्रारंभिक भाषा में देखने में आए हैं।

1.7. लगभग डेढ़ साल तक बच्चा कुछ शब्दों को जान तो जाता है किंतु भाषा की संरचना का कोई तत्त्व कदाचित् नहीं ग्रहण कर पाता । इसके बाद ही भाषिक संरचना आत्मसात् करने की दिशा में वह आगे बढ़ता है । पहले वह एक शब्द (दूध=दूध दो, मम=पानी चाहिए) के वाक्य का प्रयोग करता है, और फिर दो शब्दों के वाक्य बोलता है, जिसमें व्याकरणिक कोटियां बड़ों की भाषा जैसी नहीं होतीं । उदाहरण के लिए नाना गाड़ी=नाना की गाड़ी, पापा चाय=पापा की चाय। यहां 'नाना' या 'पापा' संज्ञा है, जो विशेषण का काम कर रहे हैं । दो शब्दों के वाक्य में एक को केन्द्रक शब्द (Pivot word) तथा दूसरे को मुक्त शब्द (Open word) कहा गया है । मैं इन्हें क्रमश: 'केन्द्रक शब्द' और 'अकेन्द्रक शब्द' कहना पसंद करूंगा । केन्द्रक शब्द प्राय: सर्वनाम (वो आया =वह आया, मेरा भैया), विशेषण(एक बिस्कुट, यह गुड़िया; और पानी),और

क्रिया (दूध गया)[1] होते हैं तथा अकेन्द्रक शब्द संज्ञा। बच्चे के शब्द-भंडार में केन्द्रक शब्दों में वृद्धि बहुत धीरे-धीरे होती है, किंतु अकेन्द्रक में काफी तेजी से। आगे चलकर वह दो अकेन्द्रक शब्दों के भी वाक्य बनाने लगता है। जैसे पापा चाय (=पापा की चाय), ममी बिस्कुट (=ममी का बिस्कुट) आदि।

1.8. भाषा-अर्जन में बच्चा संरचना को सादृश्य के आधार पर समझता है। पीछे 'आंटा' के उदाहरण में हम रूप-रचना में सादृश्य का महत्त्व देख चुके हैं। ऐसे ही 'राम गया' के आधार पर वह 'पापा गया', 'मामा गया' या 'राम आया', 'पापा आया' जैसे वाक्य बना लेता है। यह सादृश्य एक ओर बच्चे को नियम संरचना-पद्धति बताता है, तो दूसरी ओर इससे अशुद्धियां भी होती हैं। वह सादृश्य के आधार पर ही 'गाय' (चार पैर का जानवर) का प्रयोग 'भैंस', 'घोड़ा' आदि के लिए भी करता है। यह तो अर्थ की अशुद्धि है। ऐसे ही हिंदी भाषी बच्चा 'लड़के ने' के आधार पर 'चाचे ने' या अंग्रेज़ी भाषी बच्चा talk से talked के आधार पर drink का drinked या see का seed जैसे क्रिया रूपों, अथवा hand का hands या finger का fingers के आधार पर foot का foots जैसे बहुवचन रूपों का प्रयोग कर जाता है। लोगों द्वारा टोके जाने पर वह अपनी अशुद्धियों को समझता है तथा अपवादों को सामान्य से अलगाना सीखता है और नियम तथा उसके अपवाद उसके मस्तिष्क में बैठ जाते हैं।

1.9. इस तरह धीरे-धीरे भाषा के द्वारा बच्चा बाह्य जगत् से अपने को जोड़ता है तथा साथ-साथ ही उसमें समझने, सोचने और तर्क करने आदि की क्षमता का विकास होता है। मातृभाषा का अर्जन करने के बाद बच्चा पूरी तरह उस भाषा का दास हो जाता है तथा जीवन और जगत को, इनके स्थूल और सूक्ष्म को, वह अपनी भाषा के चश्मे से ही देखने लगता है।

1.10. एक बड़ी विचित्र बात यह है कि अन्य भाषा का शिक्षण सुव्यवस्थित और सुनियमित रूप से किया जाता है और तब कहीं लोग उसे सीख पाते हैं, किंतु बच्चा जब समाज से भाषा का अर्जन करता है, तो उसे योजनाबद्ध रूप से अर्जन नहीं कराया जाता। वह असंबद्ध परिस्थितियों से जनित अस्तरित (ungraded) अनेकानेक प्रकार के छोटे-बड़े वाक्यों को सुनकर रूप-रचना और वाक्य-रचना आदि के नियम स्वतः निकालकर आत्मसात् करने लगता है तथा बाद में अपवादों को भी अलगाकर हृदयंगम कर लेता है। लगता है कि बच्चे में इसकी सहज क्षमता होती है। क्योंकि उसके भाषा सीखने या उसकी भाषा-विषयक कठिनाइयों को दूर करने आदि का प्रायः कोई दूसरा ध्यान नहीं रखता। बच्चा

1. सौरभ के सामने से उठाकर यदि कोई चीज़ छिपा दी जाए तो वह '···गया' का प्रयोग करता था। जैसे दूध गया, बाजा गया, केला गया आदि।

अपनी भाषिक समस्याओं से स्वयं जूझता है ।

1.11. तो मातृभाषा का अर्जन बच्चे के सहज विकास का अंग है तथा बिना किसी खास प्रेरणा और प्रयोजन के तथा बिना सजग रूप से सक्रिय हुए वह सहज रूप से सुन-सुनकर प्रयोग के स्तर पर भाषा और उसकी संरचना को आत्मसात् कर लेता है । हां, इस पूरी प्रक्रिया में सादृश्य (जिसकी चर्चा पहले आ चुकी है) के अतिरिक्त दो और चीजें स्पष्ट रूप से उसकी सहायक होती हैं : अनुकरण और अभ्यास । वह सहज रूप से सुनकर अनुकरण तथा अभ्यास करता है । प्रारम्भ में मैंने देखा है कि हिमांशु के मुंह से एक बार बा-बा निकलता तो वह कई बार बा-बा, बा-बा कहता रहता था, जो उसके लिए शायद खिलवाड़ था, किंतु भाषा की दृष्टि से अभ्यास था । सौरभ जब दो-ढाई वर्ष का था तो मैंने अनुभव किया कि जब उसने पहले-पहल 'है'-युक्त (दूध कमरे में है) अस्तित्वबोधक वाक्य उच्चरित किया, तो उसके बाद वह कई दिनों तक विभिन्न वस्तुओं के साथ 'है' (मामा है, बिस्कुट है) का प्रयोग करता रहा । यह भी अभ्यास या संरचना-अभ्यास ही था । तो इस प्रकार अनुकरण करने के बाद बच्चा अभ्यास की सहायता से भाषिक संरचना को इतनी गहराई से आत्मसात् कर लेता है कि धीरे-धीरे, प्रसंग या प्रश्न की सहज अनुवर्ती क्रिया (reflex action) के रूप में, बिना सोचे-विचारे भाषा का धारा-प्रवाह प्रयोग करने लगता है । सादृश्य के आधार पर ही निकाले गए भाषिक नियम उसकी बोलने की आदत के सहज अंग बन जाते हैं ।

कुछ लोगों ने भाषा सीखने को किसी अभिप्रेरणा (motivation) या प्रयोजन से जोड़ने की बात उठाई है । अन्य भाषा सीखने के पीछे तो प्रयोजन और प्रेरणा की बात की जा सकती है, किंतु मातृभाषा का समाज से अर्जन करने वाला साल-छः महीने या दो-तीन वर्ष का बच्चा, भला प्रेरणा और प्रयोजन की बात क्या समझ सकता है ! इसलिए भाषा के अर्जन को उसके विकास की सहज प्रक्रिया मानना अधिक उपयुक्त है ।

कुछ लोगों का यह कहना, कि बच्चे को यह आकांक्षा प्रथम भाषा सीखने को प्रेरित करती है, कि इसके बिना वह समाज से संपर्क नहीं स्थापित कर सकता, मैं नहीं मानता । उसे इतनी अक्ल कहां ? रोने से ही उसकी तो मूलभूत आवश्यकताएं जन्म के बाद से ही पूरी होने लगती हैं, अतः भाषा के बिना उसे कोई ऐसी कठिनाई नहीं होती, जिसका वह अनुभव कर सके । और यदि होती भी है तो ऐसा मानने वालों को इसका कैसे पता ?

1.12. इस प्रसंग में एक विवाद और भी उठाया गया है । एक मतानुसार संसार में बच्चा कोरे कागज़ की तरह आता है, और यहीं परिस्थिति और परिवेश से सब कुछ, यहां तक कि भाषा भी सीखता है । इसके विरुद्ध कुछ लोग यह मानते हैं कि वह सहज रूप में बहुत कुछ ज्ञान लेकर पैदा होता है । यहां तक कि

भाषा का सार्वभाषिक, मूलभूत स्वरूप, व्याकरणिक संबंध और कोटियां आदि भी। इन्हीं सार्वभाषिक तत्त्वों के आधार पर, वह जिस समाज में रहता है, उस समाज की भाषा से थोड़ा संपर्क होने पर, धीरे-धीरे उसकी भाषा सीख जाता है। चामस्की तथा उसके अनुयायी इसी मत को मानते हैं। प्रथम मत को मानने वालों को परिवेशवादी तथा दूसरे को सहजज्ञानवादी कहा जा सकता है। वस्तुतः सहजज्ञानवादी के दावे की परीक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि किस बच्चे को समाज से बाहर रखकर परीक्षण किया जाए। इस तरह इनका मत अनुमान पर आधारित लगता है। परिवेशवादियों की बात यहां तक तो ठीक है ही कि परिवेश से भाषा सीखी जाती है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इसीलिए भाषा परिवेश या भाषिक परिवेश के अनुसार अलग-अलग होती है। यों भाषा-अर्जन के लिए परिवेशवाद और सहजज्ञानवाद, इन दोनों का समन्वय इस रूप में ठीक हो सकता है कि बच्चे में परिवेश से, अन्य कौशलों की तरह, भाषण सुनने और बोलने के कौशल सीखने की भी सहज क्षमता होती है, और इसी के आधार पर वह सहज रूप से परिवेश से भाषा अर्जित कर लेता है।

1.13. इस तरह भाषा-अर्जन की प्रक्रिया यों ही खेल-खेल में ध्वनियों का उच्चारण तथा उन्हें दुहराना, दूसरों द्वारा संकेत से अर्थ-ग्रहण, दूसरों के बोलने का अनुकरण, सादृश्य, संदर्भ और साहचर्य के आधार पर संरचना और अर्थ का बालसुलभ विश्लेषण, यंत्रवत् रट लेना, बोलने का बार-बार प्रयास और गलती होने पर बड़ों द्वारा बार-बार सुधार (trial and error) के माध्यम से आगे बढ़ती है, और बच्चा भाषाविहीनता की स्थिति से निकलकर धीरे-धीरे भाषायुक्तता की स्थिति में पहुंच जाता है।

2. अन्य भाषा-अधिगम

2.0. मातृभाषा-अर्जन से अन्य भाषा-अधिगम मोटे रूप से निम्नांकित बातों में भिन्न हैं: (1) बच्चे के लिए समाज में रहकर मातृभाषा सीखना एक अनिवार्यता है। इसे रोका नहीं जा सकता, इससे बचा नहीं जा सकता, किंतु अन्य (द्वितीय अथवा विदेशी) भाषा के साथ ऐसी बात नहीं है। इसीलिए विश्व में सारे-के-सारे लोगों की मातृभाषा में गति होती है, किंतु अन्य भाषा में गति रखने वालों की संख्या या उनका प्रतिशत नगण्य होता है। (2) मातृभाषा के अर्जन के पीछे प्रयोजन या उद्देश्य पर मतभेद है। कम-से-कम इन पंक्तियों का लेखक ऐसा नहीं मानता, क्योंकि उस आयु का बच्चा प्रयोजन और उद्देश्य से कितना परिचित होता है, कहना कठिन है, किंतु अन्य भाषा, निश्चय ही सप्रयोजन-सोद्देश्य सीखी जाती है। (3) मातृभाषा-अर्जन समाज में रहने पर एक सहज प्रक्रिया है, किंतु अन्य भाषा-अधिगम सहज नहीं है। व्यक्ति सायास सक्रिय होकर अन्य भाषा सीखता है। (4) मातृभाषा सीखना सहज अतः सरल, किंतु

अन्य भाषा सीखना कृत्रिम अत: कठिन है। इसीलिए अन्य भाषा सीखना विश्व में लाखों लोग शुरू करते हैं, किंतु उनमें बहुत कम सीख पाते हैं। (5) बच्चा मातृभाषा सीखता है तो वह कोरा कागज़ होता है, अत: वह भाषा बिना व्यवधानित हुए उसके मन में रच-पच जाती है। इसके विपरीत अन्य भाषा सीखने वाला कोरा कागज़ नहीं होता। उसके भीतर एक भाषा घर किए होती है, जो उन सभी बिंदुओं पर अन्य भाषा सीखने में व्याघात उपस्थित करती है, जिन बिंदुओं पर वह अन्य भाषा से भिन्न होती है। (6) मातृभाषा सीखते समय बच्चे में ग्रहण-क्षमता तथा लोच अधिक होती है, अतः उसे तनिक भी कठिनाई नहीं होती। अन्य भाषा के समय तक उम्र के साथ इन दोनों में कमी हो जाती है, अत: अधिगम-प्रक्रिया उसकी तुलना में कठिन होती है। (7) मातृभाषा-अर्जन के समय बच्चा उस संस्कृति में जीता है, जिससे वह भाषा पनपी होती है, अन्य भाषा के समय ऐसा नहीं होता, और किसी संस्कृति को जाने और जिए बिना, उसकी भाषा को सीखना कठिन होता है। (8) व्यक्ति मातृभाषा प्राय: पूरी तरह सीख लेता है, किंतु अन्य भाषा, बहुत ही कम लोग पूरी तरह सीख पाते हैं, शायद वे ही सीख पाते हैं जिन्हें उस समाज में वर्षों तक रहने का अवसर मिला हो। इस रूप में वे द्विभाषिक हो जाते हैं और अन्य भाषा उनके लिए प्राय: मातृभाषा-सी हो जाती है।

2.1. पांच पक्ष

2.1.0. अन्य भाषा-अधिगम की समस्या के मोटे रूप से पांच पक्ष हैं :

2.1.1. **अभिप्रेरणा**(motivation)—किसी काम को करने या सीखने के पीछे अभिप्रेरणा जितनी तीव्र होती है, व्यक्ति उतने ही मनोयोग से उसे करने या सीखने के लिए प्रयत्न करता है। अन्य भाषा-अधिगम के प्रसंग में भी यही बात है। मान लीजिए किसी कक्षा में अंग्रेज़ी अनिवार्य है, किंतु छात्र को पता है कि आगे उसे अंग्रेज़ी लेकर नहीं पढ़ना है, तो वह उसे सीखने में केवल उतना परिश्रम करेगा कि किसी प्रकार पास हो जाए। इसके विपरीत मान लीजिए, किसी बेकार व्यक्ति को फ्रांस में कोई अच्छी नौकरी इस शर्त पर मिली कि वह फ्रांसीसी भाषा सीख ले तो वह व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति, पूरे मनोयोग से फ्रांसीसी सीखने में जुट जाएगा। इस तरह बाह्य अभिप्रेरणा की तीव्रता का दबाव अन्य भाषा-अधिगम में बहुत अधिक सहायक होता है। कोई भी अभिप्रेरणा न हो तो अन्य भाषा नहीं सीखी जा सकती। वह बहुत कठिन लगेगी। अभिप्रेरणा हो तो कठिन होकर भी सरल लगेगी।

2.1.2. **भाषा**—इस समस्या के भाषिक पक्ष में भाषा सीखने वाले की मातृ-भाषा तथा सीखी जाने वाली भाषा के बीच समानता और असमानता का प्रश्न उठता है। जो भाषिक तत्त्व समान होते हैं, उन्हें सीखने में कठिनाई नहीं होती किंतु जो तत्त्व असमान होते हैं, उनमें कठिनाई होती है। यह असमानता जितनी

अधिक होगी, कठिनाई भी उतनी ही अधिक होगी। सीखी जाने वाली भाषा से मातृभाषा की असमानता ही अन्य भाषा-अधिगम में व्याघात उपस्थित करती है। इस व्याघात या व्यवधान (Interference) का ही पता लगाने के लिए व्यतिरेकी भाषाविज्ञान (Contrastive linguistics) का विकास हुआ है, जिसके आधार पर दोनों भाषाओं का व्यतिरेकी व्याकरण (Contrastive grammar) तैयार करते हैं, जिसे अंतरदर्शी व्याकरण (Differential grammar) या अंतरण व्याकरण (Transfer grammar) आदि कई नामों से पुकारा गया है।

भाषिक समानता-असमानता (अ) भाषा-परिवार, (आ) भाषा-विकास, (इ) भौगोलिक दूरी, (ई) संस्कृति, (उ) काल, तथा (ऊ) प्रभाव—इन छः बातों पर निर्भर करती है। एक परिवार, निकट का ऐतिहासिक विकास, भौगोलिक निकटता, एक संस्कृति तथा एक काल की भाषाएं यदि उन पर अन्य भाषाओं के प्रायः समान प्रभाव पड़े हों तो काफी समान होती हैं। जैसे हिंदी-पंजाबी। हिंदी-अंग्रेज़ी एक परिवार और एक काल की होकर भी, भौगोलिक दूरी, अलग ऐतिहासिक विकास तथा सांस्कृतिक अंतर आदि के कारण काफी असमान हैं। हिंदी-ग्रीक में कई अंतरों के अतिरिक्त काल का भी अंतर है, जो उनकी असमानताओं को बढ़ा देता है। हिंदी-चीनी में परिवार, संस्कृति, भौगोलिक दूरी आदि का अंतर है जो उनकी असमानताओं के मूल में है। हिंदी और प्राचीन हिब्रू प्रायः सभी दृष्टियों से अलग हैं, अतः उनमें असमानताएं भी बहुत अधिक हैं। हिंदी और कन्नड़ की समानताएं इस बात पर आधारित हैं कि दोनों ने संस्कृत से बहुत कुछ लिया है। इसी प्रकार तुर्की और हिंदी, परिवार, भूगोल, विकास, संस्कृति आदि की दृष्टि से दूर होते हुए भी शब्द-भंडार में काफी समानताओं से युक्त हैं, क्योंकि दोनों को फ़ारसी ने प्रभावित किया है।

मातृभाषा और पढ़ाई जाने वाली अन्य भाषा के बीच समानता-असमानता ध्वनि-व्यवस्था, शब्द-भंडार, रूप-रचना, वाक्य-रचना अर्थ और लिपि इन छः स्तरों पर हो सकती है।

ध्वनि-व्यवस्था में स्वरों-व्यंजनों के उच्चारण, स्वनिमिक स्थिति, संधि, स्वरानुक्रम, व्यंजनानुक्रम, संयुक्त स्वर, संयुक्त व्यंजन, बलाघात तथा अनुतान के स्तर पर समानताएं और असमानताएं मिलती हैं। उदाहरण के लिए हिंदी मूल स्वर 'ओ' के स्थान पर अंग्रेज़ी में संयुक्त स्वर ओउ (कोट-कोउट), तथा ए के स्थान पर संयुक्त स्वर एइ (जेल-जेइल) बोला जाता है; हिंदी थ, द स्पर्श व्यंजन हैं तो अंग्रेज़ी थ, द संघर्षी हैं; हिंदी और अंग्रेज़ी आदि में शब्दांत में घोष व्यंजन का उच्चारण होता है तो जर्मन और रूसी में शब्दांत के घोष व्यंजन उच्चारण में अघोष हो जाते हैं, अंग्रेज़ी में शब्द के आदि के स्वरपूर्व क, प, ट थोड़े महाप्राणत्व के साथ उच्चरित होते हैं, किंतु हिंदी में ऐसा (कैप, पैंट, टैंक) नहीं होता; जापानी में र, ल मुक्त परिवर्त (Free varient) हैं, किंतु हिंदी में दोनों

स्वनिम हैं; हिंदी में पूर्ववर्ती ध्वनि को परवर्ती ध्वनि प्रभावित करती है (वाक्+ईश=वागीश, जगत्+ईश) किंतु अंग्रेजी में पूर्ववर्ती ध्वनि परवर्ती ध्वनि को प्रभावित करती है (dog+s=dogs डाग्ज़)। ऐसे ही हिंदी के निश्चित नियम हैं, किंतु अंग्रेज़ी, रूसी आदि में ऐसा नहीं है।

शब्द-भंडार में भी अनेक प्रकार के अंतर मिलते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी के अनेक शब्दों (जैसे जनेऊ, भात, जूठा, चोटी, खड़ाऊं, यज्ञ आदि) के लिए अंग्रेज़ी में शब्द नहीं हैं तो अंग्रेज़ी के भी अनेक शब्दों (जैसे good morning, good evening, कमरे का partition आदि) के लिए हिंदी में शब्द नहीं हैं।

रूप के अंतर भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी में भविष्य के रूप 'ग' (चलेगा) प्रत्यय लगाकर बनते हैं, किंतु अंग्रेज़ी में भविष्य की अभिव्यक्ति रूपीय स्तर पर न होकर वाक्यीय स्तर पर shall, will की सहायता से होती है। दूसरी ओर अंग्रेज़ी में सामान्य वर्तमान के रूप शून्य (I work, You go आदि) या 'एस' (He works) जोड़कर बनते हैं, किंतु हिंदी में वर्तमानकालिक कृदंत और सहायक क्रिया के योग से वाक्य स्तर पर (I go=मैं जाता हूं) इस काल की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे ही अंग्रेज़ी में आज्ञा का एक रूप है तो हिंदी में छः हैं : (you) go=जा, जाओ, जाएं, जाइए, जाना, जाइएगा।

वाक्य-रचना में अन्वय (Ram goes, Sita goes राम जाता है, सीता जाती है), पदक्रम (I killed him=मैंने उसे मार डाला), प्रश्नवाचकता (Are you going there?=तुम वहां जा रहे हो क्या?), तथा नकारात्मकता (I do not know=मैं नहीं जानता) आदि अनेक स्तरों पर अंतर मिलते हैं।

अर्थ का अंतर वहां मिलता है जहां कोई एक शब्द दोनों भाषाओं में हो, किंतु उसके अर्थ में अंतर हो। 'गीदड़' बंगला में भी है, और हिंदी में भी। बंगला में इसका अर्थ 'स्यार तथा लोमड़ी' है, किंतु हिंदी में मात्र 'स्यार'। हिंदी में 'काठ' का अर्थ लकड़ी है किंतु उड़िया में 'ईंधन'। 'सड़ना' पंजाबी में 'जलना' है किंतु हिंदी में यह अर्थ नहीं है। 'उपन्यास' का हिंदी में अर्थ 'नाविल' है, किंतु तेलुगु-कन्नड़ आदि में इसका अर्थ 'भाषण' है।

लिपि में भी असमानताएं मिलती हैं। पंजाबी की लिपि गुरुमुखी का 'ਸ' हिंदी 'म'-जैसा है, 'ਤ' हिंदी 'उ'-जैसा है तथा 'ਫ' ढ-जैसा है। ऐसे ही अंग्रेज़ी का H रूसी में 'न' है तो P रूसी में 'र' है।

भाषाओं में असमानताएं जितनी अधिक होती हैं, मातृभाषा द्वितीय भाषा सीखने में उतना ही अधिक व्यवधान उपस्थित करती है।

(क) अंतरण (Transfer)—इस प्रसंग में भाषा-शिक्षण विज्ञान में 'ट्रांफसर' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसे हिंदी में 'अंतरण' कहा जा सकता है। होता यह है कि अन्य भाषा सीखने वाला अपनी मातृभाषा की आदतों या बातों को बोलते तथा लिखते समय अन्य भाषा पर आरोपित कर देता है। दूसरे शब्दों में वह

मातृभाषा के उच्चारण तथा संरचना के नियमों को अन्य भाषा में अंतरित (ट्रांसफर) कर देता है। इसी को अंतरण कहते हैं। यदि अंतरित बातें लक्ष्य भाषा में स्वीकार्य हैं तो भाषा सीखने में आसानी होती है, किंतु यदि अस्वीकार्य हैं तो वे लक्ष्य भाषा को ठीक से सीखने में व्याघात उपस्थित करती हैं। इसी को 'भाषिक व्याघात' कहते हैं। अंतरण के सामान्यतः दो भेद किए जाते हैं: (क) सकारात्मक अंतरण (Positive transfer)—जब दोनों भाषा में कोई नियम-उच्चारण आदि समान हों तो वे मातृभाषा से ज्यों-के-त्यों अन्य भाषा में अंतरित हो जाते हैं। इस तरह सकारात्मक अंतरण भाषा सीखने में सहायक होता है। (ख) नकारात्मक अंतरण (Negative transfer)—जब मातृभाषा के नियम या उच्चारण आदि अन्य भाषा के असमान हों तो उनका अंतरण अन्य भाषा के प्रयोग में सहायक न होकर व्याघात उत्पन्न करने वाला होता है। अन्य भाषा सीखने की दृष्टि से इस प्रकार के अंतरण का मूल्य स्पष्ट नकारात्मक होता है। उदाहरण के लिए जर्मन या रूसी अपनी भाषा में शब्दांत की घोष ध्वनि को अघोष रूप में बोलने का आदी होता है, अतः वह हिंदी सीखते समय भी 'अब' को 'अप' या 'आग' को 'आक' जैसा बोल जाता है। यह नकारात्मक अंतरण है। इसके विपरीत जर्मन जब रूसी सीखता है या रूसी जर्मन सीखता है तो यह अंतरण सकारात्मक होता है, क्योंकि दोनों में यह नियम एक है। (ग) कभी-कभी एक शून्य अंतरण की भी चर्चा की गई है। जब मातृभाषा का कोई नियम लक्ष्य भाषा में अंतरित नहीं हो तो शून्य अंतरण कहलाता है। ऐसा तब होता है जब उस उच्चारण या नियम आदि की किसी भी रूप में लक्ष्य भाषा सीखते समय अंतरण की संभावना नहीं रहती। व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर हम कहना चाहें तो कह सकते हैं, जो बातें दोनों भाषाओं में समान हों उनका सकारात्मक अंतरण होता है, जो विरोधी हों उनका नकारात्मक अंतरण, तथा जो मातृभाषा में हो, किंतु लक्ष्य भाषा में न आ सके, उसका शून्य अंतरण। इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी स्थिति भी होती है, जब कोई नियम आदि मातृभाषा में न हो किंतु लक्ष्य भाषा में हो। ऐसी स्थिति में अंतरण का प्रश्न ही नहीं उठता; इसे अनंतरण कहा जा सकता है। अंतिम दो के उदाहरण ये हो सकते हैं: अंग्रेजी में ज, ज़ (जैसे रेज़र), ज़ (जैसे प्लेज़र) तीन हैं, किंतु हिंदी में दो ही हैं: ज, ज़। अब यदि कोई अंग्रेज़ी भाषी हिंदी सीखे तो उसके ज़ का शून्य अंतरण होगा। ऐसे ही इस्तोनियन भाषा में सभी स्वर ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत होते हैं। अब यदि कोई हिंदी भाषी, जो ह्रस्व और दीर्घ से ही परिचित है, इस्तोनियन सीखे तो जहां तक प्लुत को सीखने का प्रश्न है, अनंतरण होगा। अंतरण को केवल मातृभाषा से नहीं जोड़ा जा सकता। कोई भाषा पढ़ना शुरू करने के पहले जितनी भी भाषाएं सीखी जा चुकी हैं, या उसी भाषा को प्रारंभ में सीखते समय घर कर जाने वाली अशुद्धियां—इनसे भी अंतरण हो सकता है।

अन्य भाषा-शिक्षण के लिए उपर्युक्त भाषिक बातों को दृष्टि में रखते हुए पाठ्यग्रंथ, अभ्यास-पुस्तिका तथा श्रव्य-दृश्य साधनों की व्यवस्था की जाए तो परिणाम अच्छा निकलने की संभावना होती है।

2.1.3. **समाज**—हम कैसे समाज में रहते हैं, किन लोगों से मिलते-जुलते हैं, या किनके साथ काम करते हैं, इसका भी अन्य भाषा के सीखने से सबंध है। मान लीजिए कोई छात्र छात्रालय में रहता है तथा वह जर्मन सीख रहा है, और उसके पास के कमरों में कुछ जर्मन छात्र भी रहते हैं, निश्चय ही उनसे उसे प्रत्यक्षतः जर्मन सुनने, बोलने तथा गलत बोलने पर शुद्ध किये जाने का अवसर मिलेगा। ऐसी स्थिति में वह उन लोगों की तुलना में जल्दी और अच्छी तरह जर्मन सीख सकेगा जिनको ऐसा अवसर नहीं प्राप्त है।

2.1.4. **आयु**—आयु का भी भाषा सीखने से संबंध है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में कुछ शोधों ने यह सिद्ध किया है कि नौ वर्ष की आयु तक हमारा मस्तिष्क भाषा सीखने में अधिक सक्षम होता है, और बाद में यह क्षमता धीरे-धीरे कम होती जाती है। कुछ अन्य लोगों ने यह सीमा-रेखा इक्कीस वर्ष रखी है। ऐसा स्थिति में अन्य भाषा का शिक्षण जितनी कम उम्र में शुरू किया जाए, सीखने वाला उतनी जल्दी और अच्छी तरह भाषा सीख जाएगा। 1960 में मुझे विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में ताशकंद (सोवियत यूनियन) जाना पड़ा। उस समय बेटी मुकुल चार वर्ष की थी तथा बेटा राजीव दो वर्ष का। इन दोनों ने इतनी जल्दी रूसी सीख ली कि वहां वालों को भी आश्चर्य हुआ और हमें भी। यहां उम्र ही मुख्य बात थी। सुनने-बोलने को रूसी समाज तो मुझे और मेरी पत्नी को भी मिला था, किंतु हम दोनों की रूसी सीखने की गति बहुत धीमी रही।

2.1.5. **साधन**—अन्य भाषा सिखाने वाले अध्यापक प्रशिक्षण, योग्यता, क्षमता आदि की दृष्टि से कैसे हैं, पाठ्यपुस्तकें और अभ्यास-पुस्तकें कितनी व्यवस्थित, स्तरित तथा तथा व्यतिरेकी विश्लेषण पर आधारित हैं, भाषा-प्रयोगशाला एवं अन्य दृश्य और श्रव्य साधन हैं या नहीं हैं आदि पर भी अन्य भाषा-शिक्षण और अधिगम निर्भर करता है।

इन पांच के अतिरिक्त सीखने वाले की कुशाग्रता-अकुशाग्रता, भाषा सीखने के दिनों में उसकी मानसिक स्थिति आदि बातें भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

इस प्रकार अन्य भाषा का शिक्षण और अधिगम तथा उनकी सफलता उपर्युक्त बातों पर निर्भर करती है।

3. मातृभाषा-शिक्षण और अधिगम

3.0. पीछे हम देख चुके हैं कि कभी-कभी तो जो प्रथम भाषा होती है, वही मातृभाषा भी होती है (जैसे लंदन में जनमें किसी अंग्रेज़ की या पेरिस में पैदा किसी फ्रांसीसी की), इसके विपरीत कभी-कभी प्रथम भाषा या मातृबोली कोई

और होती है और। मातृभाषा कोई और उदाहरण के लिए हिंदी-क्षेत्र में हिंदी मातृभाषा कहलाती है, किंतु सच्चे अर्थों में मातृभाषा भोजपुरी, ब्रज, अवधी आदि बोलियां होती हैं, जिन्हें मातृबोली या प्रथम भाषा कहा जा सकता है। इन बोलियों को इन लोगों की मातृबोली तथा हिंदी को मातृभाषा कहा जा सकता है।

3.1. यदि प्रथम भाषा तथा मातृभाषा एक ही हैं तो फिर उसी की शिक्षा दी जाती है। किंतु, यदि प्रथम भाषा और मातृभाषा में अंतर है तो तीन प्रकार के सुझाव दिए गए हैं : (क) पहले मातृबोली का शिक्षण दें, फिर मानक भाषा, उदाहरण के लिए हिंदी क्षेत्र में पहले हर बच्चे को अपनी बोली की शिक्षा दें, और फिर मानक हिंदी की। (ख) पहले मानक हिंदी की शिक्षा दें, फिर बोली की। (ग) दोनों को साथ-साथ लें। मेरी अपनी राय इन तीनों से अलग है : (घ) मैं समझता हूं कि मानक हिंदी की ही शिक्षा दी जाए, बोलियों की शिक्षा की आवश्यकता नहीं। इसके कई कारण हैं : पहला तो यह कि कहने के लिए भोजपुरी, हरियाणी, अवधी, ब्रज आदि एक-एक बोलियां हैं किंतु उनका कोई एक सर्वस्वीकृत रूप नहीं है। शिक्षा दें तो किस रूप की शिक्षा दें। एक बोली के कई रूपों की शिक्षा देने की किसी भी दृष्टि से कोई सार्थकता नहीं है। दूसरे, अपने घर के तथा अपने क्षेत्रीय लोगों को छोड़कर अन्यत्र प्रायः सभीके साथ मानक हिंदी का ही प्रयोग होता है, न कि बोलियों का। और कभी-कभी तो अपने परिवार तथा क्षेत्र के लोगों के साथ भी मानक हिंदी में ही बोलना लोग पसंद करते हैं, न कि अपनी बोली में। तीसरे तत्त्वतः सभी व्यावहारिक दृष्टियों से—जैसे शिक्षा का माध्यम, स्वांतः सुखाय पठन, समाचारपत्र, औपचारिक (तथा कभी-कभी अनौ-चारिक भी) रूप से बोलना या लिखना आदि—मानक हिंदी ही, हिंदी भाषियों की मातृभाषा है, भले ही उसकी मानकता, हर क्षेत्र के व्यक्ति के लिए उसकी अपनी बोली से प्रभावित क्यों न हो।

इसका अर्थ यह हुआ कि सभी हिंदी भाषियों को मातृभाषा के रूप में मानक हिंदी की ही शिक्षा दी जानी चाहिए। यह शिक्षा 4-5 वर्ष की उम्र से शुरू होकर बीस-बाईस वर्ष की उम्र तक चलती है। इस प्रसंग में एक व्याव-हारिक सुझाव यह है कि हिंदी प्रदेश में मातृभाषा के रूप में मानक हिंदी की शिक्षा 'मातृभाषा और अन्य भाषा-शिक्षण की पद्धतियों का समन्वय' करते हुए देनी चाहिए। वह इसलिए कि शिक्षा का माध्यम, रेडियो, टेलीविज़न, समाचारपत्र, फिल्म, मनोरंजनार्थ पढ़ी जाने वाली सामग्री—इन सभी दृष्टियों से मानक हिंदी ही इस प्रदेश के लोगोंकी मातृभाषा है। दूसरी ओर अन्य भाषा इसीलिए कि नगर में रहने वाले बहुत थोड़े लोगों को छोड़कर, सभी हिंदी भाषी, सबसे पहले समाज से अपनी बोली को ही अर्जित करते हैं, अतः ये लोग 5-6 वर्ष की उम्र में जब हिंदी पढ़ना शुरू करते हैं तो उनकी बोलियां मानक हिंदी सीखने में प्रायः

उसी प्रकार व्यवधान उपस्थित करती हैं जैसे मातृभाषा कोई अन्य भाषा सीखने में। इसका अर्थ यह हुआ कि हिंदी भाषा सिखाने की वे पुस्तकें जिनमें व्याकरण, व्यावहारिक व्याकरण या प्रयोगपरक व्याकरण हो, हर बोली के लोगों के लिए अलग-अलग होने चाहिए, ताकि उनमें उस क्षेत्र के छात्रों की हिंदी में होने वाली उच्चारण, शब्द-रचना, रूप-रचना, वाक्य-रचना और अर्थविषयक अशुद्धियों को केन्द्र में रखकर पाठ और अभ्यास आदि तैयार किए जा सकें। प्रारम्भिक कक्षाओं की भाषा पढ़ाने की उन पुस्तकों को भी जिनमें व्याकरण नहीं है, तथा जो विशेष या सामान्य रूप से पढ़ने के लिए निर्धारित हैं, क्षेत्र-अनुसार अलग-अलग बनाया जाना चाहिए, ताकि उस क्षेत्र से संबद्ध कुछ पाठ भी उनमें रखे जा सकें। इन दो सामान्य बातों का ध्यान रखते हुए पाठ्य पुस्तकें स्तरीकृत (graded) बननी चाहिए, ताकि छात्रों में भाषा का क्रमिक विकास हो सके।

3.2. इस प्रसंग में एक यह बात भी उल्लेख्य है कि प्रायः प्रारंभिक कक्षाओं को पढ़ाने का काम बहुत मामूली माना जाता है, तथा जिसकी पूछ कहीं भी न हो, वह वहां अध्यापक के रूप में ले लिया जाता है। तत्त्वतः प्रारंभिक कक्षाओं के भाषा-शिक्षक का काम इसलिए बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वहीं मानक भाषा की नींव रखी जाती है। इसीलिए प्रारंभिक कक्षाओं के भाषा-शिक्षक में निम्नांकित योग्यताएं, दक्षताएं और गुण होने चाहिए : (क) उसका अपना उच्चारण अच्छा होना चाहिए। अच्छा से आशय यह है कि वह अधिक-से-अधिक मानक हो ताकि उसका उच्चारण छात्रों के उच्चारण को न केवल बिगाड़ सके, बल्कि अच्छा बना सके। साथ ही उसे इस बात का भी ज्ञान होना चाहिए कि स्वरों, व्यंजनों, स्वरानुक्रमों, व्यंजनानुक्रमों, संयुक्त स्वरों और संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में या बलाघात-अनुतान आदि में उस क्षेत्र के लोग क्या-क्या गलतियां करते हैं ताकि वह छात्रों को इन गलतियों से बचा सके तथा उनका उच्चारण मानक बना सके। (ख) उसका बोलना और लिखना व्याकरण और सह प्रयोग (collocation) आदि की दृष्टि से शुद्ध और मानक होना चाहिए ताकि छात्र उसके संपर्क में शुद्ध भाषा सीख सकें। साथ ही उसे इसका भी ज्ञान होना चाहिए कि उस क्षेत्र के लोग मानक हिंदी बोलने और लिखने में कौन-कौन सी व्याकरणिक और सहप्रयोग आदि की अशुद्धियां करते हैं, ताकि वह अपने छात्रों को इन ग़लतियों से बचा सके। (ग) वर्तनी के संबंध में भी उपर्युक्त बातें दुहराई जा सकती हैं। (घ) उसमें यह क्षमता भी होनी चाहिए कि उस क्षेत्र के लोगों की भाषा के अध्ययन के आधार पर वह ऐसी पाठ-सामग्री तथा अभ्यास आदि तैयार कर सके जो भाषा-शिक्षण में सक्रिय रूप से उपयोगी हों।

उपर्युक्त बातें हिंदी को दृष्टि में रखकर कही गईं, किंतु वे उस प्रकार की किसी भी भाषा के शिक्षण के लिए उपयोगी हो सकती हैं।

3 भाषा-कौशल

0.0. भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषाओं के महत्त्व के कारण भाषा-शिक्षण विशेष स्थान रखता है। इस बहुभाषी देश में द्विभाषिकता व्यापक रूप से विद्यमान है। हमारे बहुभाषी देश के लिए सम्पर्क भाषा के रूप में अनेक स्तर पर हिन्दी के शिक्षण और प्रसार का महत्त्व सर्वमान्य है। अब तक स्थापित सभी शिक्षा आयोगों ने हिन्दी-शिक्षण पर पर्याप्त बल दिया है। विचार-विनिमय, प्रशासन, शिक्षा का माध्यम, व्यापार, संचार, पर्यटन आदि अनेक उद्देश्यों के लिए हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में सिखायी जाती है। विदेशी भाषाओं में अंग्रेज़ी पिछले डेढ़ सौ वर्षों से विभिन्न प्रकार से पाठ्यक्रम में विद्यमान है। स्वतंत्रता के बाद इसका प्रचार-प्रसार बढ़ा ही है, घटा नहीं। कहीं इसका अध्यापन द्वितीय और कहीं तृतीय भाषा के रूप में किया जाता है। पढ़े-लिखे और बुद्धिजीवियों के बीच यही सम्पर्क-भाषा का काम करती है।

इस भारतीय परिवेश में 'भाषा-कौशल' पर दो दृष्टियों से विचार करना होगा :

(क) प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाषा के रूप में किसी भी भाषा का अध्ययन-अध्यापन।

(ख) प्रारंभिक कक्षाओं से उच्चस्तरीय कक्षाओं तक, जिनको प्रारंभिक, माध्यमिक, स्नातकीय तथा स्नातकोत्तरीय भागों में बांटा जा सकता है।

फिर उद्देश्यों के अनुसार भी भाषा-कौशलों में तथा उनके स्तर एवं सापेक्षिक महत्त्व में अन्तर हो सकता है। समय, जनसंख्या, प्रयोग, स्तर, मनोवृत्तियां एवं रुचियां, दबाव के अनुसार, घर, समाज, व्यवसाय, स्कूल-कालेज, खेल के मैदान आदि में आपसी संबंध घटते-बढ़ते हैं और उसके अनुसार भाषा-कौशल भी।

प्रथम भाषा तथा द्वितीय भाषा के उद्देश्यों में अन्तर होता है। इसके अनुसार अपेक्षित योग्यताएं भिन्न होती हैं।

1. भाषा-कौशल के भेद

भाषा-कौशलों को दो भागों में बांटा जा सकता है :

(क) प्रधान कौशल

(ख) गौण कौशल

1.1. प्रधान कौशल

भाषा का उच्चरित रूप ही वास्तविक होता है अतएव इससे संबंधित कौशल ही प्रधान कहे जाते हैं। जो लोग निरक्षर होते हैं वे भी इन कौशलों में दक्षता प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक भाषा-शिक्षण के सिद्धांतों के अनुसार भी इन्हीं कौशलों को पहले प्रधानता दी जाती है। इस दृष्टि से इसमें निम्नलिखित **दो** कौशल आते हैं :

1. सुनना
2. बोलना

जो व्यक्ति इन दो कौशलों में दक्षता प्राप्त कर लेता है, वह फिर आसानी से अपेक्षाकृत कम समय में शेष दो कौशलों में भी गति प्राप्त कर लेता है।

1.2. गौण कौशल

इस कोटि में भाषा के लिखित रूप से संबंधित कौशल आते हैं, क्योंकि बच्चा भी इनको ही बाद में प्राप्त करता है और आधुनिक शिक्षण-पद्धति में भी इनको बादमें सीखने/सिखाने पर बल दिया गया है। इस दृष्टि से इसमें निम्नलिखित दो कौशल लिए जाते हैं :

1. पढ़ना (वाचन)
2. लिखना

2. उच्चरित तथा लिखित भाषा तथा भाषा-कौशल

इस प्रकार उक्त चारों कौशलों में से दो भाषा के उच्चरित स्वरूप से संबंधित हैं तो दो लिखित से।

2.1. उच्चरित भाषा से संबंधित कौशल

भाषा के बोलीगत रूप से संबंधित दो प्रधान कौशलों—'सुनना' तथा 'बोलना' के अन्तर्गत निम्नलिखित भाषिक पक्ष लिए जाते हैं :

1. ध्वनि-भेद पहचानना
2. उच्चारण अनुकृति
3. उपवाक्य-संरचनाएं
4. वाक्य-संरचनाएं
5. मुक्त भाषण
6. पदबंध

7. शब्दावली
8. श्रवण-बोधन
9. मुक्त-बोधन
10. वार्तालाप

'सुनने' (श्रवण) के अन्तर्गत मुख्यतः ध्वनियों में भेद स्थापित करना और ध्वनि के सही-गलत उच्चारण पहचानना आता है जबकि 'बोलने' (वाचन) में ध्वनियों का उच्चारण, मुखर अभिव्यंजना, शब्दावली तथा उसका संदर्भगत अर्थ का अभ्यास लिया जाता है।

2.2. लिखित भाषा से संबंधित कौशल

भाषा के लिखित रूप से संबंधित दो प्रधान कौशलों – 'पढ़ना' तथा 'लिखना' के अन्तर्गत निम्नलिखित भाषिक पक्ष लिए जाते हैं :

1. लिपि-चिह्नों की पहचान
2. लिपि-चिह्नों को लिखना
3. संकेतों की सहायता से लेखन
4. संदर्भ-व्याकरण
5. मुक्त लेखन
6. मुक्त पठन
7. संदर्भों की पहचान
8. पत्राचार
9. वर्ण-बोधन
10. कोश देखने का अभ्यास

'पठन' के अन्तर्गत मोटे तौर पर दृश्यात्मक भेद स्थापित करना, पढ़कर बोधगम्य करना तथा तेज पढ़ने का अभ्यास जबकि 'लेखन' में लिपिचिह्नों का सम्यक् अभ्यास, वर्तनी, विरामचिह्न, व्याकरण, शब्दावली, लेखन तथा शैलीगत लेखन-अभ्यास आते हैं।

उक्त दोनों रूपों—उच्चरित तथा लिखित—को जोड़ने वाले दो कौशल हैं—श्रुतलेख तथा सस्वर पाठ।

3. विभिन्न भाषा-कौशल

3.1. सुनना

चारों कौशलों में 'सुनना' प्रधान है, क्योंकि भाषा सुनकर सीखी जाती है। सुनकर हम समझते हैं और याद रखते हैं, यही कारण है कि भाषा-कौशलों में सुनने का विशेष महत्त्व है। जो किसी कारण से सुन नहीं पाते उनके लिए भाषा सीखना मुश्किल होता है और अधिक समय लगता है।

जितना अधिक भाषा से संपर्क बढ़ता है सुनने की क्षमता बढ़ती है, और निरंतर सुनने से भाषा में क्षमता बढ़ती है। इस प्रकार दोनों में गहरा संबंध है। प्रभावशाली भाषण का आधार भी इस कौशल पर ही निर्भर करता है। इस कौशल को विकसित करने के लिए 'सामान्य श्रवण' आवश्यक है। अधिकांश व्यक्ति किसी भाषा को इस 'सामान्य श्रवण' से ही सीख जाते हैं। इस कौशल को विकसित करना चाहिए। इसको विकसित करने के लिए पर्याप्त सुनना चाहिए। द्वितीय भाषा की ध्वनियों को भी निरंतर सुनते रहने से उनमें अन्तर करना सीखते हैं। यही कारण है कि अन्य भाषा सीखने वालों को उस भाषा को सुनने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। कक्षा में अध्यापक की वाणी वह सुनता है। प्रयोगशाला में उसे निरंतर सुनने का मौका मिलता है। इस कौशल को विकसित करने में रेडियो, ट्रान्जिस्टर, टेप रेकार्डर आदि से विशेष सहायता मिलती है। शान्त चित्त होकर सुनने से समझने में सहायता मिलती है। यों किसी अन्य कार्य को करते समय भी सुनने की प्रक्रिया चलती रहती है।

'सुनने' की प्रक्रिया को सीमित कर किन्हीं दो ध्वनियों में अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। द्वितीय भाषा के शिक्षण में यह प्रक्रिया आवश्यक है। 'ध्वनि-भेद' ही नहीं बलाघात तथा अनुतान भी ठीक-ठीक सुनने से सीखे जाते हैं।

किसी भी अन्य भाषा की नवीन ध्वनियों को सीखने के लिए तथा मातृ-भाषा की ध्वनियों से भिन्नता स्थापित करने के लिए भी सुनना सहायक सिद्ध होता है। गद्य अवतरणों के अतिरिक्त गीत, चुटकले, कहानी, नाटक आदि के कार्यक्रम भी इसके लिए सुनने चाहिए।

3.2. बोलना

मौखिक अभिव्यक्ति ही 'बोलना' है। इस पर अधिकार करने के लिए भाषिक संरचनाओं के अतिरिक्त सही उच्चारण करना पहली आवश्यकता है। साथ ही बलाघात-अनुतान के साथ भाषा का प्रयोग करना भी। सही उच्चारण सीखने के लिए अध्यापक को आदर्श मानना चाहिए। यदि किसी दोष के कारण अध्यापक आदर्श नहीं प्रस्तुत कर पाता तो किसी आदर्श उच्चारण वाले व्यक्ति से टेप करवा लेना चाहिए और उसको सुनकर दुहराना चाहिए।

अन्य भाषा की ध्वनियां, अनुतान, बलाघात आदि के ठीक प्रयोग के लिए निरंतर अभ्यास की आवश्यकता है। कक्षा से अधिक यह सुविधा भाषा-प्रयोगशाला में है। मौखिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा-प्रयोगशाला में अभिरचना-अभ्यास करना चाहिए। प्रारंभ में छोटी-छोटी भाषिक संरचनाएं लेनी चाहिए, कालान्तर में यही संरचनाएं पर्याप्त लम्बी और जटिल हो सकती हैं।

कुछ प्रयोगशालाओं में मुक्त वार्तालाप की सुविधा भी प्राप्त होती है, अतएव उनका भी उपयोग करना चाहिए।

3.3. पढ़ना

पढ़ना (वाचन) भाषा के लिखित रूप पर आधारित होता है । मातृभाषा-भाषी बोलना पहले सीख जाता है और पढ़ना बाद में किंतु अन्य भाषा-शिक्षण में 'पढ़ना' भी कुछ लोग पहले सीख लेते हैं और बोलना बाद में । कुछ लोग पढ़ने में अच्छे होते हैं पर बोलने में नहीं ।

पढ़ने में लिपिचिह्नों को पहचाना और एकाधिक लिपिचिह्नों में भेद करना सीखना चाहिए । पढ़ना सम्प्रेषण का प्रभावशाली साधन है । यह मात्र भाषिक कौशल ही नहीं है, वरन् अन्य विषयों पर अधिकार रखने के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है । पढ़ने में रुचि का अर्थ है पढ़ाई में रुचि, फलतः यह सफलता की सीढ़ी है । ऐसी स्थिति में पाठ्यक्रम में इसको उचित स्थान आरंभ से ही प्रदान करना चाहिए। पढ़ने की योग्यता का सामान्यतः विद्वत्ता से क्या संबंध है ? इस पर पर्याप्त शोधकार्य किया गया है । डोरिस एम० ली ने 1933 में इस प्रकार का अध्ययन प्रकाशित किया ।

'स्वर' की दृष्टि से पढ़ने के दो भेद हैं :

(अ) सस्वर पठन
(आ) मौन पठन

सस्वर पठन से पर्याप्त लाभ हैं बशर्ते इसमें निम्नलिखित गुण हों :

(क) अक्षरों और शब्दों का शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चारण ।
(ख) अनुतान की स्वाभाविकता तथा उसमें आवश्यक उतार-चढ़ाव ।
(ग) बलाघात का समुचित प्रयोग ।
(घ) उचित संबद्धता तथा विराम ।
(ङ) अर्थबोध कराते हुए न अधिक तेज गति न धीमी गति ।

'मौन पठन' से भी पर्याप्त लाभ हैं । इससे गति में तीव्रता रहती है और अर्थग्रहण करने में सहायता मिलती है ।

अब तो द्रुतपठन का अभ्यास मशीनों द्वारा भी कराया जा सकता है ।

'पढ़ना' सिखाने के लिए अनेक बिधियां हैं जिनमें से 'वर्ण विधि', 'अक्षर (syllable) विधि', 'ध्वन्यात्मक विधि', 'देखो और पढ़ो', 'वाक्यांश विधि', 'वाक्य विधि' प्रधान हैं।

3.4. लिखना

इस कौशल का अर्थ है लिखना सिखाना अर्थात् लिपिचिह्न लिखने की योग्यता, सही वर्तनी की जानकारी और अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास । भाषा की संरचना की जानकारी तथा शब्द-भंडार पर भी लेखन-कौशल निर्भर करता है । वाक्य-संरचना, वाक्य-बंध, अनुच्छेद-निर्माण इस कौशल को विकसित करने में सहायक सिद्ध होते हैं । भाव-प्रकाशन की क्षमता, बोलने के साथ 'लिखने के अभ्यास' से विकसित होती है, जिसमें विषयवस्तु को

चुनना, उसके अनुरूप वाक्य-संरचना तथा शब्दावली का चयन नितांत आवश्यक है। 'रचना-शिक्षण' के लिए 'चित्र वर्णन प्रणाली', 'प्रश्नोत्तर विधि', 'रूपरेखा-विधि' प्रमुख हैं।

4. मातृभाषा के उद्देश्य और भाषा-कौशल

मातृभाषा बालक स्वयं सीखता है और जब तक वह किसी विद्यालय में प्रवेश पाता है पर्याप्त भाषा-ज्ञान प्राप्त कर लेता हैं। 'विचार और भाषा' कैसे एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं, यह महत्त्वपूर्ण विषय है। एक के बिना दूसरे का विकास नहीं कर सकते और बालक जिस भाषा में देखता, सोचता, समझता है वही सर्वोपरि हो जाती है—वह चाहे मातृभाषा हो और चाहे धाय-भाषा। दैनिक जीवन में मातृभाषा का प्रयोग ही किया जाता है।

भारतीय भाषाओं के शिक्षण के संदर्भ में जो अखिल भारतीय संगोष्ठी 1958 में जबलपुर में अयोजित की गई उसके अनुसार निम्नलिखित उद्देश्य परिगणित किए गए हैं :

(क) **ग्राह्यात्मक** : ग्राह्यात्मक उद्देश्य के अन्तर्गत लिखित भाषा (हिन्दी) को पढ़ना और समझना, पुस्तक के पाठों को क्रमशः बढ़ती हुई गति से पढ़ना, बोली हुई भाषा को समझना तथा शब्द-भंडार, सूक्ति-भंडार, मुहावरे, कहावतों आदि के भंडार को बढ़ाना आदि आता है। इस दृष्टि से कुछ भाषिक कौशल इस प्रकार हैं:—पठित और अपठित अंशों को धैर्यपूर्वक पढ़कर समझना; दूसरों द्वारा सामान्य गति में बोली गई भाषा को सुनकर समझना; पठित सामग्री में से शब्दों, मुहावरों, कहावतों आदि को समझना; अपने लिए अच्छा साहित्य छांट लेना; गद्य तथा पद्य का सस्वर भावानुसार पाठ करना; मौन वाचन कर समझ लेना।

(ख) **अभिव्यंजनात्मक** : अभिव्यंजनात्मक उद्देश्य की दृष्टि से 'भाषिक कौशल' इस प्रकार होंगे : शुद्ध, स्पष्ट और भावानुसार वाचन करना; शुद्ध, स्पष्ट भाषा में तेजगति से लिखना; पठित अवतरणों के विचारों को विस्तार से / संक्षेप में लिखना; पठित शब्दों, मुहावरों, सूक्तियों आदि का प्रयोग करना; दूसरों से प्रभावशाली ढंग से वार्तालाप करना; पठित सामग्री का मूल भाव निकालना; दूसरों के समक्ष अपने विचारों को स्पष्टता से रखना; संदर्भ सामग्री का प्रयोग करना।

(ग) **श्लाघात्मक** : श्लाघात्मक उद्देश्य के अनुसार भाषा तथा साहित्य के प्रति स्थायी राग उत्पन्न होना चाहिए अतएव विद्यार्थी में निम्नलिखित कौशलों की ओर ध्यान देना चाहिए। कविता का भावानुसार वाचन; सुन्दर अवतरणों/कविताओं का चयन करना; सत् साहित्य पहचानना; कविता/सूक्ति की व्याख्या करना; विभिन्न उत्सवों पर कविता पाठ करना।

(घ) **रचनात्मक** : रचनात्मक उद्देश्य के लिए निम्नलिखित कुशलताएं

अपेक्षित हैं : मौलिक निबंध लेखन; अन्य विधाओं (कहानी, कविता आदि) का लेखन; मौलिक विचार व्यक्त करना; भाषण देने की क्षमता; किसी परिस्थिति का यथातथ्य वर्णन करना; पत्र-व्यवहार करना।

इन सभी कौशलों के स्तर अवस्था एवं कक्षा के अनुसार भिन्न-भिन्न होंगे। पर इन कौशलों की सम्प्राप्ति तभी संभव है जब कक्षा में तथा कक्षा के बाहर अध्यापक इन सबकी ओर जागरूक रहे और सभी क्रियाकलापों का संयोजन करता रहे।

5. स्तर तथा भाषा-कौशल

5.1. प्राथमिक स्तर

प्राथमिक स्तर से ही यह उद्देश्य सामने रहता है कि विद्यार्थी लिखित रूप में अपने विचारों और भावों को व्यक्त कर सके।

भावों/विचारों को व्यक्त करना ही नहीं पर दूसरों के द्वारा व्यक्त भावों/विचारों को समझना भी। इसको भी दो रूपों में बांट सकते हैं : (1) मौखिक रूप से व्यक्त भावों/विचारों को भाषण, वार्तालाप, कथन आदि को सुनकर समझना, तथा (2) लिखित रूप में व्यक्त भावों/विचारों को पुस्तक और पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर समझना। इनको भी हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते है :

सुनकर अर्थग्रहण करना—सुनने की सामग्री के अनेक प्रकार हो सकते हैं—वार्तालाप, आदेश, अनुदेश, प्रवचन, भाषण, काव्यपाठ, गद्यपाठ, वाद-विवाद, आकाशवाणी से प्रसारित सामग्री (राजस्थान में प्राइमरी कक्षाओं के लिए भी पृथक् से प्रसारण के माध्यम से शिक्षण प्रारंभ हो गया है)। इसके लिए ध्यान से, मनोयोग से सुनने का अभ्यास अपेक्षित है।

पढ़कर अर्थग्रहण करना—पढ़ने की सामग्री के दो प्रकार हो सकते हैं—गद्य तथा पद्य। गद्य के अन्तर्गत कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, जीवनी, आत्मकथा, समाचारपत्रों आदि को पढ़ने का अभ्यास होना चाहिए।

बोलकर अभिव्यक्त करना—मौखिक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत मुख्य रूप से प्रारंभिक अवस्था में बातचीत (वार्तालाप), वाद-विवाद, कहानी-कथन, कविता-पाठ आदि आते हैं। यह ध्यान रखा जाए कि प्रसंगानुसार गति का प्रयोग हो, प्रवाह के साथ बोल सके तथा उचित बलाघात/अनुतान का प्रयोग हो। सरल तथा शुद्ध भाषा का लक्ष्य ही सर्वोपरि है। इस प्रकार विद्यार्थी वाक्यों/वाक्यांशों में शब्दों का उचित क्रम रख सकेगा, उचित हाव-भाव के साथ बोलने की क्षमता का विकास करेगा तथा क्रमबद्ध विचारों को मुहावरेदार भाषा में रख सकेगा।

लिखकर अभिव्यक्त करना—लिखित अभिव्यक्ति में प्रारंभिक अवस्था में

संवाद तथा पत्र ही मुख्यतः आते हैं। पत्र में प्रार्थनापत्र तथा घरेलू पत्र लिए जा सकते हैं। आगे चलकर पाठ्य सामग्री पर आधारित कहानी, निबंध, आत्म-कथा के अंश भी लिखवाए जा सकते हैं। प्रसंगानुसार आवश्यक गति से व्याकरण-सम्पन्न भाषा में लिख सकना ही लक्ष्य होना चाहिए। अगर लिखित कार्य लम्बा है तो विचारों में सुसम्बद्धता पर बल देना अपेक्षित है; इस प्रकार विराम चिह्न का प्रयोग तथा अनुच्छेद-विभाजन को विद्यार्थी सीखता चलेगा। अभि-व्यक्ति में अनुकूल शैली का उपयोग भी सीखना/सिखाना चाहिए।

5.2. माध्यमिक तथा स्नातकीय स्तर

उक्त कौशल ही स्तर के अनुरूप बढ़ते जाते हैं। क्रमशः लेखन के कौशल में विकास होता जाता है। साहित्य की नवीनतम विधाएं जुड़ती चलती हैं। पठन में गति तीव्र से तीव्रतर हो जाती है। अब तो द्रुतपठन का अभ्यास मशीनों की सहायता से कराया जाने लगा है। भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, ने भारतीय भाषाओं के संदर्भ में भी इस प्रकार की सामग्री का निर्माण किया है।

यह माना गया है कि प्राथमिक स्तर के अन्त तक विद्यार्थी को मातृभाषा में मानक रूप के माध्यम से सामान्य रूप में अपेक्षित गठन और शब्दावली का प्रयोग करके मौखिक और लिखित रूप में आत्माभिव्यक्ति में समर्थ हो जाना चाहिए। उसे शुद्ध उच्चारण, ध्वनि का उतार-चढ़ाव, भाव-मुद्रा, आवश्यक गति और अर्थ-ग्रहण के साथ बोलकर पढ़ना आ जाना चाहिए। अर्थ ग्रहण करते हुए मौन पठन का सही तरीका भली प्रकार सीख लेना चाहिए। सरल वर्णनों को सुनकर अर्थ-ग्रहण की क्षमता का विकास होना चाहिए। मिडिल और माध्यमिक स्तरों पर गहनतर भाषिक और विचारणात्मक विषयवस्तु के माध्यम से उपर्युक्त सभी विशेषताओं में प्रवीणता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

भाषण कला, वाद-विवाद, विचार-विनिमय का उत्तरोत्तर विकास स्नातक/स्नातकोत्तर कक्षाओं में होना चाहिए तथा लेखन के विविध पक्षों एवं विधाओं को विकसित करना चाहिए।

6. अन्य भाषा-शिक्षण

अन्य भाषा-शिक्षण के अन्तर्गत द्वितीय तथा तृतीय भाषा का शिक्षण आता है। इन भाषाओं पर विद्यार्थी का अधिकार कम होता है, क्योंकि वह सीमित शब्द-भंडार और स्तरीकृत अभिरचनाओं (सांचों) का अभ्यास करता है।

इस संबंध में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्ने भाषा-कौशलों के अन्तर्गत कुछ अपेक्षित योग्यताएं इस प्रकार रखी है:

6.1. माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी

भाषा-कौशलों को तीन भागों में विभक्त किया गया है :

1. सुनना और बोलना

2. पढ़ना

3. लिखना

6.1.1. सुनना और बोलना

1. ध्वनियों को सुनकर उनमें भेद कर सकना।

2. हिंदी की सभी ध्वनियों का अलग-अलग, स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण कर सकना।

3. संयुक्ताक्षर वाले शब्दों का शुद्ध उच्चारण कर सकना।

4. हिंदी में शुद्ध वाक्य बोल सकना।

5. सरल विषयों पर सामान्य स्तर की बातचीत में भाग ले सकना।

6. हिंदी में दिए गए निर्देशों को समझना।

7. मित्रों और अपरिचितों को अपनी बात हिंदी में समझा सकना।

8. हिंदी में स्वागत कर सकना, परिचय दे सकना और धन्यवाद दे सकना।

9. हिंदी में संवादों और छोटे एकांकियों के अभिनय में भाग ले सकना।

10. रेडियो, फ़िल्म और टेलीविज़न पर मनोरंजन और ज्ञान प्राप्ति के लिए हिंदी कार्यक्रम सुनना और देखना।

6. 1. 2. पढ़ना

1. हिंदी के सभी लिपिचिह्नों को पहचानना।

2. हिंदी में शब्दों और वाक्यों को शुद्ध उच्चारण के साथ सप्रवाह पढ़ सकना।

3. सरल संवादात्मक पाठ, कहानियां, निबन्ध, जीवनी, यात्रा-वर्णन आदि अर्थबोध के साथ पढ़ सकना।

4. पाठ्यवस्तु में केन्द्रीय भाव तथा विशेष सूचना या विचार वाले अंश खोज सकना।

5. पठित अंश पर आधारित प्रश्नों के उत्तर दे सकना।

6. 1. 3. लिखना

1. हिंदी के सभी लिपिचिह्नों और उनसे बने शब्दों को सुडौल और सुपाठ्य ढंग से लिख सकना।

2. सरल विषयों पर कुछ वाक्य या एक-दो अनुच्छेद लिख सकना।

3. मित्रों को पत्र लिख सकना।

4. परिचित शब्दों की शुद्ध वर्तनी लिखना।

5. व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध भाषा का प्रयोग करना।

6. 2. उच्च माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी

भाषा-कौशलों को निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता है :

6. 2. 1. सुनना और बोलना

1. प्रवाह के साथ बोली जाती हुई हिंदी को अर्थबोध के साथ समझना। उदाहरणार्थ, रेडियो पर दी जाने वाली वार्ताओं को या फिल्मों के संवादों को समझ सकना।

2. हिंदी शब्दों का शुद्ध उच्चारण कर सकना तथा हिंदी के स्वाभाविक अनुतान का प्रयोग करना।

3. सामान्य विषयों पर बातचीत कर सकना और परिचर्चा में भाग ले सकना।

4. हिंदी कविताओं को उचित लय, आरोह-अवरोह और भाव के साथ पढ़ सकना।

5. सरल विषयों पर कुछ तैयारी के साथ दो-चार मिनट का भाषण दे सकना।

6. हिंदी अभिनय में भाग ले सकना।

6. 2. 2. पढ़ना

1. हिंदी में कहानी, निबंध, यात्रा-वर्णन, जीवनी, पत्र, डायरी आदि अर्थ-बोध और रुचि के साथ पढ़ सकना।

2. पाठ्यवस्तु के संबंध में विचार कर सकना और अपना मत व्यक्त कर सकना।

3. संदर्भ साहित्य को पढ़कर अपने काम के लायक सूचना एकत्र कर सकना।

4. पठित वस्तु का सारांश तैयार कर सकना।

5. हिंदी कविताओं को रुचि और रसबोध के साथ पढ़ना।

6. ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन के लिए पुस्तकें और पत्रिकाएं पढ़ना।

6. 2. 3. लिखना

1. हिंदी के परिचित और अपरिचित शब्दों की शुद्ध वर्तनी लिखना।

2. विराम-चिह्नों का समुचित प्रयोग कर सकना।

3. लिखते हुए व्याकरण-सम्मत भाषा का प्रयोग करना।

4. हिंदी में पत्र, निबंध, संकेतों के आधार पर कहानियां, वर्णन-सारांश आदि लिखना।

5. हिंदी से मातृभाषा में और मातृभाषा से हिंदी में अनुवाद कर सकना।

7.0 उक्त सभी कौशलों के समुचित विकास में दृश्य-श्रव्य सामग्री का

उपयोग (विशेष रूप से भाषा प्रयोगशाला का उपयोग) अपेक्षित है। सभी कौशलों में समान तत्त्व हो सकते हैं। जो विद्यार्थी तेज़ी से पढ़ते हैं वे उच्चरित भाषा को तेज़ी से समझ भी लेते हैं। द्वितीय भाषा में आवश्यकतानुसार मात्र किसी एक कौशल पर अधिकार किया जा सकता है अथवा एकाधिक पर भी, जबकि मातृभाषा में सभी कौशलों पर। यों एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न कौशलों में अंतर होता है और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का भिन्न-भिन्न कौशलों पर भिन्न अधिकार।

भाषा-शिक्षण-पद्धतियां 4

0.0. भाषा-शिक्षण की अनेकानेक पद्धतियां विश्व में प्रचलित हैं, अथवा प्रचलित रही हैं। यहां उन्हें हम दो शीर्षकों में रख सकते हैं : मातृभाषा-शिक्षण-पद्धतियां, अन्य भाषा-शिक्षण-पद्धतियां।

1.0 मातृभाषा-शिक्षण-पद्धतियां

मातृभाषा-शिक्षण की पद्धतियों पर अलग से विचार प्राय: नहीं किया गया है। यों शिक्षण की जो-जो पद्धतियां प्रचलित रही हैं या हैं, उनमें थोड़े-बहुत स्पष्ट अथवा अस्पष्ट संकेत मातृभाषा-शिक्षण के भी मिल जाते हैं। इन पद्धतियों में कुछ मुख्य ये हैं :

1.1. बालोद्यान (किंडरगार्टन)-पद्धति

इसमें खेल के माध्यम से शिक्षा देने पर बल है। अर्थात् इसके अनुसार भाषा की शिक्षा भी खेल के माध्यम (अक्षर पहचानने के खेल तथा अक्षरों से जोड़कर शब्द बनाने के खेल आदि) से दी जानी चाहिए।

1.2. मांटेसरी-पद्धति

इसमें बच्चे की शिक्षा को तीन भागों में बांटा गया है: कर्मेन्द्रियों की शिक्षा, ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा, भाषा-शिक्षण। भाषा की शिक्षा में यह पद्धति लिखना पहले सिखाती है, और पढ़ना बाद में, क्योंकि डा० मांटे-सरी के अनुसार लिखना पढ़ने से सरल होता है। इस पद्धति में प्रत्यक्ष पदार्थों से शब्द के संबंध का पहले ज्ञान देते हैं, फिर कार्डों पर चित्र के साथ उनके नाम लिखकर देते हैं; अक्षर लिखवाने के पहले कागज़ अथवा लकड़ी के कटे अक्षरों पर उंगली फिरवाते हैं तथा अक्षर लिखते समय उसका उच्चारण भी कराते हैं। इसमें लिखने और पढ़ने की शिक्षा देने के बाद व्याकरण की शिक्षा दी जाती है। व्याकरण की शिक्षा के लिए 'व्याकरण बॉक्स' नामक एक यंत्र का उपयोग इस पद्धति में किया जाता है, जिसके सहारे खेल-खेल में व्याकरण की शिक्षा देना संभव होता है।

1.3. डाल्टन-पद्धति

स्व-शिक्षा तथा प्रत्येक विद्यार्थी पर वैयक्तिक ध्यान देना इस पद्धति

की विशेषता है। इसमें हर विषय की तरह भाषा-शिक्षण का भी अलग कमरा होता है, जिसमें जाकर विद्यार्थी स्वाध्याय, विचार-विमर्श तथा लेखन कार्य आदि के द्वारा शिक्षा प्राप्त करता है तथा अध्यापक उसकी अशुद्धियों का संशोधन करते हुए उसे गाइड करता है। इसमें भाषा-शिक्षण के लिए कोई निश्चित पुस्तक नहीं होती। छात्र अपनी रुचि की पुस्तक चुनकर स्वाध्याय करता है। इसमें लिखित कार्य के साथ-साथ, मौखिक कार्यों पर भी बल देते हैं। यों उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह पद्धति काफी उपयोगी है, किंतु प्रारंभ की कक्षा के लिए कदाचित् उतनी नहीं।

1.4. खोज (ह्यूरिस्टिक)-पद्धति

इस पद्धति में इस बात पर बल देते हैं कि बालक स्वयं खोज करके 'ट्रायल और एरर' पद्धति से सत्य का पता लगाएं। इसमें रटाने पर बल नहीं देते। स्वाध्याय द्वारा बातों के याद होने पर बल देते हैं। प्रश्नों के माध्यम से अध्यापक इस पद्धति में विद्यार्थी को प्रेरित करते हैं। यह पद्धति उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अच्छी है, यदि प्रति शिक्षक विद्यार्थियों की संख्या काफी कम हो। छोटी कक्षा में यह पद्धति नहीं अपनाई जा सकती।

1.5. अप्रत्यक्ष भाषा-शिक्षण-पद्धति

यह कोई प्रचलित पद्धति नहीं है, अपितु मैं सुझाव रूप में यह पद्धति दे रहा हूं। मातृभाषा की शिक्षा 'प्रत्यक्षत: भाषा की शिक्षा' के रूप में न होकर अप्रत्यक्ष रूप से होनी चाहिए। प्रत्यक्ष भाषा-शिक्षण-पद्धति प्राय: निर्देशात्मक व्याकरण (Prescriptive grammar) से युक्त होती है, अत: रुचिकर नहीं होती। होना यह चाहिए कि छठी कक्षा तक व्याकरण कहीं नहीं आनी चाहिए तथा बालक को कहानी, कविता, नाटक, तथा मातृभाषा के माध्यम से अन्य विषय पढ़ने देना चाहिए। यह सामग्री शब्द-भंडार तथा मातृभाषा की व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से अनुस्तरित (graded) होनी चाहिए, ताकि धीरे-धीरे व्याकरण को रटे बिना तथा यह समझे बिना कि भाषा अलग से पढ़ाई जा रही है, विद्यार्थी भाषा में दक्ष होता चले। उसके बाद कहानी, नाटक, कविता आदि के साथ-साथ, सातवीं-आठवीं में अप्रत्यक्ष रूप से पाठों से संबद्ध अभ्यासों के माध्यम से प्रकार्यपरक (functional) व्याकरण की कुछ जानकारी देनी चाहिए। इसके लिए वाक्य-परिवर्तन (सकारात्मक से नकारात्मक, सामान्य से प्रश्नवाचक आदि) तथा शब्द-रचना ('शहर' से 'शहरी', 'समाज' से 'सामाजिक' आदि) के अभ्यास भी कराए जा सकते हैं। 9वीं-10वीं में प्रकार्यपरक व्याकरण अच्छी तरह पढ़ाया जा सकता है। यहां भी रटने पर बल न देकर अशुद्धि-शोधन के माध्यम से व्याकरण के नियम विद्यार्थी तक पहुंचने चाहिए। साथ ही अच्छी भाषा में लिखी पुस्तकें विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए दी जानी चाहिए, तथा उनके गुण-दोषों की ओर उनका ध्यान

आकर्षित करना चाहिए। साथ ही इनके आधार पर उनसे लेखन-कार्य भी कराना चाहिए। हम जानते हैं कि आज विद्यार्थी व्याकरण और व्याकरण-युक्त भाषा-शिक्षण में विशेष रुचि नहीं लेता, और इसका परिणाम यह होता है उच्चतम कक्षा तक पहुंचने पर भी, उसमें भाषा के चारों कौशलों का समुचित विकास नहीं हो पाता। अप्रत्यक्ष पद्धति यदि सुव्यवस्थित रूप से प्रयोग में लाई जाए, तथा अशुद्धि-शोधन और अच्छी अभिव्यक्ति के संकेत का समुचित ध्यान रखा जाए तो, मातृभाषा-शिक्षण बहुत रुचिकर तथा उपयोगी हो सकता है।

2.0. अन्य भाषा-शिक्षण-पद्धतियां

मातृभाषा-शिक्षण की तुलना में अन्यभाषा-शिक्षण की अपेक्षाकृत बहुत अधिक पद्धतियां प्रचलित हैं, जिनमें से मुख्य लगभग 22-23 हैं—(1) स्वयं-शिक्षक (self-taught) पद्धति, (2) व्याकरण पद्धति, (3) अनुवाद पद्धति, (4) व्याकरण अनुवाद पद्धति, (5) वाचन (reading) पद्धति, (6) प्रत्यक्ष (direct) पद्धति, (7) स्वाभाविक पद्धति, (8) मनोवैज्ञानिक पद्धति, (9) ध्वनि वैज्ञानिक (phonetic) पद्धति, (10) भाषा-नियंत्रण (language-control) पद्धति, (11) अनुकरणात्मक (mimicry memorization) पद्धति, (12) सकलन (electic) पद्धति, (13) इकाई (unit) पद्धति, (14) सगोत्रीय (cognate) पद्धति, (15) द्विभाषीय (dual language) पद्धति, (16) वार्तालाप (dialogue) पद्धति, (17) श्रवण-भाषण (audio-lingual) पद्धति-(18) संदर्भ (contextual) पद्धति, (19) भाषा प्रयोगशाला (language lab) पद्धति, (20) चलचित्र (film) पद्धति, (21) आधार (base) पद्धति, (22) सरलीकरण (simplification) पद्धति, आदि।

2.1. इनमें से कुछ मुख्य पर नीचे विचार किया जा रहा है।

2.1.1. **स्वयंशिक्षक पद्धति**—विश्व के अनेक देशों में इस पद्धति का प्रचार है। इसमें मातृभाषा के माध्यम से अन्य भाषा सिखाने वाली पुस्तकों को पढ़कर भाषा सीखने वाला अपने-आप भाषा सीखता है। पुस्तक में बीच-बीच में अनुवाद के अभ्यास भी होते हैं, तथा व्याकरण के नियम भी। हिंदी में 'तमिल स्वयंशिक्षक,' 'फ्रेंच स्वयंशिक्षक' आदि इसी प्रकार की पुस्तकें हैं। इस पद्धति की सबसे बड़ी खूबी यह है कि बिना कहीं आए-गए, बिना कुछ विशेष व्यय किए, थोड़े पैसे में पुस्तक खरीदकर या पुस्तकालय से लेकर, सुविधानुसार, अपने खाली समय में कोई भी भाषा सीखी जा सकती है। इस पद्धति की खराबी यह है कि इससे भाषा का केवल अत्यंत सामान्य ज्ञान ही प्राप्त किया जा सकता है, तथा इस पद्धति से पढ़ने वाला उस भाषा को ठीक से प्राय: बोल या लिख नहीं पाता। अब कुछ देशों में ठीक उच्चारण सिखाने के लिए स्वयंशिक्षकों के साथ रिकार्ड भी दिए जाने लगे हैं, किंतु इनसे भी एक सीमा तक ही सहायता मिल पाती है।

2.1.2. **व्याकरण-पद्धति**—इस पद्धति से अन्य भाषा की शिक्षा मुख्यत: उस

भाषा का व्याकरण पढ़ाकर दी जाती है। भारत में परंपरागत पाठशालाओं में संस्कृत की शिक्षा इसी विधिसे दी जाती रही है। व्याकरण का थोड़ा ज्ञान हो जाने पर इस पद्धति में साहित्यिक पुस्तकें भी पढ़ाई जाती हैं। उस स्थिति में यह पद्धति **व्याकरण-साहित्य-पद्धति** कही जा सकती है। इस पद्धति में अनुवाद करने की परंपरा नहीं है। बोलचाल की भाषा के लिए तो नहीं, किंतु पुस्तकालयी भाषा के लिए यह पद्धति काफी अच्छी है। हम जानते हैं कि हमारे यहां इस पद्धति से पढ़े व्यक्तियों को ही संस्कृत का अच्छा ज्ञान होता है। इस पद्धति में एक ही खराबी है कि इसमें बहुत रटना पड़ता है, बहुत परिश्रम करना पड़ता है, बहुत समय लगता है, तथा शिक्षण-पद्धति बहुत रुचिकर नहीं होती, अतः कम ही लोग इस पद्धति से भाषा भली भांति सीख पाते हैं। भारत के बाहर भी इस पद्धति का इसी रूप में या थोड़े-बहुत भिन्न रूप में प्रयोग होता रहा है।

2.1.3. **अनुवाद-पद्धति**—इसमें पहले अन्य भाषा से मातृभाषा में और फिर मातृभाषा से अन्य भाषा में अनुवाद कराने पर बल देते हैं। व्याकरण के नियम अशुद्धि-शोधन के रूप में इसमें सिखाए जाते हैं तथा अनुवाद के अभ्यासों के साथ-साथ अन्य भाषा का शब्द-भंडार भी भाषा सीखने वाला सीखता जाता है। यह पद्धति भी उपर्युक्त पद्धतियों की तरह बहुत खर्चीली नहीं होती। इस पद्धति से अनुवाद करना तो आ जाता है, किंतु अन्य भाषा में दक्षता नहीं प्राप्त हो पाती। इस पद्धति से अन्य भाषा सीखने वाले में अन्य भाषा के सुनने और बोलने के कौशल का समुचित विकास नहीं हो पाता।

2.1.4. **व्याकरण-अनुवाद-पद्धति**—अन्य भाषा-शिक्षण के लिए इस मिश्रित पद्धति का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में बहुत पहले से अनेक देशों में होता आ रहा है। यूरोप में ग्रीक-लैटिन की शिक्षा प्रायः इसी प्रकार दी जाती रही है। यह पद्धति प्राचीन और परंपरागत होते हुए भी काफी लाभकर रही है। इसकी मुख्य **अच्छाइयां** हैं : (1) इस पद्धति के द्वारा लिखित भाषा को समझने की अच्छी क्षमता प्राप्त हो जाती है। (2) यह पद्धति अन्य भाषा के नियमों, अपवादों आदि की बहुत गहरी जानकारी पढ़ने वाले को देती है। (3) इस पद्धति से पढ़े लोग अनुवाद बहुत अच्छा कर लेते हैं। इसकी मुख्य **कमियां** हैं : (1) यह पद्धति मूलतः रटने पर आधारित होने के कारण बहुत उबाऊ है। (2) इस पद्धति का एक दुष्परिणाम यह होता है कि भाषा सीखने से डर लगता है और कम ही लोग इसके द्वारा भाषा ठीक से सीख पाते हैं। (3) भाषा सीखने का अर्थ है चारों कौशलों (सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने) की प्राप्ति। सच्चे अर्थों में व्याकरण-अनुवाद पद्धति इन चारों का पूर्ण विकास नहीं कर पाती। कारण स्पष्ट है। अनुवाद करने का कौशल सर्वथा अलग कौशल है और 'उसमें दक्षता' को 'भाषा में दक्षता' का पर्याय नहीं माना जा सकता, या किसी भाषा के नियमों और रूपों को जानना एक बात है तथा उस भाषा के प्रयोग में दक्षता प्राप्त करना दूसरी

जाता है। (4) सबसे बड़ी कमी यह है कि भाषा सीखने वाले का ध्यान इस बात की ओर नहीं जाता कि हर भाषा अलग सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में पनपती है, अतः ध्वनि हो या अर्थ, शब्द हो या रूप, मातृभाषा तथा अन्य भाषा पूर्णतः समान नहीं होतीं। इस पद्धति का ध्यान इस बात की ओर नहीं गया, अतः इस पद्धति से भाषा सीखने वाला प्रायः अन्य भाषा के प्रयोग में मातृभाषा से प्रभावित हो जाता है, और इस प्रकार अन्य भाषा को वह ठीक से नहीं सीख पाता।

2.1.5. **प्रत्यक्ष (Direct)-पद्धति**—(क) प्रत्यक्ष पद्धति यह मानकर चलती है कि मातृभाषा की तरह ही अन्य भाषा भी सिखाई जा सकती है, और इसलिए इस पद्धति में मातृभाषा का उपयोग न करके सीधे पढ़ाई जाने वाली भाषा ही सिखाते हैं। इसीलिए इसका नाम 'प्रत्यक्ष पद्धति' है। (ख) इसमें प्रारम्भ में मौखिक कार्य (बोलना, दूसरे को सुनकर दुहराना) पर विशेष बल देते हैं तथा सुनने और बोलने में अच्छी गति हो जाने पर पढ़ना और लिखना सिखाते हैं।(ग) इसमें शब्द-भंडार तथा संरचना की शिक्षा आस-पास की परिस्थिति के अनुरूप बात-चीत या प्रश्न के माध्यम से दी जाती है। (घ) मूर्त वस्तुओं के लिए शब्द और उनके अर्थ की शिक्षा उन मूर्त वस्तुओं को दिखाकर ही दी जाती है। (ङ) इस पद्धति में सुनने और बोलने के सहारे ऐसी आदत डालने पर बल दिया जाता है कि विद्यार्थी अपनी मातृभाषा को बीच में लाएं बिना उस अन्य भाषा में ही सोचने तथा उसी के आधार पर बोलने लगे। (च) इसमें न तो अनुवाद कराया जाता है और न व्याकरण के नियम ही रटाए जाते हैं। इस पद्धति के आलोचकों ने मुख्यतः तीन बातें इसके विरुद्ध कहीं हैं—(क) यह सोचना कि मातृभाषा की तरह ही अन्य भाषा सीखी जा सकती है, सही नहीं है। एक बार मातृभाषा अर्जित कर लेने पर भाषा सीखने वाला जाने-अनजाने उसे बीच में लाए बिना नहीं रह सकता। (ख) इस पद्धति में समय बहुत लगता है। (ग) कुशाग्र-बुद्धि विद्यार्थी ही इससे विशेष रूप से लाभ उठा पाते हैं, सामान्य विद्यार्थी नहीं।

मेरे अपने विचार में प्रत्यक्ष पद्धति से अन्य भाषा की शिक्षा तब बहुत सफल नहीं हो सकती जब तक विद्यार्थी उस अन्य भाषाभाषी समाज में ही रहता न हो और दिन-रात उसे वही भाषा सुननी न पड़ती हो, तथा उस भाषा में बोलने के अतिरिक्त उसके पास कोई चारा न हो। उदाहरण के लिए किसी को रूस में रखकर इस पद्धति से रूसी सिखाना बहुत सरल है, किंतु यदि परिस्थिति इसके विपरीत है, जैसे हिंदी क्षेत्र में रहकर कोई इस पद्धति से रूसी सीखना चाहे तो बहुत सरल नहीं है।

स्वाभाविक पद्धति (बेलजियम में प्रचलित), मनोवैज्ञानिक पद्धति, ध्वनि-वैज्ञानिक पद्धति, भाषा-नियंत्रण-पद्धति, अनुकरणात्मक (मिमिक्री मेमोराइजेशन) पद्धति, तथा अभ्यास (practice) पद्धति भी प्रत्यक्ष पद्धति से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। ये सभी अन्य भाषा को विद्यार्थी की आदत बनाने पर बल

देती हैं, तथा पहले सुनने फिर बोलने से भाषा सिखाना ठीक समझती हैं ।

2.1.6. **चयन-पद्धति**—जर्मनी तथा फ्रांस में प्रचलित यह पद्धति प्रत्यक्ष पद्धति, व्याकरण-पद्धति तथा अनुवाद-पद्धति के समन्वय पर आधारित है । इसमें ज़ोर से पढ़ना, बातचीत तथा प्रश्नोत्तर पर बल देते हैं । यह पद्धति भाषा-कौशल का विकास इस क्रम से करती है : बोलना, लिखना, समझना, पढ़ना । यह पद्धति काफी सफल रही है ।

2.1.7. **वाचन-पद्धति**—इस पद्धति का प्रचार अमेरिका में विशेष रहा है । इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य किसी भाषा का वाचन का ज्ञान देना है । पुस्तकालयी भाषा के लिए यह पद्धति अच्छी है । इसमें अनुस्तरित (graded) वाचन सामग्री देते हैं, तथा साथ में अनुवाद और व्याकरणिक संकेत भी । कुछ प्रगति हो जाने पर इसमें सरलीकृत उपन्यास आदि पढ़ने को दिए जाते हैं ।

2.1.8. **इकाई-पद्धति**—यह पद्धति मूलतः शिक्षा की हरबर्ट-पद्धति पर आधारित है । इसमें कक्षा की रुचि का विषय (जैसे यात्रा, उत्सव, खेल) पहले चुनते हैं, जिसे एक इकाई कहते हैं । फिर भाषा सीखने वालों की एक समिति उस विषय पर मातृभाषा में एक बातचीत तैयार करती है, अध्यापक उसका अन्य भाषा में अनुवाद करता है, तथा उसे संवाद रूप में पढ़नेवाले दुहराते हैं । फिर शब्द-भंडार, व्याकरणिक बिंदुओं को याद कराने के लिए लेखन, अनुवाद, एवं खाली स्थान भरो, जैसे अभ्यास कराए जाते हैं ।

2.1.9. **सगोत्रीय पद्धति**—इसमें मातृभाषा तथा अन्य भाषा से प्राप्त सगोत्रीय शब्दावली से भाषा पढ़ाना शुरू कराते हैं । कहना न होगा कि ऐसे शब्द कभी तो बहुत कम मिलेंगे, और कभी बिल्कुल नहीं, अतः सभी भाषाओं के लिए यह पद्धति काम में लाना कठिन है । उदाहरण के लिए चीनीभाषी को हिंदी या हिंदीभाषी को जापानी सिखाने में यह पद्धति बिल्कुल भी काम नहीं कर सकती ।

2.1.10. **द्विभाषीय पद्धति**—इसमें मातृभाषा तथा अन्य भाषा की ध्वनि, शब्द, रूप तथा वाक्य-रचना विषयक समानताएं और असमानताएं पहले निकाल लेते हैं, फिर उनके आधार पर पठन-सामग्री तैयार करते हैं ।

2.1.11. **श्रवण-भाषण-पद्धति**—इसमें मुख्यतः सुनकर भाषा बोलने और फिर पढ़ने तथा लिखने पर बल दिया जाता है । यह पद्धति तीन बातों पर आधारित है : (क) सांस्कृतिक मानवविज्ञानियों की यह धारणा कि भाषा अन्य सामाजिक कार्यों की तरह आदतों का सेट (set of habits) है; (ख) व्यवहारवादी मनोविज्ञानवेत्ताओं की धारणा है कि भाषा प्रेरणा (stimulus)-अनुक्रिया (response) का क्रम है । अर्थात् किसी भी रूप में कोई प्रेरणा मिलने पर व्यक्ति बोलता है; (ग) भाषा का वास्तविक रूप वह होता है जो मातृभाषी द्वारा बोला

जाता है न कि वह रूप जो व्याकरण में दिया होता है । इस पद्धति के मूल सूत्र पांच हैं : (क) भाषा मूलतः बोली जाती है, लिखी नहीं; (ख) भाषा आदतों का एक सेट होती है; (ग) भाषा पढ़ाओ, भाषा के विषय में मत पढ़ाओ; (घ) मातृ-भाषी जो बोलता है, वही भाषा है, वह नहीं जो वैयाकरण आदर्श रूप में रखता है; (ङ) भाषाओं में अंतर होता है ।

इस पद्धति में लिखने के पूर्व सुनकर बोलने पर बल देते हैं । प्रारंभ में मूल-भूत वाक्य दुहरवाते हैं, ताकि उनकी संरचना सीखने वाले के मस्तिष्क में आदत के रूप में बैठ जाएं । भाषा की संरचना के सांचे (पैटर्न) अनुस्तरित (graded) रूप में क्रमशः उसे सिखाए जाते हैं—अर्थात् पहले कम जटिल, फिर अधिक जटिल । कुछ सीख लेने पर पढ़ना और लिखना सिखाते हैं । कक्षा में सामूहिक रूप से अभिरचना-अभ्यास तथा भाषा-प्रयोगशाला का समुचित प्रयोग इसे सही रास्ते पर गति प्रदान करता है। अनुवाद तथा व्याकरण की प्रत्यक्ष शिक्षा से प्रायः बचते हैं । अंततः यह पद्धति भाषा विशेष की संरचना को भाषा सीखने वाले में इस प्रकार बैठा देती है कि वह आदतन बिना सोचे-समझे ठीक प्रकार से बोलने-लिखने लगता है, ठीक उसी प्रकार जैसे उस भाषा का मातृभाषी बोलता-लिखता है ।

इस पद्धति की सबसे बड़ी अच्छाई यह है कि सीखने वाला सहज रूप से बोलना सीख जाता है तथा व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की समुचित सहायता लेने के कारण, उसकी मातृभाषा व्याघात नहीं उपस्थित करने पाती । इसमें पढ़ना-लिखना भी ठीक समय पर सिखाया जाता है, अतः ये कौशल छूटने नहीं पाते । भाषा सिखाने के दौरान इस पद्धति में सीखने वाला आद्यंत सक्रिय रहता है,अतः ऊबता नहीं । साथ ही इसमें हर सीखने वाले पर व्यक्तिगत रूप से शिक्षक ध्यान रखता है ।

इसकी कुछ कमियों की ओर लोगों ने संकेत किया है । जैसे यह कि यह पद्धति एक यांत्रिक व्यापार जैसी है, अतः कभी-कभी ऊब होती है । साथ ही सीखनेवाला भाषा के प्रयोग में पूरे संदर्भ प्रायः नहीं सीख पाता । यह भी कहा गया है कि अच्छा विद्यार्थी तो इस पद्धति से जल्दी सीख लेता है, किंतु अन्यों के लिए अभिरचना-अभ्यास आदि की क्रिया बार-बार की जाती रहती है, अतः अच्छे विद्यार्थी के ऊबने की संभावना रहती है ।

3.0. अंत में यह कहा जा सकता है कि विश्व में किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किसी भी पद्धति को क्यों न लिया जाए उसके पक्ष-विपक्ष में कुछ-न-कुछ कहा ही जा सकता है । ऐसी स्थिति में उपर्युक्त पद्धतियों में किसी को भी पूर्णतः व्यर्थ नहीं कहा जा सकता, और न किसी को सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ ही कहा जा सकता है । यों सब मिलाकर श्रवण-भाषण-पद्धति काफी अच्छी

है तथा प्रत्यक्ष पद्धति भी । यदि इन दोनों का उचित समन्वय किया जा सके तो परिणाम और भी अच्छे हो सकते हैं।

4.0. पहले अध्याय में भाषा-प्रकार की चर्चा की गई है। उससे भी इन पद्धतियों का संबंध है । यदि भाषा के चारों कौशल सिखाने हैं तो श्रवण-भाषण-पद्धति अच्छी हैं, किंतु यदि पुस्तकालयी भाषा के रूप में कोई भाषा सिखानी हो तो व्याकरण-अनुवाद पद्धति भी काफी उपयोगी है।

व्यतिरेकी विश्लेषण 5

0.0. दो या दो से अधिक भाषाओं के सभी स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन द्वारा समानताओं और असमानताओं के निकालने को व्यतिरेकी विश्लेषण (कंट्रास्टिव एनेलिसिस) कहते हैं। तुलना दो भाषाओं की होती है। भाषाओं की तुलना से तात्पर्य है भाषाओं की संरचना की तुलना। भाषाओं में पारस्परिक संबंध कितना हो कि तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके, यह विवादास्पद प्रश्न है। कुछ के अनुसार एक ही परिवार की मिलती-जुलती भाषाओं में भाषायी संबंधों का व्याख्यात्मक अध्ययन संभव है और इनके तुलनात्मक अध्ययन से कुछ शिक्षण-बिन्दु निकाले जा सकते हैं, किंतु दो नितांत भिन्न भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से क्या लाभ? इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दी-गुजराती की तुलना की जा सकती है, किंतु हिन्दी-तेलुगु की नहीं। पर यह बात नितांत सत्य नहीं, क्योंकि अनुभूति के स्तर पर साधारणत: भाषाएं समान होती हैं और अनुभूति की अभिव्यक्ति ही भाषा का रूप ले लेती है।

जब कोई अनुभूति अभिव्यक्ति का रूप धारण करती है तो उसके पीछे कुछ सिद्धान्त होते हैं और ये भाषायी सिद्धान्त समान होते हैं। भाषण ध्वनियों के योग से शब्द और शब्दों (पदों) के एक निश्चित क्रम से पदबंध और वाक्यों का निर्माण होता है। भाषा के इन सामान्य सिद्धान्तों में जो अन्तर दो भिन्न भाषाओं में पड़ता जाता है, उसका ही तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा समानताएं तथा असमानताएं दोनों ही उभरकर सामने आ जाती हैं।

1.0. तुलनात्मक अध्ययन और व्यतिरेकी विश्लेषण

भाषाशास्त्र की इस तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति से अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान में विशेष लाभ उठाया जाता है। यह तुलनात्मक अध्ययन दो भाषाओं के (एक काल में) सभी स्तरों पर—ध्वनि, अक्षर, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य—हो सकता है, अथवा एक ही भाषा के दो भिन्न कालों के स्वरूप का भी अध्ययन हो सकता है।

इस तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर व्यतिरेकी विश्लेषण एक ही भाषा

के उच्चरित तथा लिखित पक्ष का भी हो सकता है, क्योंकि दोनों में पर्याप्त अन्तर हो जाता है। यह अन्तर क्या है, और उसमें से किस-किस पक्ष को भाषा-शिक्षण में स्थान मिलना चाहिए, यह भी निकाला जा सकता है।

भाषा में एक व्यवस्था होती है और दो भाषाओं की व्यवस्था में विश्लेषणात्मक विधि से व्यतिरेकी (विरोध) को स्पष्ट करना दोनों भाषाओं को सीखने / सिखाने में मदद करता है। विश्व की सभी भाषाओं की व्यवस्थाएं भिन्न होती हैं। इसीलिए अनुभूति में समानता होते हुए भी अभिव्यक्ति में असमानता होती है। किसी भी भाषा में सामान्य वाक्य को प्रश्नसूचक वाक्य में परिवर्तित किया जा सकता है, जैसे :

	1	2	3	4
सामान्य	राम	आगरा	**जा रहा**	है।
प्रश्न	राम	कहां	जा रहा	है?

उक्त दोनों वाक्यों में क्रम में कोई अन्तर नहीं पड़ा, दोनों वाक्यों में प्रारम्भ में सं० 1 पर कर्त्ता है और अन्त में सं० 3 व4 पर क्रिया, मात्र सं० 2 पर पहले वाक्य में स्थान सूचक शब्द है तो दूसरे वाक्य में प्रश्नसूचक शब्द। पर इसी वाक्य को अंग्रेज़ी में कहा जाए तो यह क्रम नितांत भिन्न हो जाता है, प्रारम्भ में प्रश्नसूचक शब्द लाना पड़ेगा और उसके साथ सहायक क्रिया। इससे तात्पर्य यह निकला कि हिन्दी भाषियों को अंग्रेज़ी में प्रश्नवाचक वाक्यों को बनाना जब सिखाया जाए तो विशेष परिश्रम करना होगा और उसके विशिष्ट नियमों को सिखाना होगा।

मात्र किसी भाषा के वर्णनात्मक अध्ययन से सहायता नहीं मिलती, जब तक अन्य भाषा से उसकी तुलना कर व्यतिरेकी विश्लेषण न कर लिया जाए। केवल समान तत्त्वों का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं, वरन् असमान तत्त्वों को निकालना अधिक आवश्यक है। ये असमान तत्त्व ही अन्य भाषा-शिक्षण में सहायक सिद्ध होते हैं। किसी भी अन्य भाषा (द्वितीय-तृतीय) को सीखने के लिए यह ज़रूरी है कि उस भाषा की ध्वनियों, शब्द-समूह, वाक्य-संरचना, अर्थ-बोध तथा शैली-भेद से परिचित हुआ जाए। मातृभाषा की विशेषताओं से इतर अन्य भाषा की विशेषताओं को सिखाना ही लक्ष्य है। एक प्रकार से ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाना ही व्यतिरेकी विश्लेषण का लक्ष्य है।

2.0. मातृभाषा / अन्य भाषा तथा व्यतिरेकी विश्लेषण

प्राय: यह समझा जाता है कि व्यतिरेकी विश्लेषण से अन्य भाषा-शिक्षण में ही सहायता मिलती है, किन्तु मातृभाषा शिक्षण में भी यह उपयोगी है क्योंकि कक्षा में भाषा का मानक स्वरूप ही सिखाया जाता है। भाषा के मानक स्वरूप के शिक्षण में यह ध्यान देना ज़रूरी है कि जिन उपभाषाओं / बोलियों के क्षेत्रों

से विद्यार्थी आ रहा है / रहे हैं उनमें क्या समानता / असमानताएं हैं । उसे भाषा के शुद्ध तथा साधु प्रयोगों से परिचित कराना है, स्वीकृत वाक्य-रचना का प्रयोग करना सिखाना है । उच्चारण-गत प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है जिसकी ओर प्रारम्भ से ध्यान देना चाहिए । प्रारम्भिक अवस्था में ही विद्यार्थी को इस ओर सचेत किया जा सकता है और मानक उच्चारण का अभ्यास कराया जा सकता है । हिन्दी की अनेक बोलियां हैं । मानक हिन्दी का मूलाधार पश्चिमी हिन्दी का स्वरूप है फिर भी मेरठ-मुजफ्फरनगर निवासियों का उच्चारण मानक से नितांत भिन्न होता है और यह देखा गया है कि जो विशिष्ट विद्वान् धारा-प्रवाह मानक भाषा में भाषण दे सकते हैं और देते हैं, वही किसी एक शब्द के उच्चारण करते समय या वर्णमाला के किसी वर्ण का उच्चारण करते समय उसके क्षेत्रीय विशिष्ट उच्चारण का प्रयोग कर जाते हैं जो मानक उच्चारण से पर्याप्त भिन्न होता है । यही बात विशिष्ट शब्दों के प्रयोग और कुछ दूर तक वाक्य-रचना पर भी प्रभाव डालती है । अतएव यह समझना कि व्यतिरेकी विश्लेषण मात्र अन्य भाषा-शिक्षण में ही उपयोगी है, भूल है ।

3. 0. भाषा-संपर्क तथा व्याघात

आज के युग में आवागमन तथा संचार साधनों के अधिकाधिक प्रयोग से अन्य भाषा का प्रभाव पड़ना आवश्यक है । अन्य भाषा के संपर्क में आने से अज्ञात रूप से प्रभाव पड़ता है । यह प्रभाव जब अधिक पड़ता है तो एक व्यक्ति द्विभाषी बन जाता है । द्विभाषिकता भी भाषा-शिक्षण में सहायक और कभी-कभी बाधक हो जाती है । द्विभाषी होने पर किसी भी माध्यम से भाषा पढ़ी / पढ़ायी जा सकती है ।

अन्य भाषा सीखने में मातृभाषा का ज्ञान बाधा उपस्थित करता है । यही कारण है कि अब भारत जैसे निर्धन देश में भी, मातृभाषा के प्रक्षेप से बचने के लिए, काफी मध्यम तथा धनी वर्ग के व्यक्ति, प्रारंभ से ही बच्चों को अंग्रेज़ी के पब्लिक स्कूलों में भेज देते हैं, जिससे मातृभाषा के व्याघात से बचा जा सके, किंतु तत्त्वतः बचना बहुत संभव नहीं होता ।

3.1. मातृभाषा का व्याघात

3.1.1. **उच्चारण स्तर पर**—उदाहरणार्थ अंग्रेज़ी 'फ़ूल' का उच्चारण मातृभाषा के व्याघात के कारण हिंदीभाषी 'फूल' करता है अर्थात् संघर्षी व्यंजन ध्वनि 'फ़' [f] के स्थान पर वह द्वयोष्ठ्य अघोष महाप्राण व्यंजन ध्वनि 'फ' [ph] का उच्चारण करता है तो सबके सामने 'फ़ूल' बनकर हास्यास्पद बन जाता है ।

3.1.2. **शब्द स्तर पर**—मराठी भाषाभाषी जब कहता है, 'तुम्हें शिक्षा
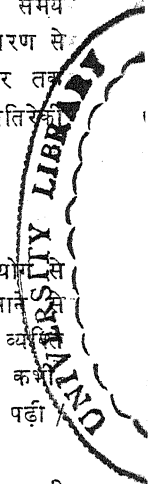
मिलनी चाहिए', 'आप जाइए कोई हरकत नहीं हैं' तो संस्कृत व उर्दू से परिचित हिंदीभाषी भी झमेले में पड़ जाता है और यह नहीं समझ पाता कि 'शिक्षा' का शिक्षा से संबंध न होकर 'सज़ा' से है और 'हरकत' का'गति' से कोई संबंध नहीं है वरन् इसका अर्थ 'आपत्ति' या 'हर्ज' है ।

3.1.3. **वाक्य स्तर पर**—अंग्रेज़ी की वाक्य रचना करते समय मातृभाषा के अनुसार पर्याप्त प्रभाव पड़ता है । इधर भारतीय संदर्भ में इसका विशद अध्ययन केन्द्रीय अंग्रेज़ी तथा विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद ने किया है । हिंदी भाषी 'मैं जाता हूं' का अनुवाद 'आई एस गो' में व्याघात के कारण ही करता है ।

3.2. व्याघात पर नियंत्रण तथा शैक्षिक पक्ष

मातृभाषा के कारण व्याघात पर नियंत्रण रखने के लिए यह आवश्यक है कि द्वितीय भाषा के शिक्षक को छात्रों की मातृभाषा का ज्ञान हो और स्वय के अन्वेषण द्वारा अथवा इस क्षेत्र में किये गए शोध कार्यों के अध्ययन के आधार पर वह इसका निर्णय कर ले कि यह व्याघात द्वितीय भाषा के शिक्षण को कहां तक प्रभावित कर रहा है । इस बात की महती आवश्यकता है कि अध्यापक सजगता के साथ मातृभाषा के व्याघात से प्रभावित अशुद्धियों को, चाहे उच्चारणगत हों या शब्दगत, चाहे मुहावरे के प्रयोग से संबंधित हों अथवा वाक्य रचना से, कक्षा में स्पष्ट करे और दोनों भाषाओं के प्रयोगों के भेद को स्पष्ट करे । हमेशा यह आवश्यक नहीं है पर सजग रहना आवश्यक है कि अशुद्धियों के पीछे मातृभाषा का क्या व्याघात है ।

ऐसी स्थिति में भाषा-अध्यापक को भाषाविज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों से परिचित होना चाहिए और साथ ही मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा का प्रयोगों के साम्य तथा व्यतिरेक से भी ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह समझ और समझाया जा सके । इस दृष्टि से अन्य विषयों के शिक्षकों की तुलना में भाषा अध्यापक का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है ।

4.0. आधार भाषा तथा लक्ष्य-भाषा

आधार भाषा ही एक प्रकार से मातृभाषा है । ऐसी स्थिति में जब मातृभाषाभाषी को प्रथम भाषा के रूप में उसी भाषा को पढ़ना होता है तो लक्ष्य भाषा तथा आधार भाषा में अन्तर नहीं होता । यदि आधार-भाषा कोई बोली है (जैसा कि हिंदी के संदर्भ में पर्याप्त है), तो लक्ष्य भाषा उस भाषा का मानक रूप बन जाती है ।

सामान्यत: यह समस्या अन्य भाषा-शिक्षण में आती है । आधार भाषा अन्य भाषा-अधिगम में महत्त्वपूर्ण स्थिति रखती है । आधार भाषा शिक्षार्थी की मातृभाषा अथवा वह भाषा जिसका वह समानान्तर प्रयोग करता है, हो

सकती है फलतः शिक्षार्थी/विद्यार्थी इस भाषा का ही प्रयोग माध्यम भाषा के रूप में करता है। आधार भाषा पग-पग पर उसको एक ओर सहायता देती है, दूसरी ओर बाधा डालती है। आधार भाषा ही **प्रथम भाषा** है और लक्ष्य भाषा जिसको वह सीखना चाहता है **द्वितीय भाषा** है। द्वितीय भाषा-शिक्षण के हेतु प्रथम भाषा को ध्यान में रखकर ही शिक्षण-बिन्दु पहले से बना लेने चाहिए। छात्र लक्ष्य भाषा (द्वितीय भाषा) के उन तथ्यों और सांचों को सुनने या बोलने में असमर्थ होता है जो आधार भाषा (प्रथम भाषा) की इकाइयों से भिन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में लक्ष्य भाषा से संबंधित प्रश्नों के उत्तर देने में वह असमर्थ होता है। प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ करने के लिए अभिक्रमित अध्ययन में अनुभवों के आधार पर कुछ उपाय सुझाए गये हैं—प्रश्नोत्तर को छोटे-छोटे भागों में बांटा जाए और अभ्यास कराया जाए; तत्पश्चात् उत्तर देने के लिए संकेत भी दिये जाएं तथा प्रत्येक नया प्रश्न पिछले उत्तर से जुड़ा रहे।

आधार भाषा तथा लक्ष्य का व्यतिरेकी विश्लेषण कर शिक्षण इकाइयों को क्रमशः प्रस्तुत किया जाए जिससे लक्ष्य भाषा भी वह उसी तरह सीखता चले जैसे आधार भाषा सीखी थी। अभी व्याघात की चर्चा की जा चुकी है अतएव सामग्री-निर्माण में आधार भाषा पर आधारित व्याघात/तों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। प्रारंभ में आधार भाषा से जितनी अधिक सीख ले ली जाएगी उतना ही अधिक लाभ आगे होगा। पाठ्यक्रम बनाते समय तथा शिक्षक के लिए संकेत-पुस्तिका बनाते समय इन सबकी ओर ध्यान रखना आवश्यक है।

यह अन्तर लेखन व उच्चारण दोनों में हो सकता है। जो अभ्यास-पुस्तिकाएं बनायी जाएं उन्हें क्षेत्रीय आधार पर बनाया जा सकता है। हिंदी शिक्षण-योजना के अन्तर्गत पाठमाला भाग-1 के साथ जो उच्चारण-पुस्तिका बनायी गई है वह चार प्रकार की है—(पूर्वांचल, दक्षिणांचल, पश्चिमांचल, उत्तरांचल), जिससे विद्यार्थी की मातृभाषा के संदर्भ में लक्ष्य भाषा (हिंदी) की ध्वनियों के उच्चारण सीखने में आने वाली कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए उच्चारण-अभ्यास कराये जा सकें।

इस प्रकार अन्य अभ्यास-पुस्तिकाएं भी आधार भाषा के अनुसार पृथक्-पृथक् तैयार की जा सकती हैं। अच्छा तो रहेगा कि शिक्षण सामग्री भी अलग-अलग बनायी जाए।

5.0. व्यतिरेकी विश्लेषण-पद्धति

5.1. व्यतिरेकी विश्लेषण से तात्पर्य

लक्ष्य भाषा तथा आधार भाषा में व्यतिरेकी विश्लेषण करने के लिए अनेक प्रकार की पद्धतियां अपनाई जा सकती हैं। पद्धतियों से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि यह 'विश्लेषण' किसी एक भाषा का नहीं है वरन् दो भाषाओं—

आधार (प्रथम) तथा लक्ष्य (द्वितीय/तृतीय)—का है अतएव इन दोनों भाषाओं में पारस्परिक संबंध दो दृष्टियों से विश्लेषित किये जा सकते हैं :

अ—समानता

आ—असमानता

समानता पूर्णतः तथा आंशिक हो सकती है। यह भी संभव हो सकता है कि समानता कम, असमानता अधिक हो। शब्द के स्तर पर समानता होते हुए, अर्थ में कुछ अधिक असमानता हो सकती है। शब्द के अध्ययन के साथ इसे स्पष्ट किया गया है।

5.2. व्यतिरेकी विश्लेषण-पद्धति

हिंदी तथा भारतीय भाषाओं, हिंदी तथा विदेशी भाषाओं—विशेषतः अंग्रेज़ी, रूसी आदि, हिंदी तथा उसकी बोलियों तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं के संदर्भ में इस प्रकार के पर्याप्त कार्य हो चुके हैं। इन शोध-कार्यों की प्रकृति तथा उनके स्तर में तो अंतर है ही, पद्धति में भी अंतर है। कोई सर्वमान्य पद्धति अभी तक नहीं बनी है जिसे आधार बनाया जा सके। अब तक अपनायी गई कुछ पद्धतियां इस प्रकार हैं :

5.2.1. **समानान्तर पद्धति** : इस पद्धति के भी भेद किये जा सकते हैं :

(क) दो पृष्ठों पर आमने-सामने।

'ब्रजभाषा और खड़ी बोली' (डा० कैलाशचन्द्र भाटिया) में इसी प्रकार समझाया गया है। दोनों भाषाओं के रूपों को समानान्तर दो पृष्ठों पर आमने-सामने प्रस्तुत किया गया है।

(ख) एक ही पृष्ठ पर दो पृथक् कालमों में।

अधिकांश व्यतिरेकी कार्य इसी प्रकार किये गए हैं, उदाहरणार्थ 'भोजपुरी और हिंदी' (डा० शुकदेव सिंह),' 'पश्चिमी भोजपुरी और गुजराती की क्रियाएं' (डा० रामकुंवर सिंह), 'हिंदी और भारत की प्रादेशिक भाषाएं—बंगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़' (भाषा विज्ञान: सिद्धान्त और प्रयोग—डा० अम्बाप्रसाद सुमन), 'हिंदी तथा तमिल का व्यतिरेकी व्याकरण' (डा० एस० एन० गणेशन) आदि। अंतिम कार्य अंग्रेज़ी में होने के कारण अंग्रेज़ी में अनुवाद भी दिया गया है।

5.2.2. **व्याख्यात्मक** : इस पद्धति में सामान्य सिद्धांतों की चर्चा की जाती है और उदाहरणार्थ दोनों भाषाओं के शब्दों व रूपों को लिया जाता है। व्यतिरेकी विश्लेषण पर बल होते हुए भी सैद्धांतिक व्याख्या को महत्त्व दिया जाता है। 'हिंदी-तेलुगु व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन' (एस० वी० शिवराम शर्मा) तथा

'तेलुगु और हिंदी की ध्वनियों का व्यतिरेकी विश्लेषण' (डा० किशोरीलाल शर्मा, हिंदी शिक्षण प्रविधि) इसी प्रकार के हैं। यह पद्धति अधिक प्रचलित है और इसमें ही समानान्तर कालमों में दोनों भाषाओं की सामग्री भी दे दी जाती है और आवश्यकता पड़ने पर चार्ट रूप में भी सामग्री को प्रस्तुत कर दिया जाता है। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के संदर्भ में इस प्रकार की पर्याप्त सामग्री अंग्रेज़ी तथा विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद में तैयार की गई है।

6. व्यतिरेकी विश्लेषण—ध्वनि-व्यवस्था

6.0. किसी भी भाषा का ध्वन्यात्मक पक्ष विशेष महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे लक्ष्य भाषा का शुद्ध उच्चारण सिखाया जा सकता है। ध्वनि-व्यवस्था के व्यतिरेकी अध्ययन से पर्याप्त लाभ होता है अतएव सर्वाधिक कार्य इस दिशा में किये गये हैं।

6.1 उद्देश्य

इस प्रकार के कार्यों के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :(क) दोनों भाषाओं की ध्वनियों के अंतर में सीमा-रेखा निश्चित करना। यह अध्ययन स्वनिम तथा उपस्वन दोनों स्तरों पर किया जा सकता है। (ख) दोनों भाषाओं के खंडेतर स्वनिमों का विश्लेषण और उनकी विशेषताओं की जांच। (ग) छात्रों के ध्वनि-संबंधी उच्चारणों में होने वाली भूलों की जांच (आधार भाषा के व्याघात के संदर्भ में)। (घ) समस्रोतीय शब्दों में ध्वनि स्तरीय भेद तथा उच्चारणगत अन्तर को स्पष्ट करना। (ङ) कुछ ध्वनियां बोली जाती हैं, लेकिन लिखी नहीं जातीं और इसके विपरीत कुछ लिखी जाती हैं लेकिन बोली नहीं जातीं। कुछ स्वनिमों के संस्वन महत्त्वपूर्ण होते हैं (तमिल के संदर्भ में विशेष रूप से)। (च) विद्यार्थी के उच्चारणों का लक्ष्य भाषा के उच्चारणों के साथ तारतम्य बैठाते हुए दोनों भाषाओं के सम-विषम तत्त्वों का समुचित वर्गीकरण। (छ) लक्ष्य भाषा के ध्वनि-पाठ्य-बिन्दुओं का निर्धारण। (ज) विभिन्न कक्षाओं के लिए अनुस्तरण। (झ) विभिन्न कक्षाओं के छात्रों के उच्चारण को सुधारने के लिए सुधारात्मक पाठों का निर्माण।

ध्वनि-व्यवस्था का अध्ययन न केवल उच्चारण सिखाने के काम में आता है वरन् सुनी हुई बात को ठीक-ठीक समझने में भी सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार बोलने तथा सुनने के कौशल के साथ समझने की प्रक्रिया में ध्वनि-व्यवस्था विशेष सहायक सिद्ध होती है। शुद्ध उच्चारण न केवल कक्षा में सिखाया जाए वरन् आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से भी प्रकारान्तर से सिखाया जा सकता है जिसके लिए इनमें सम्मिलित वक्ताओं, वार्ताकारों, संवाद-कर्त्ताओं तथा उद्घोषकों को इसमें निपुण होना चाहिए।

6.2. हिंदी-अंग्रेज़ी

हिंदी अंग्रेज़ी की ध्वनि-व्यवस्था के व्यतिरेकी विश्लेषण के संबंध में बड़े विस्तार से डा० कैलाशचन्द्र भाटिया ने 'हिंदी में अंग्रेज़ी के आगत शब्दों का भाषा-तात्त्विक अध्ययन' शीर्षक ग्रंथ में लिखा है। इसमें अंग्रेज़ी के सभी स्वर-व्यंजनों का विश्लेषण अनेक रेखाचित्रों की सहायता से किया गया है। अंग्रेज़ी की तीन ध्वनियों, ट, ड तथा र का काफी विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया। मातृभाषा की संरचनात्मक/ध्वन्यात्मक विशेषताएं किस सीमा तक प्रभावित करती हैं इसका विशद-गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अंग्रेज़ी के स्वनिम ट, थ, ड, द, हिंदी में क्रमशः ट, थ, ड, द में क्यों परिवर्तित हो जाते हैं और [θ] ध्वनियुक्त शब्द शुद्ध उच्चारण में स- युक्त क्यों सुनाई पड़ते हैं—इस पर भी विचार है।

6.2.1. **संक्रमक स्वन**—अंग्रेज़ी के पृथक्-पृथक् दो स्वनिम, हिंदी में मात्र एक स्वनिम रह गये हैं और वे उसके संस्वन के रूप में उच्चरित किये जाते हैं :

अंग्रेज़ी	**हिंदी**
स्वनिम संख्या 2	1
/v~व/ /w~व़/	/व/ { [व] [व़]

6.2.2. **व्यत्क्रमक स्वन**—अंग्रेज़ी का एक स्वनिम हिंदी में दो स्वनिमों में परिवर्तित हो जाता है, जैसे :

अंग्रेज़ी	**हिंदी**
स्वनिम संख्या 1	2
/t~ट्/	/त/
	/ट/

6.2.3. **मिश्र स्वन**—अंग्रेज़ी के एक स्वनिम के दो संस्वन हिंदी में पृथक्-पृथक् दो स्वनिम बन जाते हैं, जैसे :

अंग्रेज़ी	**हिंदी**
1	2
संस्वन	
/P-प/——[पह्~ph]	/फ/
[प~p]	/प/

6.3 हिंदी तथा भारतीय भाषाएं

6.3.1. **हिंदी तथा द्रविड़ भाषाएं**—इस क्षेत्र में कई उल्लेखनीय कार्य आज उपलब्ध हैं : **हिंदी-तमिल** (डा० गणेशन), **हिंदी-तेलुगु**—तेलुगु और हिंदी ध्वनियों के तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में कई कार्य हुए हैं : 1. एस० वी०

शिवराम शर्मा की पुस्तक के प्रारंभ में 'वर्ण-विचार' (पृष्ठ 1-16) के अंतर्गत (2)जे० विश्वमित्र का शोधकार्य, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से प्रकाशित, (3) डॉ० किशोरीलाल शर्मा की पुस्तक 'हिंदी शिक्षण-प्रविधि' का अध्याय सात, (4) डॉ० तेजनारायण लाल का शोधकार्य। **हिंदी-मलयालम**—इस क्षेत्र में कई उल्लेखनीय कार्य हुए हैं, जिनमें डॉ० वी० रा० जगन्नाथन तथा डॉ० वेल्लयाणि अर्जुनन के कार्य महत्त्वपूर्ण हैं। कु० टी० चन्द्रिका ने अपने लेख 'Common Areas of 'Interference' at the level of pronunciation—related to Malayalam & Hindi field '(गवेषणा-अंक 26) में इस समस्या पर अच्छा प्रकाश डाला है। मलयालम के लिखित तथा उच्चरित रूपों के अंतर को भी स्पष्ट किया गया है। संस्कृत के आगत शब्दों के कारण वैसे आधुनिक मलयालम में स्वनिम रूप से क, ख, ग, घ चारों ध्वनियां मिलती हैं पर परम्परागत मलयालम में तमिल के समान एक ही स्वनिम 'क' है। इस प्रकार हिंदी के कई स्वनिम मलयालम में एक स्वनिम बन जाते हैं और फिर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार विभिन्न संस्वनों में उच्चरित होते हैं। उदाहरणार्थ—

हिंदी-कन्नड़—'कन्नड़ की ध्वनि-व्यवस्था'—डा० कृष्णस्वामी अय्यंगार, 'हिंदी-कन्नड़ का तुलनात्मक अध्ययन'—डा० सोमशेखर 'सोम'। राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) के अंतर्गत हिंदी शिक्षण-योजना ने इन व्यतिरेकी अध्ययनों को ही ध्यान में रखकर दक्षिणांचल के लिए उच्चारण पुस्तिका-2 में तेरह पाठों का निर्माण किया है जिनमें क्रमशः इ-ई, उ-ऊ, स्वर-संयोग, म्ह-न्ह-ल्ह, अघोष-सघोष, अल्पप्राण-महाप्राण(अघोष तथा सघोष),ड ड़ ढ ढ़, निरनुनासिक-नासिक्य, निरनुनासिक-अनुनासिक, व्यंजन गुच्छ, ऋ, रु, तथा 'अ' लोप पर विवेचन तथा अभ्यास प्रस्तुत हैं।

6.3.2. **हिंती तथा पश्चिमांचल : हिंदी तथा गुजराती** :'हिंदी-गुजराती खंड भाषा ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन'—लीलाकान्त मिश्र, विद्यापीठ, अहमदाबाद, 1975। गुजराती के लिए कुछ पाठ्य-बिंदु इस प्रकार होंगे—(1) हिंदी में शब्दान्त में सानुनासिक व्यतिरेकी की स्वनिम ऐ-ऐं, ओं-औं हैं जबकि गुजराती में

नहीं है। (2) गुजराती में शब्द के अंत में सघोष महाप्राणत्व का दुर्बल उच्चारण होता है जबकि हिंदी में पूर्ण। (3) हिंदी में /ह/ स्वनिम का पूर्ण व्यंजन के रूप में उच्चारण होता है पर /ह/ ध्वनि के पहले या बाद के आने वाले स्वरों का भिन्न प्रकार का उच्चारण होता है। (4) /ई/ तथा /ऊ/ दीर्घ स्वरों के ह्रस्व रूप भी गुजराती में उच्चरित ही होते हैं। हिंदी के स्वरों को सिखाते समय इन दोनों (ह्रस्व-दीर्घ) के व्यतिरेकी भेद को स्पष्ट करना चाहिए।

हिंदी-मराठी—स्वरों में अ, इ, उ, ऐ तथा औ का पर्याप्त अभ्यास तथा व्यंजनों में च, ज, झ, ड़, ढ़ का उच्चारण सिखाना चाहिए। मराठी में 'ज्ञ' तथा ऋ का भिन्न उच्चारण है। ल और ळ पृथक्-पृथक् ध्वनिग्राम हैं और 'च' एक विशिष्ट ध्वनि है। इन व्याघातों को ध्यान में रखकर पाठों का निर्माण करना चाहिए। गृह मंत्रालय की हिंदी शिक्षण-योजना ने पश्चिमांचल के संदर्भ में 10 विशिष्ट ध्वनि पाठों तथा अभ्यासों का निर्माण किया है।

6. 3. 3. **हिंदी तथा पूर्वांचल**—पूर्वांचल की तीन भाषाओं (बंगला, असमिया तथा उड़िया) के संदर्भ में तो कुछ व्यतिरेकी विश्लेषण का कार्य हुआ है पर मुख्य समस्या मेघालय की खासी, जयन्तिया तथा गारो, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश की बोलियों तथा नागालैंड की भाषाओं के संदर्भ में है जिस-पर अभी काफी शोधकार्य होना शेष है। **असमिया** के संदर्भ में कुछ शिक्षण-बिन्दु इस प्रकार हैं: (1) हिंदी के तवर्ग तथा टवर्ग। (2) व को असमिया के स्वनिम स और ज़ के संदर्भ में सिखाना होगा। (3) किसी शब्द की आदि तथा अन्त्य स्थिति में भ और व के उच्चारण के महत्त्व को समझाना होगा। (4) फ़ का फ से भेद स्पष्ट करना होगा। (5) ड़, ढ़ के उच्चारण के साथ र के उच्चारण-भेद को भी स्पष्ट करना होगा। **बंगला** के संदर्भ में: (1) अ स्वर के उच्चारण पर विशेष बल देना होगा और बंगला-हिंदी के उच्चारण के अन्तर के अनुसार शब्दार्थ में भेद को समझाना होगा। (2) 'ण' तथा 'व' जिनका बंगला में नितांत अभाव है पृथक् से सिखाने होंगे। (3) श तथा स ध्वनियों का भेद स्पष्ट करना होगा क्योंकि बंगला में अधिकांशतः तालव्य 'श' ही है जबकि हिन्दी में दोनों हैं। (4) अरबी-फारसी के शब्द बंगला में पर्याप्त हैं पर इनसे प्राप्त विशिष्ट ध्वनियों का अभाव है। (5) ट वर्ग का उच्चारण बंगला में कुछ भिन्न है।

उड़िया के संदर्भ में कुछ शिक्षण-बिंदु इस प्रकार हैं: (1) उड़िया की अ ध्वनि और हिन्दी स्वर अ में कुछ अन्तर है। (2) मूल स्वर के रूप में ऐ तथा औ का उच्चारण उड़िया में नहीं मिलता। (3) उड़िया में स्वरानुक्रम में अन्तिम स्थिति में ओ नहीं मिलता। (4) इ और उ स्वरों के ह्रस्व तथा दीर्घ का भेद उड़िया में नहीं है जबकि हिंदी में उनका स्वनिमात्मक महत्त्व है। (5) उड़िया में मात्र दन्त्य / स / है जबकि हिंदी में दन्त्य के साथ तालव्य का

भी शुद्ध उच्चारण किया जाता है। (6) 'य' तथा 'ब' तथा इनसे युक्त व्यंजन-गुच्छों को समझाना होगा। (7) उड़िया में 'ळ' ध्वनि का विशेष महत्त्व है। जबकि हिंदी में मात्र 'ल' है। (8) 'ण' के साथ 'र' तथा 'ष' का विशेष संयोग हिंदी में है जबकि उड़िया में नहीं है। (9) द्वित्व व्यंजनों का उड़िया में अभाव है। अतएव द्वित्व व्यंजनों का विशेष अभ्यास उड़िया भाषी को करना होगा।

राजभाषा विभाग के अंतर्गत हिन्दी शिक्षण-योजना के लिए पूर्वांचल के लिए उक्त सामग्री पर तेरह पाठों का निर्माण किया गया है।

6. 3. 4. **हिंदी तथा उत्तरांचल**—उत्तरांचल की पर्याप्त भिन्न भाषा लहंदा अब पाकिस्तान में है। सिन्धी सम्पूर्णत: पाकिस्तान में है लेकिन उसके बोलने वाले पर्याप्त संख्या में भारत में फैले हुए हैं। ऐसी स्थिति में व्यतिरेकी विश्लेषण कश्मीरी तथा पंजाबी के संदर्भ में ही किया जा सकता है। पंजाबी का बोलचाल का स्वरूप हिंदी भाषा-भाषी को पर्याप्त बोधगम्य है, मात्र लिपि की समस्या है। फिर भी हिंदी के मूल स्थान दिल्ली और उसके आसपास पंजाबी भाषा-भाषियों की इतनी अधिक जनसंख्या है कि उनके प्रभाव को दूर करना असंभव नहीं तो कष्ट-साध्य अवश्य हो गया है। पंजाबी भाषियों को हिंदी सिखाते समय कुछ पाठ्य-बिंदु इस प्रकार बनाये जा सकते हैं: (1) आदि, मध्य तथा अन्त्य स्थिति में आने वाले सघोष महाप्राण व्यंजनों—घ, झ, ढ, ध, भ, ढ़, म्ह, न्ह, ल्ह का उच्चारण। (2) व्यंजन-गुच्छों का उच्चारण, विशेषत: आदि स्थिति में 'स' से प्रारम्भ होने वाला तथा द्वितीय व्यंजन के रूप में '+र' युक्त। (3) अक्षरांत ह्रस्व स्वर 'इ' तथा 'उ' का शुद्ध उच्चारण। (4) शब्दांत में अर्द्ध स्वर य तथा व का उच्चारण। (5) त्र्याक्षरिक शब्दों के प्रारम्भ में इ (इरादा), अ (अठारह) जैसे ह्रस्व स्वरों के स्पष्ट उच्चारण पर बल। गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग के अन्तर्गत हिंदी शिक्षण-योजना के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने उत्तरांचल के लिए पृथक् से उच्चारणाभ्यास कराने के लिए बारह पाठों का निर्माण किया है।

6. 4. व्यतिरेकी विश्लेषण तथा उच्चारण-शिक्षण

हिंदी में उच्चारण-शिक्षण के लिए व्यतिरेकी विश्लेषण का किस प्रकार सम्यक् उपयोग किया जाए इसको विस्तार से सुप्रसिद्ध भाषाविद् डा० अशोक केलकर ने अपने 'अहिंदी भारतीयों के लिए हिंदी उच्चारण शिक्षण' शीर्षक निबंध में ('भाषा' का 'हिंदी भाषा-विज्ञान अंक', पृ० 402-413) समझाया है। उनके अनुसार बाद में शोधन-कार्य (रिमीडियल वर्क) हमेशा कष्ट-साध्य होता है। ऐसी स्थिति में शिक्षण के मध्य ही उनके उच्चारण-अभ्यास पर विशेष बल देना चाहिए और प्रत्येक भाषा-भाषी को पृथक् से अथवा अंचलानुसार इस प्रकार के लिए विशेषत: तैयार किये गये पाठों का निर्माण करना

चाहिए। इस हेतु डा० केलकर ने उन्तीस प्रकार के पाठ्य-बिंदुओं का निर्माण किया है जो भाषावार भी बांट दिये गये हैं। हिंदी शिक्षण-योजना के लिए अंचलानुसार जो उच्चारण-अभ्यास के पाठ बनाये गये हैं, वे प्रथम चरण हैं। इसका अगला चरण होगा भाषावार उच्चारण-पाठों का निर्माण करना। इस संबंध में डा० केलकर ने जो शोधकार्य किया है उसको सामग्री-निर्माण का आधार बनाया जा सकता है।

अध्यापन को प्रभावी बनाने के लिए आवृत्ति एवं अनुकरण आवश्यक है। मौखिक भाषीय कौशल भाषीय श्रव्य अभ्यास से प्राप्त होता है। अभ्यास (ड्रिलिंग) के परिप्रेक्ष्य में नियमों को देना चाहिए। भाषा प्रयोगशाला के माध्यम से ड्रिल द्वारा उच्चारण का प्रस्तुतीकरण करना चाहिए। अनेक बार आवृत्ति तथा मौखिक उच्चारण आवश्यक है अन्यथा उच्चारण की अशुद्धियां होना स्वाभाविक है।

7. व्यतिरेकी विश्लेषण और शब्दावली

भाषा-शिक्षण यद्यपि शब्दावली-शिक्षण नहीं है, फिर भी शब्दावली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'शब्दावली' का अध्ययन-शिक्षण अर्थ से सीधा जुड़ा हुआ है अतएव मात्र समान शब्दावली की सूचियां कोई अर्थ नहीं रखतीं जैसा कार्य छठे दशक में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के तत्त्वावधान में पूरा किया गया। बाद में यही कार्य कुछ अधिक वैज्ञानिक ढंग से भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर में पूरा किया गया। शोधकार्य के रूप में भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किये जा चुके हैं। मलयालम के संदर्भ में किये गये कार्यों की पूरी सूची आगे 'शब्दावली-शिक्षण' में दी गई है। ये समान सूचियां महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं जबकि भाषिक संरचना भिन्न परिवार की भाषा होने के कारण पर्याप्त भिन्न हो जाती है। इस दृष्टि से द्रविड़ परिवार से संबंधित भाषाओं के संदर्भ में किये गये ये कार्य विशेषतः उपयोगी हैं : (1) हिंदी-तमिल (डा० सुरेन्द्र कुलश्रेष्ठ), (2) हिंदी-मलयालम (डा० वेल्लयाणि अर्जुनन), (3) हिंदी-कन्नड़ (डा० सोमशेखर 'सोम'), (4) हिंदी-तेलुगु (डा० सीताराम शास्त्री)।

समान शब्दावली के साथ-साथ आवृत्ति के महत्त्व पर भी पृथक् से लिखा गया है। समान होते हुए भी जब शब्दावली भिन्नार्थीहो जाती है तो शिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो जाती है और इस दिशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है —हिंदी और तमिल की समान स्रोतीय भिन्नार्थी शब्दावली' (वी० रा० जगन्नाथन)। 'तेलुगु' के संदर्भ में शिवराम शर्मा तथा डा० सुन्दर रेड्डी के कार्य उल्लेखनीय हैं। कन्नड़ तथा मलयालम से संबंधित सामग्री उक्त ग्रंथों में है। दक्षिण की चारों भाषाओं के संदर्भ में डा० कैलाशचन्द्र भाटिया का 'हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं की समान शब्दावली में अर्थ वैभिन्नय' शीर्षक शोध-निबंध लालबहादुर

शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी के जर्नल (सन् 1973, अंक 1) में प्रकाशित हुआ है।

शब्दावली के संदर्भ में व्यतिरेकी विश्लेषण-पर्याय—विलोम, शब्दान्वय तथा सहसंबंध को लेकर किया जा सकता है, जिसके आधार पर शिक्षण के पाठ्य-बिंदु बनाये जा सकते हैं। इन सभी पर विस्तार से डा० जगन्नाथन ने शोधपरक अध्ययन उपर्युक्त पुस्तक की भूमिका में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के व्यतिरेकी अध्ययन अन्य भाषाओं के सदर्भ में संभवतः अभी नहीं हो पाये हैं।(देखें, पृ० 62)

8. व्यतिरेकी विश्लेषण : लेखन-व्यवस्था

'लेखन' के अंतर्गत वर्णमाला और लिपि दो प्रधान तत्त्व आते हैं। यहां यह उल्लेखनीय तथ्य है कि वर्णमाला की दृष्टि से भारत की सभी भाषाएं समान हैं अथवा यों कहें कि भारत की सभी भाषाओं में समान वर्णमाला है। कई भारतीय भाषाओं में मूर्धन्य 'ल' भी है जो सीधे वैदिक संस्कृत-पालि-प्राकृतों के माध्यम से भारतीय भाषाओं में आया है। यह मानक हिंदी में नहीं है, पर हिंदी की कई बोलियों में है। दक्षिण की द्रविड़ कुल की चारों भाषाओं में कुछ विशिष्ट वर्ण हैं। वस्तुतः तमिल (जिसमें कम वर्ण हैं) को छोड़कर शेष सभी भाषाओं के लिए समांतर वर्णमाला का चार्ट विशेष उपयोगी हो सकता है। समान वर्णमाला का आधार ही भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का मार्ग प्रशस्त करता है।

समान वर्णमाला के आधार पर ही भिन्न लिपि में से पहले उन वर्णों को छांटा जा सकता है जिनके लिपिचिह्न समान हैं और सरल हैं, और फिर आकृति की दृष्टि से पर्याप्त भिन्न लिपिचिह्नों की ओर बढ़ा जा सकता है।

जिन दो भिन्न वर्णों की लेखन-विधि में समानता के कारण भ्रम होता है उनको पृथक् से समझाया जाए। यद्यपि संशोधित नागरी लिपि में इस ओर ध्यान देकर वर्ण की लेखन विधि को बदल दिया गया है, फिर भी हिंदी के संदर्भ में निम्नलिखित वर्णों में अब भी पर्याप्त भ्रम हो जाता है :

भ म
ध घ
ख रव
च ज (यद्यपि भिन्न हैं, फिर भी भ्रम पढ़ने में इतना नहीं जितना लिखने में देखा गया है।)

9. व्यतिरेकी विश्लेषण : व्याकरणिक व्यवस्था

व्यतिरेकी अध्ययन तथा विश्लेषण का मूलाधार व्याकरणिक व्यवस्था पर आधारित है। दो भिन्न भाषाओं की भाषिक संरचना की तुलना कर उसका व्यतिरेकी विश्लेषण भाषा-शिक्षण में विशेष महत्त्व रखता है। धीरे-धीरे इस

'सहप्रयोग' अथवा 'सहसंबंध (Collocation) के संदर्भ में कुछ भाषाओं की शब्दावली का व्यतिरेकी स्वरूप डा० जगन्नाथन ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

		तमिल	हिंदी	बंगला	अंग्रेजी
खा	चाप्पिटु (त०) खा (हिं०) खा (बं०) Eat (अं०)	खाने की क्रिया, भोजन, चाय, काफी, पानी, आदि दही, घी, शहद, सिगरेट, बीड़ी आदि दवाई (विरल)	खाने की क्रिया, भोजन, दही, घी, शहद, दवाई	खाने की क्रिया, तथा सभी खाद्य वस्तुएं	खाने की क्रिया, भोजन आदि खाद्य पदार्थ
पी	कुटि पी पानकर drink	पीने की क्रिया, प्राणियों का पीना, चाय, काफी आदि शहद, घी, दही आदि सिगरेट, बीड़ी आदि	पीने की क्रिया चाय, काफी आदि दवाई, शराब	पीने की क्रिया, (साहित्यिक)	पीने की क्रिया, सभी तरल पदार्थ

ओर ध्यान दिया जाने लगा है पर अभी पर्याप्त नहीं। अंग्रेज़ी के अध्येताओं ने विश्व की सभी महत्त्वपूर्ण भाषाओं के संदर्भ में इस प्रकार का व्यतिरेकी विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिससे अंग्रेज़ी के शिक्षण में क्रान्ति आ गई है।

हिंदी में अभी इस प्रकार से अध्ययन का प्रारंभ-युग ही कहा जाएगा। अंग्रेज़ी के साथ विभिन्न पक्षों पर भारत तथा विदेशों में पर्याप्त कार्य किया जा चुका है। अंग्रेज़ी तथा विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद में इस प्रकार के शोध-कार्यों को प्रोत्साहित किया जाता है। रूसी के संदर्भ में अभी कुछ कार्य हुआ है, जैसे 'हिंदी तथा रूसी भाषा में रूप-प्रक्रिया'—रामपाल सिंह ढाका (विश्वहिंदी सम्मेलन अंक—'भाषा')।

भारतीय भाषाओं के संदर्भ में विभिन्न विश्वविद्यालयों व संस्थानों (भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा) में इस प्रकार के कार्य हो रहे हैं जिनके स्तर में पर्याप्त अंतर है और प्रस्तुतीकरण में पर्याप्त भिन्नता। अधिकांश शोधकार्य अप्रकाशित हैं। फिर अभी इस प्रकार का कार्य प्रारंभ ही नहीं हुआ है कि इनका मूल्यांकन किया जाए। विशेषत: भाषा-शिक्षण की दृष्टि से।

भाषा-शिक्षण में संरचनात्मक पद्धति आज अधिक उपयोगी है। हिंदी भाषा में कर्ता-कर्म-क्रिया, कर्ता-अव्यय-क्रिया, कर्ता (कोई संज्ञा)-क्रिया के वाक्यों के साथ-साथ दूसरी भाषा के वाक्य भी रखकर व्यतिरेकात्मक विश्लेषण करने चाहिए :

मैं काफी पसन्द करता हूं —I like coffee.
मैंने भोजन किया —I had my meals.
मैंने चाय पी —I had / took my tea.

हिंदी में '-ने' के कारण क्रिया रूप में अंतर पड़ रहा है जबकि अंग्रेज़ी में नहीं। '-ने' का प्रयोग और क्रिया की कर्म से अन्विति विशेष समस्या है जिसके लिए विशेष पाठ्य-सामग्री तैयार करनी चाहिए। मात्र इतना कि अमुक भाषा में 'ने' का प्रयोग होता है, समस्या का समाधान नहीं। मातृभाषा के व्याघात का भी अध्ययन रुचिकर होता है। पंजाबी भाषा-भाषी जब 'मुझे जाना है' के स्थान पर 'मैंने जाना है' बोलता है तो यह मातृभाषा में प्रयुक्त 'मैंनू जाना है' का व्याघात है। इसी प्रकार वह बोलता है 'आपने कल क्या करना है।'

दो भाषाओं की व्याकरणिक व्यवस्था का व्यतिरेकी विश्लेषण तभी संभव है जब एक अथवा समस्त पक्ष पर विश्लेषण दोनों भाषाओं में पहले से उपलब्ध हो या फिर शोधार्थी स्वयं इस प्रकार विश्लेषण भी साथ-के-साथ करता जाए।

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की दृष्टि से हिंदी और अंग्रेज़ी के विधानार्थक और

प्रश्नार्थक वाक्यों की समानता और असमानता को निम्नलिखित रूप में दिखाया जा सकता है:

समानता	असमानता	
विधानार्थक वाक्य ↑	बहिस्तलीय संरचना	
↓ प्रश्नार्थक वाक्य	सं० प०+सं० प०+क्रि० प०/?	हिंदी
	?+सं० क्रि०+सं० प०+क्रि० प०+सं प०	अंग्रेजी

(सं० प०=संज्ञापदबंध, क्रि० प०=क्रियापदबंध, सं० क्रि०=सहायक क्रिया)
('भाषा', हिंदी भाषाविज्ञान अंक, पृ० 334-335)

हिंदी-गुजराती में वाक्य-संरचना तथा क्रिया रूपों में काफी समानता है फिर भी कुछ क्रियारूपों का व्यतिरेकी अध्ययन रुचिकर होगा, जैसे विशेषण रूप में प्रयुक्त भूतकालिक कृदंत :

1. **पढ़ा-लिखा** आदमी (हिंदी)
   भणेलो-गणेलो आदमी (गुजराती)
2. पानी से **भरा हुआ** घड़ा (हिंदी)
   पाणी थी **भरेलो** घड़ो (गुजराती)
3. कल का खाया **हुआ** (हिंदी)
   कालनुं खाधेलुं (गुजराती)
4. धोबी का **धोया हुआ** कपड़ा (हिंदी)
   धोबीए **धोयेलुं** कपडु (गुजराती)

ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है कि गुजराती में 'हुआ' के समानांतर कोई रूप नहीं है। देखा जाए तो हिंदी में भी हुआ-रहित रूप प्रयोग में आता है, पर इसका प्रचलन कम है। यही रूप तेलुगु के संदर्भ में देखा जा सकता है :

बहता हुआ पानी। **पारु चुन्नु** नीरु।
खाया हुआ अन्न। **तिन्नि** अन्नुमु।

इसी प्रकार मराठी के संदर्भ में सातत्य वर्तमान के रूपों को लिया जाए तो मुख्य क्रियारूप व सहायक क्रियारूपों में स्पष्ट अंतर दिखाई देगा, जैसे :

लड़का स्कूल **जा रहा** है। (हिंदी)
मुलगा शालेत **जात आहे**। (मराठी)
लड़के स्कूल **जा रहे** हैं। (हिंदी)

मुलगे शालेत **जात आहेत**। (मराठी)
मैं स्कूल **जा रहा हूं**। (हिंदी)
मी शालेत **जात आहे**। (मराठी)

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि हिंदी रूपों में जहां, जा रहा जा रहे भिन्न-भिन्न रूप लिंग/वचनानुसार हैं, वहां मराठी में एक ही समान रूप 'जात' है। इसी प्रकार कालवाचक रूप जहां हिंदी में पुरुष के अनुसार है, हैं, हूं भिन्न-भिन्न हैं, वहां मराठी में मात्र एक रूप 'आहे' है पर वचन के अनुसार रूप मराठी में भी बदलता है।

हिंदी व्याकरण के अन्य पक्षों में दो अन्य समस्याएं प्रधान हैं :

निजवाचक 'अपना' का प्रयोग
आकारान्त विशेषण

हिंदी में निजवाचक सर्वमान 'आप' है जिसका प्रयोग तीनों पुरुषों, दोनों लिंगों और वचनों में समान रूप से होता है जबकि अन्य भारतीय भाषाओं में या तो इसका अस्तित्व नहीं है, या भिन्न :

वह **अपना** काम कर रहा है। (हिंदी)
वाड़ **तनु** पनिनि चेयुचुन्नाडु। (तेलुगु)
वे **अपना** काम कर रहे हैं। (हिंदी)
वारु **तामु** पनिनि चेयुचुन्नारु। (तेलुगु)

स्पष्ट है तेलुगु में निजवाचक सर्वनाम के लिए एकवचन में तनु और तानु रूप है जबकि बहुवचन में तामु रूप है। इसके ही विकारी रूप क्रमशः 'तन' तथा 'तम' हैं। वर्तमान तेलुगु में यह केवल अन्य पुरुष तक ही सीमित है जबकि पूर्वकाल में उत्तम तथा मध्यम पुरुष में भी प्रयुक्त होता था। प्रकारांतर से दूसरी विशेषता तेलुगु रूपों में स्पष्ट देखी जा सकती है, सर्वनाम तथा क्रिया के अंतिम रूप में साम्य।

हिंदी में लिंग, वचन, कारक के अनुसार आकारांत विशेषण परिवर्तित होते हैं जबकि अन्य भाषाओं में ऐसा नहीं हैं। हिंदी में भी अब यह परिवर्तन मात्र आकारांत शब्दों के साथ ही रह गया है, शेष रूप एक-से बिना किसी परिवर्तन के बने रहते हैं :

मंचि बालुडु। (तेलुगु)	**अच्छा** लड़का (हिंदी)
मंचि बालकुलु।(तेलुगु)	**अच्छे** लड़के (हिंदी)
मंचि बालिक (तेलुगु)	**अच्छी** लड़की (हिंदी)
मंचि बालुनि (तेलुगु)	**अच्छे** लड़के की (हिंदी)
मंचि इंटिलो (तेलुगु)	**अच्छे** मकान में (हिंदी)

स्पष्ट है कि अंतिम दो उदाहरणों में परसर्ग युक्त शब्द (लड़के की, मकान

में) होने के कारण विशेषण में एकारान्त रूप है, जबकि दूसरे उदाहरण में बहुवचन के कारण। अनेक भारतीय भाषाओं में संस्कृत की पद्धति—विशेष्य के लिंग के अनुसार विशेषण में परिवर्तन—विद्यमान है। स्वयं तेलुगु में तत्सम विशेषणों में यह परिवर्तन होता है, जैसे 'प्रिय' के लिए हिंदी में एक ही रूप 'प्रिय' रहेगा जबकि तेलुगु में प्रियुडैन (पुं०), प्रियुरालैन (स्त्री०) तथा प्रियमैन (नपुं०) तीन रूप प्रयोग में आएंगे।

दक्षिण भारतीय भाषाओं के संदर्भ में व्यतिरेकी अध्ययनों में उल्लेखनीय हैं: (1) हिंदी-तमिल—डा० पार्थसारथी तथा डा० एस० एन० गणेशन; (2) हिंदी-कन्नड़—डा० सोमशेखर 'सोम'; (3) हिंदी-तेलुगु—डा० तेजनारायण लाल, श्री एस० वी० शिवराम शर्मा; (4) हिंदी-मलयालम—डा० वेल्लयाणि अर्जुनन।

10. भाषा-शिक्षण में व्यतिरेकी विश्लेषण की उपयोगिता

उक्त विवेचन से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि दो भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण कितना आवश्यक है और भाषा-शिक्षण के पाठ्य-बिंदु निर्धारित करने में कितना उपयोगी सिद्ध होता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण से तीन प्रकार के लाभ स्पष्ट परिलक्षित होते हैं:

1. विश्लेषण के आधार पर पाठ्य-सामग्री का निर्माण तथा अनुस्तरण।
2. विश्लेषण के आधार पर शिक्षण में पाठ्य-बिंदुओं का निर्धारण।
3. विश्लेषण के आधार पर सुधारात्मक पाठ्य-सामग्री। अच्छा यही है कि प्रारंभिक अवस्था में ही उसके/उनके अनुसार सामग्री-निर्माण हो।

व्यतिरेकी विश्लेषण का सीधा संबंध द्वितीय भाषा-शिक्षण में अशुद्धि-विश्लेषण से है। इस पर विस्तार से पृथक् से प्रकाश डाला जाएगा। व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर बनी पाठ्य-सामग्री का प्रधान उद्देश्य है अशुद्धियों से बचना। फिर भी यदि त्रुटियां हों तो इस विश्लेषण के आधार पर उनको सही परिप्रेक्ष्य में पहचाना जाए, उसके मूल कारण की खोज की जाए। आवश्यक हो तो उसका गंभीर विवेचन किया जाए और अंत में सुधारात्मक सामग्री (अभ्यास) तैयार कर त्रुटियों के निवारण का रास्ता खोजा जाए। शुद्ध भाषा सिखाना भाषा-शिक्षण का परम उद्देश्य है। ऐसी स्थिति में व्यतिरेकी विश्लेषण भाषा के कौशलों—सुनना, बोलना, पढ़ना तथा लिखना—की संप्राप्ति मे सहायक सिद्ध होता है।

मातृभाषा-शिक्षण में भी भाषा के मानक रूप तथा उन भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण कर मानक भाषा की संप्राप्ति में यह सहायक सिद्ध हो सकता है। अभी इस ओर ध्यान ही नहीं गया है:

11. निष्कर्ष तथा सीमाएं

व्यतिरेकी अध्ययन के माध्यम से आधार भाषा (भा-1) तथा लक्ष्य भाषा (भा-2) का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। इस विवेचन में समानता तथा असमानता दोनों होती हैं। समानता पर बल देते हुए असमान तत्त्वों की ओर अग्रसर किया जाता है जिससे शिक्षार्थी ज्ञात से अज्ञात की ओर चले।

सामान्यत: शिक्षक को दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए जिससे वह विश्लेषित सामग्री का सदुपयोग कर सके। पर ऐसा होता नहीं। फिर भी द्विभाषी अध्यापक ढूंढ़ा जा सकता है पर भारत तो बहुभाषा-भाषी देश है जहां एक ही कक्षा में पांच-छह आधार भाषा के विद्यार्थी बैठे मिलते हैं। ऐसी स्थिति में जब तक इतने अध्यापक न हों कि आधार भाषानुसार वर्ग बनाये जा सकें, यह विधि अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होती। ऐसी कक्षा में अध्यापक जब किसी पाठ्य-बिंदु पर विशेष ज़ोर भी देता है तो इतर भाषा-भाषी उसमें रुचि नहीं लेते हैं। भारत जैसे निर्धन देश में एक कक्षा के लिए एक अध्यापक को प्राप्त करना क्योंकि अभी असंभव बना हुआ है अतएव आधार भाषाओं के अनुसार कक्षा-वर्गों के बनने में अभी समय लगेगा।

अध्यापक को भाषा-विज्ञान का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। अभी तक 'भाषा' के नाम पर साहित्य का अध्यापन किया जाता रहा है और अध्यापक भी इसी पृष्ठभूमि के मिलते हैं। धीरे-धीरे ऐसे अध्यापकों को पुनश्चर्या पाठ्यक्रम दिये जा रहे हैं। कई विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रमों को भाषापरक मोड़ दिया है। फिर भी भारत जैसे विशाल देश में भाषा-विज्ञान के ज्ञान से संबलित भाषा-अध्यापक प्राप्त हो सकेंगे, इसमें संदेह है।

भाषिक संरचनाएं तथा शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराने का समुचित साधन कक्षा नहीं, भाषा-प्रयोगशाला है। भाषा-प्रयोगशालाएं अभी कितने स्थानों पर हैं यह किसी से छिपा नहीं है अतएव इस प्रक्रिया से सीमित लाभ ही उठाया जा सकता है। एक प्रकार की भाषिक संरचना का अभ्यास कर उस पर अधिकार होने के बाद ही दूसरे प्रकार के वाक्यों का अभ्यास कराया जाए। साथ-के-साथ मूल्यांकनपरक प्रश्नों से जांच-परीक्षण का कार्य भी किया जाना चाहिए।

व्यतिरेकी विश्लेषण की सीमाएं होते हुए भी इसमें संदेह नहीं कि शब्दावली-व्याकरण के क्षेत्र में इसका उपयोग कक्षा में किया जा सकता है और उच्चारण के लिए विद्यार्थियों को आवश्यक संकेत दिये जा सकते हैं।

6 सामग्री-निर्माण

00. भाषा-शिक्षण में 'सामग्री-निर्माण' का विशेष महत्त्व है। आज से 20-25 वर्ष पूर्व से अब स्थिति पर्याप्त भिन्न है। अब इसका सीधा संबंध अनुसंधान से है। कहीं-कहीं तो किसी संस्थान में 'अनुसंधान तथा सामग्री-निर्माण' का संयुक्त विभाग है। सामग्री-निर्माण पाठ्य-पुस्तक लेखन नहीं है। यह ठीक है कि इसके अंतर्गत पाठ्य-पुस्तक तथा सहायक पुस्तकें आती हैं पर इस सामग्री के अतिरिक्त श्रव्य सामग्री, दृश्य सामग्री, श्रव्य-दृश्य सामग्री आदि भी इसमें सम्मिलित है।

प्रथम भाषा (मातृभाषा) और अन्य भाषा शिक्षण की सामग्री का निर्माण भी पर्याप्त भिन्न है। कक्षा-अध्यापन के लिए सामग्री तथा पत्राचार के माध्यम से तैयार की गई सामग्री पर्याप्त भिन्न होगी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि पाठ्य-पुस्तक/कों का विशेष महत्त्व है। आज से कुछ दशक पूर्व तक जिस प्रकार की पाठ्य-पुस्तकें लिखी जाती थीं अब स्थिति पर्याप्त भिन्न है। लगभग सभी राज्यों में पाठ्य-पुस्तक शोध संस्थान स्थापित हो गये हैं और केंद्र में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना की गई है। परिषद् के तत्त्वावधान में न केवल आदर्श पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गई हैं वरन् पाठ्य-पुस्तक-निर्माण से पूर्व की पर्याप्त तैयारी की व्यवस्था तथा बाद में मूल्यांकन की पद्धति भी विकसित की गई है।

1. सामग्री-निर्माण के आवश्यक तत्त्व

सामग्री-निर्माण के पहले निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए :

1.1. **उद्देश्य**—उद्देश्य स्पष्ट होना आवश्यक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना चार प्रमुख भाषा-कौशलों को विकसित करना प्रधान होगा। यहां उद्देश्य से भिन्न तात्पर्य है, मात्र भाषा-ज्ञान प्राप्त करना है या किसी प्रयोजन से भाषा-शिक्षण लिया/दिया जा रहा है? हवाई यात्रा कंपनियों की व्योमबालाओं को हिंदी सिखाने तथा बैंक कर्मचारियों को हिंदी

पढ़ाने के उद्देश्य स्पष्टतः पर्याप्त भिन्न हैं। एक बार उद्देश्य स्पष्ट हो जाए तो सामग्री-निर्माण में भी सहायता मिलती है।

1.2. **समय**—शिक्षण के लिए कितना समय उपलब्ध होगा ? यह उत्तर भी प्रारंभ में मिल जाना चाहिए क्योंकि संपूर्ण स्कीम उसी प्रकार तैयार की जाएगी। यदि समय सीमित है और अध्ययन गहन है तो सभी सामग्री को सीमित समय में ही पूरा किया जाएगा। कितना कार्य कक्षा में किया जाना है और कितना गृह-कार्य के रूप में दिया जाए, समय के अनुसार निश्चित करना होगा। पत्राचार माध्यम से सामग्री बनानी है अथवा कक्षा में शिक्षण, समय का निश्चित होना आवश्यक है। मात्र माह, वर्ष कह देने से काम नहीं चलता, शिक्षण के लिए वास्तविक घंटे कितने मिलेंगे यह जानना आवश्यक है। हिंदी शिक्षण-योजना की पुनरीक्षण समिति ने अपनी रिपोर्ट (1974) के पृ० 20 पर पहले यह स्पष्ट किया है :

पहला पाठ्यक्रम—	सत्र-1	—	100 घंटे 6 मास
	सत्र-2	—	100 घंटे 6 मास
दूसरा पाठ्यक्रम —	सत्र-3	—	100 (75+25) घंटे 6 मास
	सत्र-4	—	100 घंटे 6 मास
तीसरा पाठ्यक्रम—	सत्र-5	—	100 घंटे 6 मास

उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कुल 500 घंटे मिलेंगे। अब इसके अनुसार समस्त पाठ्यक्रम को वितरित किया जा सकता है। इस प्रकार 'अवधि' की जानकारी पर्याप्त उपयोगी है। 'गहन अध्ययन' के लिए सामग्री-निर्माण पर्याप्त भिन्न पद्धति से किया जाएगा, जिससे निरंतर रुचि बनी रहे।

1.3. **विद्यार्थी/शिक्षार्थी**—विद्यार्थी/शिक्षार्थी कौन है ? वह किस अवस्था का है ? यह जान लेना भी सामग्री-निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। प्रौढ़ व्यक्तियों का मनोविज्ञान बाल-मनोविज्ञान से भिन्न होता है। वह समाज के किस वर्ग से संबंधित है ? यह भी ज्ञान पाठ्य-सामग्री को जुटाने में सहायक सिद्ध होता है। बच्चों के लिए सामग्री पर्याप्त भिन्न होगी और पुलिस/कस्टम अधिकारी को पढ़ाने के लिए सामग्री पर्याप्त भिन्न। समाज-सेवा के लिए आए हुए प्रौढ़ों के लिए और विदेश सेवा में लगे कूटनीतिज्ञों के लिए पाठ्य-सामग्री में अंतर रखना होगा।

1.4. **स्तर**—किस स्तर का ज्ञान कराना है और हमारा उद्देश्य क्या है, यह भी देखना होगा। प्रथम तथा द्वितीय भाषा के संदर्भ में एक ही कक्षा में स्तर में पर्याप्त अंतर होगा। द्वितीय भाषा-शिक्षण में भी अनेक स्तर हो सकते हैं। जो भी पहले से ज्ञान है उस पर पाठ्य-सामग्री तैयार कर उसे आगे बढ़ाया जा सकता हैं।

1.5. **परीक्षा**—पाठ्यक्रम के बाद तो परीक्षा होती है पर प्रारंभ में भी

परीक्षा ली जा सकती है, जिससे यह ज्ञान हो जाता है कि विद्यार्थियों का क्या स्तर है? और जिनको पढ़ाना है उन्हें स्तरानुकूल वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पाठ्यक्रम के मध्य में भी परीक्षाओं का आयोजन किया जा सकता है।

1.6. **पाठ्यक्रम**—पाठ्क्रम का पूर्व निर्धारित हो जाना भी सामग्री-निर्माण कर्त्ता को सहायता देता है। इससे स्तर में समानता तथा पढ़ाने में एकरूपता बनी रहती है। प्रथम भाषा तथा अन्य भाषा के रूप में शिक्षण सामग्री में पर्याप्त अंतर होगा। द्वितीय भाषा की पाठ्य-सामग्री के शिक्षण-बिंदुओं को दोनों भाषाओं के व्यतिरेकी अध्ययन से निकालना चाहिए। इस पर 'व्यतिरेकी अध्ययन' अध्याय में विस्तार से लिखा जाएगा। ये पाठ्य-बिंदु आवृत्ति पर आधारित होंगे, शब्दावली-शिक्षण के संदर्भ में इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

2. अन्य भाषा-शिक्षण तथा सामग्री-निर्माण

2.1. **अन्य भाषा-शिक्षण तथा संरचना**—आज अन्य भाषा-शिक्षण वाक्य संरचनाओं पर आधारित है। इधर हिंदी शिक्षण-योजना (गृह मंत्रालय), लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी की पाठ्य-सामग्री वाक्य-सांचों पर ही आधारित है। राष्ट्रीय शै० अनु० और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में जो द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी की पाठ्य-सामग्री का निर्माण किया गया है, वह भी वाक्य संरचनाओं पर आधारित है, जैसे नवीं कक्षा के लिए इस प्रकार निश्चय किया गया :

1. वह+हुआ	जब वर्षा हुई तो हम लोग पेड़ के नीचे खड़े हो गए।
2. धातु+चुक	वह घर आ चुका है।
3. कर्ता-को+धातु-ना+है।	हमें घर जाना है।
वही + था।	उसे नदी पार करनी थी।
4. धातु-ने+दे के रूप	उसे अंदर आने दो। मुझे पढ़ने दो।
5. विधि	आओ चलें/चलो, पढ़ें। वह जाए/वे जाएं।
6. कर्मवाच्य	यहां चावल अधिक खाया जाता है।
7. धातु-ने+वाला	वर्षा होने वाली है। वह आने वाला नहीं है।

2.2. **शिक्षण-पद्धतियां तथा सामग्री-निर्माण**—द्वितीय भाषा के बढ़ते हुए महत्त्व से बड़ी तेज़ी से अनेक शिक्षण-पद्धतियां विकसित हुई हैं। काफी समय तक प्रत्यक्ष प्रणाली, अनुवाद-प्रणाली तथा परम्परागत प्रणाली चलती रहीं, इधर पिछले दो दशकों से अधुनातन पद्धति को अपनाया गया है। नवीन

पद्धतियों में व्यतिरेकी, तुलनात्मक, क्रमबद्ध, प्रकार्यात्मक, संरचनात्मक तथा सूक्ष्म भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित पद्धतियों का विकास हुआ है। तात्पर्य यह है कि पद्धति के अनुसार ही सामग्री-निर्माण में अंतर हो जाएगा।

2.3. **द्वितीय भाषा और सीखनेवाला विद्यार्थी/शिक्षार्थी**— द्वितीय भाषा सीखने वाले के भाषिक वर्ग, प्रयोजन तथा वर्ग के अनुसार शिक्षण-सामग्री का निर्माण पृथक् करना होगा। हिंदी के संदर्भ में यह विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :

भाषिक वर्ग	—	भारतीय
		आर्य भाषा वर्ग
		द्रविड़ भाषा वर्ग
		अन्य भाषा वर्ग
	—	विदेशी
शिक्षण का प्रयोजन	—	देशाटन के लिए
		सामान्य कार्य-संचालन के लिए
		प्रशासन आदि के लिए
अवस्थानुसार	—	बालवर्ग
		किशोर वर्ग
		प्रौढ़ वर्ग

3. श्रव्य सामग्री-निर्माण

इस संबंध में विस्तार से पृथक् से लिखा गया है। इस सामग्री की तैयारी स्वयं भी की जा सकती है अथवा किसी व्यापारिक संस्थान से इस सामग्री को खरीदा जा सकता है। यह सामग्री 'डिस्क' अथवा 'टेप' पर रिकार्ड की जा सकती है। 'हिंदी शिक्षण' के लिए इस प्रकार की सामग्री केंद्रीय हिंदी निदेशालय के तत्त्वावधान में 'लिंग्वा रिकार्ड' के नाम से तैयार की गई है। लिंग्वाफ़ोन कंपनी ने भी अपनी सीरीज़ में अब हिंदी के रिकार्ड उपलब्ध करा दिये हैं।

अपनी निजी उपयोगिता के अनुसार भी सामग्री तैयार की जा सकती है पर इस सामग्री का रिकार्डिंग साउंड प्रूफ स्टूडियो में होना चाहिए।

कुछ बातों की ओर खास ध्यान देना चाहिए जैसे (1) सामग्री में बोल-चाल की भाषा का स्वरूप रखा जाए और रिकार्डिंग के समय स्वाभाविक उच्चारण तथा स्वराघात रखा जाए न कि भाषण जैसा। (2) प्रत्येक उच्चरित शब्द/फ्रेज/वाक्य के बाद स्वाभाविक रिक्त स्थान हो, (3) अगर पाठ्य-श्रव्य सामग्री भाषा प्रयोगशाला के निमित्त है, तो क्या दोहराने के लिए पर्याप्त

स्थान छोड़ा गया है ? स्थान न इतना कम हो जिससे वह ठीक से बोल ही न सके और न इतना अधिक हो जिससे वह अपनी ओर से उसके उतार-चढ़ाव में अदल-बदल करने का समय पा जाए। (4) जिस माइक्रोफोन का प्रयोग किया जाए वह अच्छे किस्म का हो। (5) रिकार्डिंग में प्रयुक्त आवाज़ ठीक व सधी हुई हो जिसको ठीक से रिकार्ड किया गया हो।

4. दृश्य सामग्री-निर्माण

इसमें पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है चाहे किसी भी प्रकार की दृश्य सामग्री हो। यह सामग्री चित्र (रेखाचित्र, फोटो, व्यंग्यचित्र आदि), चार्ट्स, मानचित्र, फिल्म स्ट्रिप, ध्वनि फिल्म आदि कोई भी हो सकती है। दृश्य सामग्री न केवल मौखिक कार्य के लिए आधार उपस्थित करती है वरन् बहु-भाषी कक्षा/कक्षाओं में अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए एकमात्र माध्यम है। शिक्षित अनुदेशक/शिक्षक ही इस प्रकार की सामग्री तैयार कर सकते हैं।

फिल्म/फिल्म स्ट्रिप के माध्यम से जहां प्रारंभिक अवस्था से 'देखो और कहो' के माध्यम से प्राभ्यास हो सकता है तो उच्च कक्षाओं में उच्च स्तरीय वार्तालाप। अन्य उद्देश्य से बनाई गई फिल्म का भाषा-शिक्षण के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री के आधार लेकर फिल्म-लूप्स बनाये जा सकते हैं। विवरणपरक, स्थितिपरक तथा अर्थपरक फिल्में बनायी जा सकती हैं।

दृश्य तथा श्रव्य-दृश्य सामग्री-निर्माण तकनीकी व्यक्ति की सहायता के बिना असंभव है। प्रयोगशाला के लिए सामग्री-निर्माण की चर्चा पृथक् से की जा रही है।

5. पाठ्य-पुस्तक

पाठ्य-सामग्री में पाठ्य-पुस्तकों और सहायक पुस्तकों का विशेष स्थान है। पाठ्य-पुस्तक वस्तुतः आधारशिला है, जिस पर भाषा-शिक्षण का भवन खड़ा होता है। मुद्रणकला के साथ प्रकाशन का कार्य प्रारंभ हुआ है।

अनेक पद्धतियों में से जिस पद्धति को सामग्री-निर्माण का आधार बनाया जाएगा, उसके अनुसार ही पाठ्य-पुस्तक की सामग्री तैयार की जाएगी। व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, आधुनिक पद्धति पर आधारित सामग्री पर्याप्त भिन्न होगी। यूनिट पद्धति से तैयार पाठ्य-पुस्तक पर्याप्त भिन्न होगी।

पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग साधन के रूप में किया जाता है अतएव उसकी सामग्री उत्तम तथा उपयोगी होनी चाहिए। विषयों का चुनाव सोच-समझकर करना चाहिए। बालक के सामाजिक/प्राकृतिक प्रतिवेश से लिये जाएं।

द्यार्थियों/शिक्षार्थियों की रुचियों का ध्यान रखना चाहिए। किस विधा में कौन विषय दिया जाए जिससे विद्यार्थियों की प्रवृत्ति बनी रहे साथ ही उनका मानसिक विकास हो सके और स्तर उत्तरोत्तर बढ़ता जाए। विषय मनोरंजक, ज्ञानात्मक, सामाजिक, राष्ट्रीय जीवन से संबंधित, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, अंतर्राष्ट्रीयता की भावना से युक्त, प्रकृति-प्रेम से युक्त, आत्मीय, संस्मरणात्मक आदि हो सकते हैं जिनसे विद्यार्थी में भाषा-कौशलों के साथ ज्ञान की वृद्धि हो और चरित्र का निर्माण भी हो।

पाठ्य-पुस्तक के साथ अनुपूरक पुस्तकें तथा द्रुतवाचन के लिए पुस्तकें भी तैयार की जाती हैं जिनसे विद्यार्थी का मानसिक विकास होता है; साथ ही साहित्य के प्रति रुचि बनी रहती है। इसमें बौद्धिक, साहित्यिक, विनोदात्मक सामग्री दी जाती है। इस सामग्री के द्वारा पाठ्य-पुस्तक में दी गई शब्दावली को और अधिक बढ़ाया जाता है।

पाठ्य-सामग्री की आंतरिक विशेषताओं की ओर भी ध्यान देना चाहिए। यह सामग्री भाषा-कौशलों की संप्राप्ति में सहायक हो; अतएव भाषा-संबंधी विशेषताओं—स्पष्टता, सरलता, संवेगात्मकता, संक्षिप्तता आदि से युक्त हो तथा शैली की दृष्टि से प्रांजल, प्रवाहमय हो। सामग्री में रोचकता, विविधता, मौलिकता, मनोवैज्ञानिकता हो। जिस प्रदेश के विद्यार्थियों के लिए यह सामग्री तैयार की जाए उसके भिन्न-भिन्न क्षेत्र/अंचल से ली जाए, जिससे जीवन के साथ जुड़ी हुई सामग्री ही विद्यार्थी के सामने आये।

अवधि की दृष्टि से पाठ्य-पुस्तक की पृष्ठ संख्या भी महत्त्व रखती है। सामग्री में तारतम्य हो। आज के युग में पाठ्य-पुस्तक का मुद्रण, उसमें प्रयुक्त चित्र, रेखाचित्र, पाद-टिप्पणियाँ, व्याख्या, संदर्भ, अनुक्रमणिका आदि महत्त्व-पूर्ण तत्त्व हैं जो पुस्तक में रुचि बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। स्तर और कक्षा के अनुसार टाइप मोटा/छोटा रखा जाए। अवस्था के अनुसार चित्रों का प्रयोग किया जाए तथा आवरण और आकार-प्रकार को इस प्रकार रखा जाए कि गेट-अप आकर्षक हो।

पाठ्य-पुस्तक में अभ्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकें स्वाध्याय का साधन भी होती हैं। इन अभ्यासों में केवल विषयवस्तु से संबंधित प्रश्न न रखकर उच्च मानसिक योग्यताओं पर आधारित प्रश्न भी होने चाहिए। अभ्यासों के अंतर्गत 'प्रश्न' तथा 'ड्रिल अभ्यास' होते हैं। कुछ ऐसे कार्य भी दिये जा सकते हैं जो सरल व व्यावहारिक हों और पाठ्य-सामग्री का विकास भी करें। 'ड्रिल अभ्यास' कई प्रकार के होते हैं। अन्य भाषा-शिक्षण में इनका विशेष स्थान है। रिक्त स्थान पूर्ति के प्रश्न पाठ्य-पुस्तक के स्थान पर अभ्यास-पुस्तिका (वर्क बुक) में दिये जाने चाहिए।

अब तो पाठ्य-पुस्तकों का मूल्यांकन किया जाने लगा है। अभी यह कार्य प्रारंभिक अवस्था में है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में इस प्रकार का कार्य किया जाता है। केन्द्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली के तत्त्वावधान में 'भाषा-शिक्षण तथा सामग्री' विषयक 1972-73 में आयोजित संगोष्ठी में डा० कैलाशचन्द्र भाटिया ने द्वितीय भाषा के संदर्भ में 'हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए उपलब्ध सामग्री—एक समीक्षा' शीर्षक पत्र प्रस्तुत किया।

प्रथम भाषा के रूप में कुछ उल्लेखनीय मूल्यांकनपरक शोधकार्य राजस्थान में किये गये हैं। इन अनुसंधानों से आगे सामग्री-निर्माण में सहायता मिल सकती है। शब्दावली-संबधी कुछ महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किये गये। श्रीमती रुक्मिणी रामचन्द्र ने (एम० एड०, 1958 तथा पी-एच० डी०, 1967) पता लगाया कि 7-8 वर्ष की अवस्था के बालकों की व्यवहार-शब्दावली 1232 थी जबकि पाठ्य-पुस्तकों में मात्र 825 शब्द प्रयुक्त हुए। निर्वाणसिंह वैनी (एम० एड०, 1960) ने यह पाया कि मात्र 36 प्रतिशत व्यवहार के शब्द पुस्तकों में आए थे जबकि 6 प्रतिशत शब्द बालकों के प्रत्यक्ष ज्ञान के स्तर से परे थे। व्यवहार शब्द तथा पुस्तक में आए शब्दों के परस्पर संबंध की दृष्टि से ये शोध-ग्रंथ उपयोगी हैं। शिक्षाक्रम में रुचि की दृष्टि से चंद्रप्रकाश शर्मा (एम० एड०, 1954) के अनुसार कहानियाँ सर्वाधिक पसंद की जाती हैं तत्पश्चात् जीवनियाँ और कविताएँ। भगवानदास चंदीराम मटाई (एम० एड०, 1959) के अनुसार लिखित कार्य में आत्मकथा, संक्षिप्तीकरण, संवाद-लेखन, विस्तार तथा अनुवाद के प्रति बिल्कुल रुचि नहीं थी; मात्र विवरण-वर्णन वाले लेख पसंद किये गए, काल्पनिक लेखों में उनको अधिक आनंद लेते पाया गया। सुश्री आभा माथुर ने (एम० एड० 1968) यह पाया कि किशोरावस्था में सामाजिक कहानियाँ, उपन्यास पसंद किये जाते हैं जबकि छोटे बच्चे परियों/राज-रानी की कहानियों में दिलचस्पी लेते हैं।

पाठ्य-पुस्तकों के विश्लेषणात्मक अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि हिंदी पुस्तकें शिक्षण के उद्देश्यों को पूरा नहीं करतीं, अनुभव पर आधारित जीवन-मूल्य प्रदान नहीं करतीं अतएव छात्र रुचि नहीं लेते (ज़ेड० एन० पुरोहित, एम० एड०, 1970)। समाज में हुए विकास की अवस्थाओं को इन पुस्तकों में प्रति-फलित नहीं किया गया अतएव ये आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं करतीं (अब्दुल रहमान, एम० एड०, 1972) दूसरी ओर उच्च माध्यमिक कक्षाओं की पुस्तकों में पाया गया कि जातीय-सांस्कृतिक परिवेश के संदर्भ में पाठों का उचित चयन किया गया (पुष्पलता शर्मा, एम० एड०, 1954) और भाषा का पक्ष पर्याप्त मुखरित हुआ (पुरुषोत्तमलाल तिवारी, एम० एड०, 1972)। संभव है इस प्रकार के शोधकार्य अन्य राज्यों में भी किये गए हों।

अनुसंधान, पाठ्य-सामग्री-निर्माण तथा मूल्यांकन में परस्पर संबंध है। एक-दूसरे से आगे सामग्री-निर्माण में सहायता मिलती है।

6. पत्राचार पाठ्य-सामग्री

पत्राचार के लिए बनाई गई पाठ्य-सामग्री में विशेष विधि अपनाई जाती है, क्योंकि शिक्षार्थी परोक्ष में उससे लाभ उठाता है। प्रत्येक पाठ्य-बिंदु कई प्रकार से स्पष्ट किया जाता है और विस्तार से भाषिक नियमों को समझाया जाता है। सामग्री के साथ **'रेसपॉन्स शीट्स'** भी भेजी जाती हैं। अगर उत्तरों में पर्याप्त अशुद्धियाँ होती हैं तो पाठ्य-सामग्री को पुनः दुहराया जाता है जिससे नियम और अधिक स्पष्ट हो सकें। केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के लिए पाठ्य-सामग्री अँग्रेज़ी, तमिल तथा मलयालम के माध्यम से तैयार की है। शुद्ध उच्चारण तथा बोलना सिखाने के लिए सहायतार्थ लिंग्वारिकार्ड भी तैयार किये हैं।

अभ्यास एकक के माध्यम से विद्यार्थियों की प्रगति पर नियंत्रण रखा जाता है तथा उसे आवश्यक निर्देशन और सहायक सामग्री प्रदान की जाती है। प्रगति का पूरा लेखा पृथक् से रखा जाता है जिससे विद्यार्थियों पर पूरी निगरानी रहे। आवश्यकतानुसार विशिष्ट सामग्री तैयार कर भेजी जाती है।

अनेक विश्वविद्यालय पत्राचार के माध्यम से हिंदी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाएँ भी सिखाने लगे हैं। अभी इस दिशा में पर्याप्त सुधार अपेक्षित है।

7. अभिक्रमित अध्ययन पाठ्य-सामग्री

'प्रौद्योगिकी' के विवरण के साथ टीचिंग मशीन तथा अभिक्रमित अध्ययन पर आधारित सामग्री-निर्माण की विस्तार से चर्चा की गई है।

इस प्रकार के सामग्री-निर्माण का कार्य भी उद्देश्य एवं उपयोग के अनुसार पर्याप्त भिन्न हो जाता है। अभिक्रमित अध्ययन की पद्धति का उपयोग भाषा-शिक्षण में निम्नलिखित दिशाओं/क्षेत्रों में किया जाता है :

1. पाठ्य-सामग्री
2. सुधारात्मक सामग्री
3. परिपूरक सामग्री
4. प्रौढ़ों के लिए सामग्री
5. पत्राचार पाठ्यक्रम
6. अनवरत अध्ययन

8. सामग्री-निर्माण तथा शिक्षण-संकेत

इधर पाठ्य-सामग्री के साथ अध्यापकों को निर्देश देना भी आवश्यक समझा गया है। अध्यापन-निर्देश की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं। अध्यापक संस्करण पृथक् से तैयार-प्रकाशित किया जाए। अँग्रेज़ी में तो कुछ ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनमें पाठ्य-सामग्री को जिस रंग में मुद्रित किया गया है, अध्यापक के लिए आवश्यक निर्देश सामग्री भिन्न रंग में मुद्रित है। हाल में अरुणाचल प्रदेश में पहली कक्षा से ही हिंदी का अध्यापन प्रारंभ किया गया है। फलतः उनके लिए तैयार की गई पुस्तक 'अरुण भारती' में प्रत्येक पाठ के नीचे महीन टाइप में आवश्यकतानुसार 'शिक्षण-संकेत' दे दिये गए हैं। ये 'शिक्षण संकेत' दो भागों में विभाजित हैं: (1) मौखिक अभ्यास तथा (2) पठन अभ्यास।

प्राप्त अवधि में पाठ्य-सामग्री को कैसे पूरा कराया जाए, किस पुस्तक के लिए कितना समय दिया जाए, इसको भी शिक्षण-संकेत में दिया जा सकता है। 'हिंदी शिक्षण योजना' के लिए मूल पाठ्य-सामग्री 'हिंदी पाठमाला—1' तैयार की गई जिसमें मूलपाठ एवं मौखिक अभ्यास दिए गए और साथ में अभ्यास-पुस्तिका, उच्चारण-पुस्तिका तथा लेखन-बोधन पुस्तिका (हिंदी लिपि पुस्तक) भी तैयार की गई। इनके शिक्षण के लिए संकेत दिया गया कि पहले सप्ताह में पहले दिन उच्चारण-अभ्यास (पाठ एक), दूसरे दिन लिपि लेखन (1-2), तीसरे दिन मौखिक अभ्यास (1) तथा चौथे दिन लिपि लेखन (3-4) कराये जाएँ। यही क्रम पाँच सप्ताह तक चले और फिर पुनरीक्षण तथा मासिक मूल्यांकन के बाद 'छठे सप्ताह से योजनाबद्ध रूप में पाठमाला के पाठ तथा अभ्यास-पुस्तिका के अभ्यास साथ-साथ कराए जायेंगे।' पाठ कैसे पढ़ाए जाएँ इन पर पर्याप्त निर्देश ही नहीं दिये गए वरन् अध्यापकों को पढ़ाने के लिए कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारंभ में 'भूमिका' में आवश्यक निर्देश भी दिये गए हैं।

9. अनुस्तरण

पाठ्य-सामग्री में अनुस्तरण होना नितांत आवश्यक है। सरल से कठिन की ओर जाना तो सामान्य नियम है जिसको अपनाया जाता है पर व्याकरणिक इकाइयों, शब्दावली, वाक्य साँचों में परस्पर संबंध हो और हर कक्षा में स्तर उठता जाए यह सामग्री-निर्माण का आवश्यक तत्त्व है। इसकी पृष्ठभूमि में व्यतिरेकी अध्ययन से प्राप्त शिक्षण-बिंदु तो रहते ही हैं पर भाषा के प्रकार्य और उसकी व्यवस्था तथा संरचना में परस्पर कैसे संबंध रखा जाना चाहिए जिससे एक ओर क्रमबद्धता बनी रहे, दूसरी ओर अनुस्तरण। यह क्रमबद्धता तथा अनुस्तरण शब्द, अर्थ तथा व्याकरण तीनों स्तरों पर बने रहने चाहिए। कहाँ,

कब, किस व्याकरणिक तत्त्व तथा शब्दावली का चयन किया जाए यह कार्य सरल नहीं। आवृत्ति, आवश्यकता, स्तर आदि कई तत्त्व इस चयन की प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होते हैं।

10. निष्कर्ष

सामग्री-निर्माण का कार्य आज जटिल के साथ ही वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित है। भाषा-शिक्षण में एक साथ पाठ्य-विषय तथा भाषिक संरचना पर बल देना होता है और इस ओर भी ध्यान रखना पड़ता है कि रुचि बनी रहे अतएव वस्तुतः यह चुनौती-भरा कार्य है।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि सामग्री-निर्माण में पहला कदम है 'चयन' जो कि अपेक्षित स्तर, अवधि, अवस्था-लिंग, उद्देश्य के अनुरूप हो। दूसरा कदम है इस छाँटी गई सामग्री को अनुस्तरित किया जाए अर्थात् पहले सामग्री का समूहन हो और फिर प्रत्येक समूहन में तारतम्य। अंततः इस समस्त सामग्री को प्रस्तुत किया जाए। प्रारंभ में उद्देश्य कथन के साथ प्रस्तावना दी जाए जिसमें विद्यार्थी/शिक्षार्थी के पूर्व ज्ञान का अंदाज़ा हो। मूल कृति में पाठ हों जिनमें उद्देश्य के अनुरूप विचार-अर्थ का संप्रेषण हो। अंत में इस प्रकार के अभ्यास हों कि संरचना के सीखने के ज्ञान का मूल्यांकन किया जा सके। पाठ्य-सामग्री के समानांतर उपचारात्मक कार्रवाई भी की जाएगी और आवश्यकतानुसार सहायक सामग्री भी प्रस्तुत की जाएगी।

7 अभिरचना-अभ्यास

0.0 हर भाषा की अपनी ख़ास तरह की 'संरचना' अथवा 'आंतरिक व्यवस्था' होती है, जिसमें ध्वनि-क्रम, शब्द-क्रम, पदबंध, उपवाक्य और वाक्य आदि के ख़ास तरह के पैटर्न (pattern) होते हैं। पैटर्न को ही हिंदी में 'साँचा' अथवा 'अभिरचना' कहते हैं। इन पैटर्नों के बार-बार दुहराने अथवा अभ्यास करने को अँग्रेज़ी में 'पैटर्न ड्रिल' अथवा 'पैटर्न प्रैक्टिस' तथा हिंदी में 'अभिरचना-अभ्यास' अथवा 'साँचा-अभ्यास' कहा जाता है।

0.1. पहले 'व्याकरण-पद्धति' अथवा 'व्याकरण-अनुवाद पद्धति' से अन्य भाषा सिखाई जाती रही है, जिसमें उस भाषा के व्याकरण को रटाने पर बल रहा है। 'प्रत्यक्ष पद्धति' अथवा 'श्रवण-भाषण-पद्धति' के विकास के बाद यह धारणा बनी कि व्याकरण, भाषा न सिखाकर, भाषा के बारे में सिखाता है, अर्थात् वह प्रत्यक्षत: भाषा न सिखाकर यह सिखाता है कि भाषा-विशेष में कौन-कौन-से नियम काम करते हैं, किंतु 'भाषा-शिक्षण' भाषा का शिक्षण है, न कि भाषा के बारे में या भाषा के नियमों का शिक्षण, इस तरह व्याकरण भाषा सिखाने का काम नहीं कर सकता।

0.2. इसके साथ ही इस बात की ओर भी लोगों का ध्यान गया कि मातृभाषा, व्याकरण के नियमों से नहीं सीखी जाती, बल्कि लोगों से सुनकर, फिर बोलकर और बोलने में अशुद्धि होने पर बड़े-बूढ़ों द्वारा अशुद्धि सुधारने के आधार पर सीखी जाती है। इसी प्रकार अन्य भाषा भी सीखी जानी चाहिए, क्योंकि यही पद्धति अधिक स्वाभाविक है।

0.3. आगे इस प्रसंग में एक बात और जोड़ी गई कि मातृभाषा के अर्जन में सुनते-सुनते और बोलते-बोलते भाषा की संरचना के सारे नियम, बालक बिना यह जाने कि वह नियम याद कर रहा है, हृदयंगम कर लेता है।[1] इसी प्रकार

1. पीछे कहा जा चुका है कि श्वेता दो वर्ष से कम की थी तो उसे स्त्रियों को 'आंटी' कहना सिखाया गया। इससे पहले मौसा-मौसी, नाना-नानी शब्दों से वह परिचित हो चुकी थी। 'आंटी' शब्द सीखने के बाद एक दिन कोई सज्जन आए और उससे पूछा गया कि यह कौन

यदि वह अन्य भाषा सीखने वाला बार-बार सुनकर और ज़ोर से बोल-बोलकर अन्य भाषा की अभिरचनाओं का अभ्यास करे तो उसे व्याकरण के नियम रटने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और वह बार-बार के अभ्यास से अन्य भाषा की संरचना के सारे नियम हृदयंगम कर लेगा।

0.4. हम यह देखते हैं कि मातृभाषा में बोलते समय हमें नियमों का स्मरण करके वाक्य नहीं बनाने पड़ते, बल्कि हम फटाफट बोलते चले जाते हैं। होता यह है कि समाज से सुनते-सुनते, स्वयं बोलते-बोलते तथा अशुद्ध बोलने पर दूसरों द्वारा टोके जाने के परिणामस्वरूप मातृभाषा की पूरी संरचना, उसके सारे नियम-उपनियम हम इस प्रकार हृदयंगम कर लेते हैं कि वे हमारे अव-चेतन की आदत बन जाते हैं। जैसे कोई व्यक्ति हमारी आँख में झटके से कोई लकड़ी डालना चाहे तो बिना कुछ सोचे-समझे हम अपनी आँख बंद कर लेते हैं। इसी प्रकार मातृभाषा में बोलते समय भी आदतन हम बोलते चले जाते हैं। अभिरचना-अभ्यास का भी मूल उद्देश्य अन्य भाषा को हमारे अवचेतन की आदत बना देना है ताकि बिना सोचे-समझे हम खटाखट बोलते चले जाएँ।

0.5. निष्कर्षत: अभिरचना-अभ्यास में बार-बार सुनने और बोलने के कारण भाषा सीखने वाला उस भाषा के विभिन्न प्रकार के वाक्यों (जिन्हें वह सुनता तथा बोलता है) के सामान्यीकरण के आधार पर अपने-आप उस भाषा के न केवल सारे नियम सहज रूप में निकाल लेता है, बल्कि उन्हें पूरी तरह से हृदयंगम करके अपने बोलने की आदत का अंग बना लेता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह मातृभाषा की तरह ही अन्य भाषा को भी आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार बिना प्रयास के सहज रूप में बोलने और लिखने लगता है।

1.0. अभिरचना-अभ्यास के लिए पहले मातृभाषा और अन्य भाषा का विश्लेषण करके दोनों की संरचना में प्रयुक्त सारी अभिरचनाओं को निकाल लेना चाहिए। फिर दोनों की अभिरचनाओं के दो वर्ग बनाने चाहिए : (क) समान, (ख) असमान। समान से आशय है उन अभिरचनाओं का वर्ग जो दोनों भाषाओं में समान हैं। असमान से आशय है उन अभिरचनाओं का वर्ग जो

हैं ? उसने तपाक से उत्तर दिया 'आंटा।' स्पष्ट है मौसा-मौसी, नाना-नानी जैसे शब्दों को सुनकर अनजाने उस बच्ची ने यह नियम हृदयंगम कर लिया था कि हिंदी में 'ई' को 'आ' कर देने से पुल्लिंग शब्द बन जाता है, अत: उसने 'आंटी' से 'आंटा' बना लिया था। वस्तुत: सामान्यीकरण के आधार पर भाषा-विषयक नियम बहुत कम उम्र में ही बच्चे के मस्तिष्क में घर करने लगते हैं, तथा उनके आधार पर वे शब्द-रचना आदि करने लगते हैं। उनमें जो ठीक होते हैं उसी रूप में उनकी आदत बन जाते हैं। और जो गलत होते हैं, बड़ों द्वारा सुधारे जाने पर आदत बन जाते हैं।

दोनों में भिन्न है । व्यतिरेकी विश्लेषण इन्हीं भिन्न अभिरचनाओं को खोज निकालता है ।

अभिरचना-अभ्यास के लिए पहले उन अभिरचनाओं को लेना चाहिए जो दोनों भाषाओं में समान हैं । सरल और जटिल तथा कम प्रयुक्त होने और अधिक प्रयुक्त होने के आधार पर उनका अनुस्तरण (gradation) करके, उसी क्रम से इन अभिरचनाओं को अभिरचना-अभ्यास में लेना चाहिए।

इनका पूरी तरह अभ्यास हो जाने पर, उन अभिरचनाओं को लेना चाहिए जो मातृभाषा और अन्य भाषा में समान न होकर भिन्न हैं । इनको भी मातृ-भाषा से कम भिन्नता-अधिक भिन्नता, भाषा में कम प्रयोग-अधिक प्रयोग, आधारभूत-रूपांतरित, सरलता-जटिलता आदि के आधार पर अनुस्तरित (graded) करके फिर उसी क्रम से लेना चाहिए ।

1.1. अभिरचना-अभ्यास के विषय में निम्नांकित बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(1) प्रारंभ से एक बार में भाषा-संरचना की एक ही समस्या को अभि-रचना-अभ्यास में लेना चाहिए, ताकि भाषा सीखने वाला निर्भ्रान्त रूप से उसको हृदयंगम कर सके ।

(2) अभिरचना-अभ्यास मौखिक रूप से होना चाहिए ताकि उच्चारण के लिए अपेक्षित बातों (स्वर-व्यंजनों का उच्चारण, अक्षर-विभाजन, संगम, बलाघात, अनुतान) पर शिक्षक ध्यान दे सके । सुनकर दुहराने पर यदि विद्यार्थी उच्चारण की कोई ग़लती करे तो अध्यापक को उसे तुरंत समझाते हुए ठीक कर देना चाहिए । इसके लिए व्यक्तिगत रूप से एक-एक विद्यार्थी से कुछ अभि-रचना-अभ्यास कराये जा सकते हैं, क्योंकि सामूहिक रूप में व्यक्तिगत ग़लतियों को सुधारना संभव नहीं होता ।

(3) यदि उस भाषा की कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो मातृभाषा में नहीं हैं, तो उनका भी मातृभाषा से तुलना करके उच्चारण में सरल और कठिन की दृष्टि से अनुस्तरण कर लेना चाहिए, और अभिरचना-अभ्यास में उसी क्रम से उन्हें लेना चाहिए । ऐसे ही संयुक्त व्यंजन, व्यंजन-अनुक्रम, संयुक्त स्वर और स्वरानुक्रम का भी ध्यान रखना चाहिए !

(4) अभिरचना-अभ्यास में जहाँ तक शब्दों के प्रयोग का प्रश्न है, पहले आधारभूत (basic) शब्दों को लेना चाहिए, फिर उच्चतर और फिर उच्चतम ।

(5) अभिरचना-अभ्यास में प्रारंभ के पुनरावृत्तिक अभ्यास को छोड़कर हर बार वाक्य में कोई-न-कोई अंश बदलना चाहिए । हमेशा एक ही वाक्य को दुहराने से लाभ नहीं । इससे वह वाक्य तो याद हो जाएगा, किंतु एक वाक्य उस भाषा की कोई अभिरचना नहीं सिखा सकता ।

(6) अभिरचना-अभ्यास के जो अंश बदलें, उसकी ओर भाषा सीखने वाले का ध्यान जाना चाहिए, क्योंकि यह बदलाव ही अभिरचना को सीखने वाले के हृदय में बैठाता है। इस ओर ध्यान दिलाने के लिए उसको वस्तु, चित्र आदि से प्रेरित किया जाना चाहिए। जैसे 'यह क़लम है,' 'यह पेंसिल है,' 'यह दवात है,' आदि।

(7) अभिरचना-अभ्यास के साथ-साथ विद्यार्थी को ध्यान देकर विविध वाक्यों के भीतर आई समान बातों के आधार पर सामान्यीकरण करने का प्रयास करना चाहिए ताकि, भाषा के नियम अवचेतन की आदत का अंग बन सकें और उस भाषा का प्रकार्यपरक व्याकरण धीरे-धीरे उसके मन में रच-पच जाए।

(8) अभिरचना-अभ्यासी प्रतिस्थापन, विस्तारण, रूपांतरण आदि विषयक अभ्यासों में जब भी कोई अशुद्धि करे, वह अशुद्धि चूक हो या भूल या त्रुटि, उसका तुरंत संशोधन कर देना चाहिए, और यदि अपेक्षित हो तो उसे और उदाहरणों के द्वारा थोड़े विस्तार से समझा भी देना चाहिए।

(9) हर प्रकार की अभिरचना का अभ्यास इतनी बार कराना चाहिए कि वह अभिरचना भाषा की संरचना में उसका स्थान, तथा वह संदर्भ जिसमें उस प्रकार की अभिरचना प्रयुक्त होती है, भाषा सीखने वाले के मस्तिष्क में घर कर जाएँ।

(10) अभिरचना-अभ्यास में केवल सुनने और बोलने से भाषा नहीं आती। भाषा का आना तब माना जाना चाहिए जब किसी भी भाषा की सभी प्रकार की अभिरचनाओं का इतना अभ्यास हो जाए कि वे भाषा सीखने वाले के अवचेतन की इस प्रकार की आदत बन जाएँ कि बिना विशेष प्रयास के वह उस भाषा का प्रयोग कर सके, तथा परिस्थिति के अनुरूप नये-नये वाक्य बिना सोचे-समझे आदतन बना सके। अभिरचना-अभ्यास का बल इसी पर होना चाहिए।

(11) हर अभ्यास न बहुत बड़ा हो न छोटा।

(12) यदि विद्यार्थी थक जाएँ तो अभ्यास बंद कर देना चाहिए, तथा फिर थोड़े अंतराल के बाद या दूसरे दिन शुरू करना चाहिए।

2.0 अभिरचना-अभ्यास के लिए बनाए गए अभ्यास में मोटे रूप से पाँच-या छः प्रकार हो सकते हैं : पुनरावृत्तिक, प्रतिस्थापक, विस्तारक, संक्षेपक, रूपांतरक, प्रश्नोत्तरक। आगे इन्हें अलग-अलग लिया जा रहा है।

2.1 **पुनरावृत्तिक अभ्यास**—पुनरावृत्तिक अथवा पुनरावृत्ति वाले अभ्यासों से ही अभिरचना-अभ्यास का प्रारंभ किया जाता है। ये सबसे सरल होते हैं। अध्यापक जो कहता है, विद्यार्थी उसकी पुनरावृत्ति करते हैं, अर्थात् उन्हें दुहराते हैं। जैसे :

अध्यापक (अ०)—लड़का किताब पढ़ता है।

विद्यार्थी (वि०)—लड़का किताब पढ़ता है।

इस श्रेणी के अभ्यास यांत्रिक होते हैं। इनसे केवल वे वाक्य याद हो जाते हैं जिनका अभ्यास किया जाता है, विद्यार्थियों को भाषा की संरचना या भाषा की संरचना में प्राप्त किसी अभिरचना का पता नहीं चलता। हाँ, उच्चारण-विषयक बातों की जानकारी अवश्य हो जाती है।

2.2 **प्रतिस्थापक अभ्यास**—इसमें वाक्यों को ज्यों-का-त्यों नहीं दुहराते, अपितु उसी अभिरचना में किसी एक या अधिक शब्दों के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रतिस्थापन करते हैं। जैसे :

अ०—लड़का किताब पढ़ता है।

वि०—लड़का किताब पढ़ता है।

अ०—आदमी

वि०—आदमी किताब पढ़ता है।

अ०—पत्र

वि०—आदमी पत्र पढ़ता है।

प्रतिस्थापन-अभ्यास कई प्रकार के हो सकते हैं। जैसे :

(क) **एकप्रतिस्थापन-अभ्यास**—इसमें एक का प्रतिस्थापन किया जाता है। जैसे :

अ०—लड़का घर गया।

वि०—लड़का घर गया।

अ०—गाँव

वि०—लड़का गाँव गया।

अ०—आदमी

वि०—आदमी गाँव गया।

इसमें कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण आदि रूप में आए संज्ञा या सर्वनाम; विशेषण (लड़का अच्छा है—लड़का बुरा है), क्रिया (राम गया—राम आया), क्रियाविशेषण आदि का प्रतिस्थापन करते हैं। इस पर काफ़ी बल देना चाहिए। इससे भाषा अभिरचना सीखने वालों के मस्तिष्क में घर कर जाती है। इस अभ्यास में शब्दों के रूप नहीं बदलने चाहिए।

(ख) **एकाधिक प्रतिस्थापन-अभ्यास**—इसमें उसी अभिरचना में दो या अधिक के प्रतिस्थापन होते हैं। जैसे :

अ०—लड़का घर गया।

वि०—लड़का घर गया।

अ०—आदमी, गाँव

वि०—आदमी गाँव गया।

(ग) **रूपप्रतिस्थापन-अभ्यास**—इसमें लिंग, वचन, पुरुष, काल आदि की दृष्टि से एक रूप के स्थान पर दूसरे का प्रतिस्थापन करते हैं तथा उसके अनुसार वाक्य में अपेक्षित परिवर्तन करते हैं। जैसे :

आ०—लड़का जाता है।

वि०—लड़का जाता है।

अ०—लड़की

वि०—लड़की जाती है।

अ०—लड़कियाँ

वि०—लड़कियाँ जाती हैं।

2.3. **विस्तारक अभ्यास**—इसमें संज्ञा (लड़का—राम का लड़का), विशेषण (सुंदर चित्र—बहुत सुंदर चित्र), क्रिया (जाता है—रोज़ जाता है), क्रियाविशेषण (तेज़ी से भाग रहा है—बहुत तेज़ी से भाग रहा है) आदि का विस्तार जोड़ते हैं। यह भी दो प्रकार का हो सकता है :

एक विस्तारक : लड़की गई—लड़की घर गई।

एकाधिकविस्तारक : लड़का गया—राम का लड़का स्कूल गया।

2.4. **संक्षेणष-अभ्यास**—अभिरचना-अभ्यास पर लिखने वालों में किसी ने इसे नहीं माना है, किंतु मेरे विचार में इसका अभ्यास भी होना चाहिए। वार्तालाप में पूरा वाक्य न कहकर उसके कुछ शब्दों को निकाल देते हैं, इस प्रकार कथन को संक्षिप्त कर देते हैं, और उसके हर भाषा के अपने नियम अलग होते हैं। ऐसी स्थिति में इसका अभ्यास भी आवश्यक है, नहीं तो भाषा सीखने वाला अपनी मातृभाषा के अनुरूप संक्षेपण करेगा, जो कोई आवश्यक नहीं कि अन्य भाषा में स्वीकार्य हो। संक्षेपण के उदाहरण हैं :

—तुम कब चलोगे ?

—कल (मैं कल चलूँगा)।

—तुम कहाँ रहते हो ?

—गाँव में (मैं गाँव में रहता हूँ)।

यह अभ्यास प्रश्नोत्तरक अभ्यास से ही संबद्ध है।

2.5. **रूपांतरक अभ्यास**—पीछे के अभ्यासों में पर्याप्त दक्षता हो जाने के बाद इस अभ्यास को शुरू कराना चाहिए। भाषा की संरचना की दृष्टि से इसके अनेकानेक रूप हो सकते हैं। जैसे हिंदी के लिए कुछ मुख्य रूप ये हैं :

(क) दो या अधिक सरल वाक्यों से मिश्र वाक्य (राम जानता है—शीला नहीं आएगी : राम जानता है कि शीला नहीं आएगी।)

(ख) दो या अधिक सरल वाक्यों से संयुक्त वाक्य (राम गया—सीता आई :

राम गया और सीता आई ।)

(ग) दो या अधिक सरल वाक्यों से एक सरल वाक्य (राम गया—मोहन गया—राजेश गया : राम, मोहन और राजेश गए ।)

(घ) सामान्य से प्रश्न (राम गया—क्या राम गया ? राम गया क्या ?)

(ङ) सामान्य से निषेध (राम जाता है—राम नहीं जाता ।)

(च) कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य (राम ने गिलास तोड़ दिया—राम से गिलास टूट गया ।)

(छ) कर्तृवाच्य से भाववाच्य (राम नहीं चल सकता—राम से चला नहीं जाता ।)

(ज) एक सरल वाक्य से मिश्र वाक्य (राम उपन्यास पढ़ रहा है—राम जो पुस्तक पढ़ रहा है, वह उपन्यास है ।)

2.6. **प्रश्नोत्तरक अभ्यास**—इसमें चित्र, वस्तु, स्थिति, स्थान आदि की ओर संकेत करते हुए पहले प्रश्न करते हैं, तथा भाषा सीखनेवाले उत्तर देते हैं । बाद में बिना संकेत वाले प्रश्न (तुम कहाँ जा रहे हो ?) किए जाते हैं तथा विद्यार्थी उनके उत्तर देते हैं । और आगे चलकर बारी-बारी से एक विद्यार्थी प्रश्न करता है तथा शेष उत्तर देते हैं । कुछ उदाहरण हैं :

यह क्या है ?—यह मेज़ है ।

यह क्या है ?—यह कुर्सी है ।

हर भाषा में प्रश्न अनेक प्रकार के हो सकते हैं । जैसे हाँ-नहीं वाले : क्या तुम चलोगे ? हाँ/नहीं ; एक शब्द के उत्तर वाले : कहाँ जा रहे हो ?—घर; अधिक शब्दों के उत्तर वाले—तुम कब से बैठे हो ?—चार बजे से, आदि । सभीके अभ्यास कराए जाने चाहिए ।

3.0. अभिरचना-अभ्यास के मुख्य लाभ तीन हैं :

1. विद्यार्थी को रटना नहीं पड़ता । बार-बार बोलकर अभ्यास करने से सहज रूप से भाषा की संरचना और उसके नियम हृदयंगम हो जाते हैं ।

2. कक्षा में मनहूसियत नहीं आती । विद्यार्थी सक्रिय और सतर्क रहते हैं ।

3. धीरे-धीरे, अभिरचना-अभ्यास से, वह भाषा सीखनेवाले के अवचेतन की आदत बन जाती है, अतः सभी प्रकार के अभिरचना-अभ्यास कर लेने पर भाषा सीखनेवाला बिना विशेष अभ्यास के, प्रायः मातृभाषा की तरह, उच्चारण और व्याकरण दोनों ही दृष्टियों से भाषा बोलने लगता है ।

अभिरचना-अभ्यास की आवश्यकता अन्य भाषा-शिक्षण में ही पड़ती है, न कि मातृभाषा-शिक्षण में । यों यदि प्रथम भाषा तथा मातृभाषा में बहुत अंतर हो जैसे मैथिली और मानक हिंदी में, तो संक्षेप में इसका प्रयोग उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

अशुद्धि-विश्लेषण 8

0.0. भाषा के बोलने, लिखने, सुनने और समझने—इन चारों में अशुद्धि की संभावना होती है। इनमें अशुद्धि की सबसे कम संभावना सुनने में, उससे अधिक समझने में, उससे अधिक लिखने में और सबसे अधिक बोलने में होती है। इनमें प्रायः लिखने और बोलने की अशुद्धि की ही चर्चा भाषा-शिक्षण के प्रसंग में की जाती है। श्रोता यदि सतर्कता बरते तो सुनने और समझने की अशुद्धि की संभा-वना बहुत कम अथवा प्रायः नहीं के बराबर हो जाती है।

अशुद्धि होती है, सभी से, भाषा सीखनेवालों से, सीख चुकनेवालों से, बड़ों से, वूढ़ों से; अपनी भाषा बोलने में तथा दूसरों की भाषा बोलने में। यों सर्वाधिक अशुद्धियाँ भाषा सीखने वाले करते हैं। अपनी भाषा सीखनेवाले कम। अन्य भाषा सीखने वाले ज़्यादा।

0.1. अशुद्धि-विश्लेषण और अशुद्धि-शोधन की दृष्टि से भाषा-शिक्षण में तीन प्रकार की स्थितियाँ मिलती हैं :

(क) जब बच्चे को मातृभाषा की शिक्षा दी जा रही हो, और उसमें वह अशुद्धि कर रहा हो। मास्को में रहने वाले को रूसी भाषा की शिक्षा या लंदन में रहने वाले को अँग्रेज़ी की शिक्षा देते समय इस वर्ग की अशुद्धियाँ मिलती हैं। ऐसे ही दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद आदि बड़े शहरों के सुशिक्षित हिंदी-भाषी परिवारों में, मातृभाषा के रूप में, कोई बोली न बोली जाकर मानक हिंदी ही बोली जाती है। उन परिवारों के बच्चे भी हिंदी की शिक्षा प्राप्त करते समय इसी प्रकार की अशुद्धियाँ करते हैं।

1. भाषा-शिक्षण की पुस्तकों में प्रायः एक अध्याय त्रुटि-विश्लेषण (Error-Analysis) शीर्षक से होता है। 'त्रुटि-विश्लेषण' नाम बहुत उपयुक्त इसलिए नहीं है, कि इसमें 'त्रुटि' के अतिरिक्त अन्य प्रकार की ग़लतियों पर भी न्यूनाधिक रूप से विचार किया जाता है। इसीलिए मैंने इस अध्याय का शीर्षक 'अशुद्धि-विश्लेषण' रखना उचित समझा है, जिसमें त्रुटि-विश्लेषण, चूक-विश्लेषण तथा भूल-विश्लेषण ये तीन समाहित हैं।

(ख) जब बच्चे की मातृबोली (या प्रथम भाषा) एक हो तथा मातृभाषा उससे भिन्न हो, और उस मातृभाषा की शिक्षा दी जा रही हो, और उसमें वह अशुद्धि कर रहा हो। उदाहरण के लिए हिंदी-क्षत्र की विभिन्न बोलियों (जैसे भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि) को मातृबोली के रूप में बोलनेवाले बच्चे मातृ-भाषा मानक हिंदी सीखते समय इसी प्रकार की अशुद्धियाँ करते हैं। कहना न होगा कि 'क' वर्ग की अशुद्धियाँ इस 'ख' वर्ग की अशुद्धियों से भिन्न होती हैं।

(ग) जब किसी को अन्य (द्वितीय या विदेशी) भाषा की शिक्षा दी जा रही हो (जैसे रूसी-भाषी को हिंदी, या हिंदी-भाषी को जर्मन, या तमिल को हिंदी आदि) और उसमें वह अशुद्धि कर रहा हो।

0.2. उपर्युक्त तीनों वर्गों की अशुद्धियाँ एक प्रकार की नहीं होतीं। गह-राई से देखें तो 'क' वर्ग की अशुद्धियाँ मातृभाषा अर्जित करते समय होनेवाली अशुद्धियाँ हैं, तो 'ग' वर्ग की अशुद्धियाँ अन्य भाषा सीखते समय होनेवाली अशुद्धियाँ हैं। 'ख' वर्ग की अशुद्धियाँ प्रायः बीच की हैं। सांस्कृतिक, सामाजिक और भाषायी समानता के कारण हिंदी इन लोगों के लिए न तो उस प्रकार की अन्य भाषा है जैसे हिंदी-भाषी के लिए रूसी, या चीनी-भाषी के लिए जापानी; किंतु साथ ही हिंदी इन लोगों के लिए बिल्कुल सच्चे अर्थों में मातृभाषा भी नहीं है, जैसे पेरिस के निवासी के लिए फ्रांसीसी होती है या पीकिंग-निवासी के लिए चीनी।

वस्तुतः विश्व की बहुत-सी भाषाएँ मातृभाषा (वर्ग 'क') अथवा अन्य भाषा (वर्ग 'ग') के रूप में पढ़ाई जाती हैं, किंतु हिंदी अधिकांश तथाकथित हिंदी-भाषियों को मातृभाषा और अन्य भाषा के बीच की भाषा (वर्ग 'ख') के रूप में पढ़ाई जाती है। इसीलिए उसे पढ़ाते समय मिलनेवाली अशुद्धियाँ सर्वथा अलग प्रकार की होती हैं।

1.0. अशुद्धियाँ

किसी भाषा को सीखता व्यक्ति, जब उस भाषा का बोलने तथा लिखने में प्रयोग करता है, तो वह निम्नांकित प्रकार की अशुद्धियाँ करता है : (क) **ध्वनि-विषयक**—बोलने में **मूल स्वर** (औरत-ओरत), **मूल व्यंजन** (शहर-सहर), **स्वरा-नुक्रम** (पाउडर-पौडर), **व्यंजनानुक्रम** (बकता-बक्ता), **संयुक्त स्वर** (भैया-भइया) **संयुक्त व्यंजन** (भस्म-भसम, क़िस्म-क़िसिम), **अनुनासिकता** (दुनिया-दुनियाँ), **अक्षर-विभाजन** (आ-मद-नी : आम-द-नी), **बलाघात** (बाज़ार-बज़ार) तथा **अनुतान** की ग़लतियाँ होती हैं। (ख) **लेखनविषयक**—ये अशुद्धियाँ लिखने में होती हैं। इन्हें **लिपि** तथा **वर्तनी** की अशुद्धियाँ कहते हैं। इनका संबंध लिपिचिह्न तथा ध्वनि से होता है। (ग) **शब्द-रचनाविषयक**—जैसे वादाविवाद, कवित्री,

अतर्कथा, अंतर्साक्ष्य आदि। (ङ) **रूपरचना-विषयक**—जैसे 'मुझमें' के स्थान पर 'मेरे में' या 'किया' के स्थान पर 'करा' अथवा 'कीजिए' के स्थान पर 'करिए'। (च) **वाक्य-रचनाविषयक**—इसमें क्रम (कान ही पुर जाना है), अन्विति (लड़की ने लड़की को मारी) तथा सहप्रयोग (बंगाली बोलता है : बीड़ी खा लो) आदि कई प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं। (छ) **अर्थविषयक**—पंजाबी लोग हिंदी में बोलते हैं : 'रोटी सड़ गई।' हिंदी में 'सड़ना' का प्रयोग 'जलना' के अर्थ में न होकर 'पानी आदि में पड़कर गल जाना' के लिए होता है, अतः ऐसे प्रयोगों में अर्थविषयक अशुद्धि है। इसी में शब्द-प्रयोग और अर्थ की ऐसी ग़लतियाँ भी रखी जा सकती हैं : मैं सोते-सोते (लेटे-लेटे) सोच रहा था···। (ज) **प्रोक्ति-विषयक**—किसी प्रोक्ति के वाक्यों को ग़लत ढंग से रचना तथा ग़लत ढंग से जोड़ना। ये वाक्य-रचना के स्तर पर ठीक होते हैं, किंतु प्रोक्ति-रचना के स्तर पर ग़लत होते हैं। जैसे : 'बच्चा रोज़ शाम को स्कूल से आता है। बच्चा थोड़ी देर आराम करके खेलने चला जाता है। बच्चा फिर खाता है। बच्चा फिर पढ़ने बैठ जाता है।' होना चाहिए—'बच्चा रोज़ शाम को स्कूल से आता है, और थोड़ी देर आराम करके खेलने चला जाता है। लौटकर खाना खाता है तथा पढ़ने बैठ जाता है।'

आगे मातृभाषा तथा अन्य भाषा में होने वाली अशुद्धियों को अलग-अलग लिया जा रहा है। स्थानाभाव के कारण उपर्युक्त सभी प्रकारों को लेना यहाँ संभव नहीं है। उदाहरणस्वरूप इनमें से कुछ ही लिए जा सकेंगे।

1. 1. मातृभाषा में होने वाली अशुद्धियाँ

मातृभाषा में होने वाली अशुद्धियाँ मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं :

(1) **चूक** (lapse)—ये वे अशुद्धियाँ होती हैं, जिनको, अशुद्धि करने वाला, अशुद्धि रूप में जानता है, तथा बोलने या लिखने के बाद प्रायः उसे पता चल जाता है कि उसने अशुद्धि की है। इसे अंग्रेज़ी में ज़बान की चूक (slip of tongue), या 'क़लम की चूक' (slip of pen) तथा हिंदी में 'चमड़े की ज़बान है, फिसल गई' या 'क़लम चूक गई' रूप में अभिव्यक्ति देते हैं। असावधानी, घबराहट, जल्दी, उत्तेजना, अनिश्चय, परेशानी, चिंता की स्थिति, दुचित्तापन (divided attention) तथा थकावट आदि के कारण बोलने या लिखने में चूक हो जाती है।

'चूक' मुख्यतः उच्चारण की दृष्टि से होती है, किंतु शब्दों, रूपों या वाक्य आदि की दृष्टि से भी हो जाती है। यह चार-पाँच प्रकार की होती है : (क) **एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग** : जैसे हिंदी में 'चोर आया है' का 'ज़ोर आया है'। ऐसे ही कुछ सुशिक्षित लोग कभी-कभी 'प्रकट' को 'प्रगट' कह जाते हैं, किंतु उनसे पूछा जाए तो तुरंत बोल पड़ते हैं कि हाँ 'प्रकट' ही शुद्ध है, बोलने में अशुद्धि हो

गई। (ख) **स्थानांतरण** : जैसे आद्यशब्दांश विपर्यय (स्पूनरिज़्म) में : आपकी घड़ी में क्या बजा है—आपकी बड़ी में क्या घजा है। हिंदी बोलते समय, विशेषण का, कभी-कभी अपने स्थान से अलग प्रयोग सुनाई पड़ता है : 'और फटे-पुराने इस कपड़े को लेकर मैं करूँगा भी तो क्या?' होना चाहिए 'और इस फटे-पुराने कपड़े को लेकर मैं करूँगा भी तो क्या ?' ऐसे ही 'मैं कल भटकता रहा' के लिए 'मैं भटकता कल रहा।' (ग) **लोप** : किसी ध्वनि या शब्द आदि को छोड़ जाना। जैसे 'आततायी' के लिए' 'आतायी,' 'कठिनाई' का 'कठनाई,' 'कविता' के लिए 'कव्ता', 'निर्दलीय' का 'निद्दलीय' या 'ज्योत्स्ना' का 'ज्योस्ना' आदि। लोप शीघ्रता या शैथिल्य के कारण होता है। (घ) **आगम** : किसी अनपेक्षित ध्वनि या शब्द का व्यर्थ में प्रयोग कर जाना : 'कल श्याम को आना,' 'वे बहुत बड़े भारी आदमी हैं'। (ङ) **पुनरुक्ति दोष** (कृपया आने की कृपा करें) भी इसी में आता है। (च) **वाक्य की अटपटी रचना**—बड़े वाक्य बोलने या लिखने का प्रयास करने पर, यदि वाक्य-रचना का ठीक निर्वाह न हो सके तो इस प्रकार की चूक प्रायः हो जाती है।

वाक्यीय मिश्रण—मनोवैज्ञानिक स्तर पर क्या कहें और क्या न कहें के अनिश्चय की स्थिति में कभी-कभी वक्ता सब कुछ जानते हुए भी ग़लत बोल जाता है। जैसे 'तुमने यह जो···मेरा मतलब···तुम आख़िर ऐसा क्यों···या यों समझो कि तुम्हारी जगह मैं होता तो यह नहीं कहता।' इस वर्ग की अशुद्धियों को वाक्यीय मिश्रणजनित अशुद्धियाँ कहा जा सकता है। यों भाषिक धरातल पर यह अभिव्यक्ति भले ही ठीक न हो, किंतु मनोवैज्ञानिक धरातल पर ठीक है। अतः ऐसे प्रयोगों को अशुद्धि कहा भी जाए या नहीं यह विवाद का विषय हो सकता है। कुछ लोगों ने ऐसी अशुद्धियों को 'भूल' में, कुछ लोगों ने त्रुटि में रखा है। मैं अधिक से अधिक इन्हें 'चूक' में रखने के पक्ष में हूँ।

चूक के मुख्यतः मनोवैज्ञानिक कारण ही होते हैं। भाषा की चूकों पर सबसे पहले फ्रायड ने 1901 में गंभीरता से विचार किया, जो अँग्रेज़ी में Slips of the Tongue शीर्षक से Speech Error[1] as Linguistic Evidence नामक संकलन में (संपादक Formkin) संगृहीत है। उसके बाद वेल्स, कोहेन, हॉकिट, लेवर, मैकी, हिल आदि अनेक लोगों ने इस विषय पर विचार किया है। सामान्यतः 'चूक' को 'चुक' कहकर छोड़ दिया जाता है, किंतु इसके विश्लेषण तथा वर्गीकरण से भी 'बोलने,' 'लिखने,' 'ध्वनि-परिवर्तन' (विपर्यय मूलतः एक चूक ही होती है, बाद में व्यापक होकर चल पड़ती है : चाकू-काचू, अमरूद अरमूद) तथा 'मनोविज्ञान' आदि के बड़े उपयोगी तथ्य निकाले जा सकते हैं।

1. यहाँ Error का प्रयोग lapse या slip के लिए हुआ है, यद्यपि आज Error को lapse से सर्वथा भिन्न माना जाता है।

इस दृष्टि से फ्रॉम्किन की उपर्युक्त पुस्तक बहुत उपयोगी है। मातृभाषा उपर्युक्त (दे० इसी अध्याय में 0.1) में चाहे 'क' वर्ग की हो चाहे तथाकथित 'ख' वर्ग की, चूक दोनों में हो सकती है।

(2) भूल—हम देख चुके हैं, कि 'चूक' ऐसी अशुद्धि है, जिसका पता बोलने या लिखने वाले को होता है और बोलने या लिखने के बाद वह उसे स्वयं ठीक कर लेता है या कर सकता है। इसके विपरीत 'भूल ऐसी अशुद्धि को कहते हैं, जिसका पता भूल करनेवाले को नहीं होता, अतः वह बिना बताए उसे ठीक नहीं कर सकता। इसका आशय यह है कि भूल उसकी अपनी भाषिक व्यवस्था में अशुद्धि न होकर सही रूप में स्वीकृत होती है। मातृभाषा-शिक्षण में शिक्षार्थी का ध्यान इस वर्ग की अशुद्धियों की ओर दिलाना चाहिए, ताकि वह उनसे बचकर शुद्ध भाषा बोल और लिख सके। भूलें कई प्रकार की हो सकती हैं :

(क) **अज्ञानजनित**—अज्ञानजनित भूलें उच्चारण, लेखन, शब्द-रचना तथा रूप-रचना आदि की होती हैं। उदाहरण के लिए : (अ) **उच्चारण और लेखन**—जबरजस्त (शुद्ध ज़बरदस्त), विद्दार्थी (यह उच्चारण दिल्ली की नई पीढ़ी में बहुत अधिक सुनाई पड़ता है, किंतु लेखन में नहीं है; ऐसे ही विद्दालय, विश्व विद्दालय), व के स्थान पर ब (बिद्यार्थी, ब्यापार, ब्यवसाय) का उच्चारण भी अज्ञानजनित अशुद्धि ही है। शृंगार (शुद्ध रूप श्रृंगार), स्त्रोत (शुद्ध रूप स्रोत) केवल लेखन की अशुद्धि के उदाहरण हैं। (आ) **शब्द-रचना**—उज्वल (उत्+ज्वल=उज्ज्वल), कवित्री (कवयित्री), अनुग्रहीत (शुद्ध रूप अनुगृहीत), सन्यास (सम्+न्यास=संन्यास), वादाविवाद (वाद-विवाद), अत्याधिक (अत्यधिक), विंध्याचल पर्वत (विंध्याचल या विंध्य पर्वत) आदि। स्पष्ट ही इन अशुद्धियों का प्रभाव उच्चारण और लेखन दोनों पर पड़ता है। (इ) **रूप-रचना**—दरअसल में (दरअसल, असल में), दरम्यान में (दरम्यान, इसी दरम्यान वे आ गए) तेरे को (तुझे, तुझको), मेरे में (मुझमें)। (ई) **प्रयुक्ति**—भाषा में शब्दों का प्रयोग प्रयुक्ति (Register) के अनुसार बदलता है। सामान्य भाषा में 'पानी' और 'नमक' का प्रयोग ठीक है, किंतु रसायनशास्त्र में इन्हें क्रमशः 'जल' और 'लवण' ही कहना चाहिए। यदि उन्हें 'पानी' और 'नमक' कहें तो प्रयुक्ति की अशुद्धि है। प्रयुक्तियों की दृष्टि से शब्दों का ठीक ज्ञान न होने से इस वर्ग की अशुद्धियाँ हो जाती हैं। ऐसे ही पूजा में 'अक्षत' का प्रयोग होता है। यद्यपि वे 'चावल' होते हैं, किंतु उन्हें उस प्रसंग में 'चावल' नहीं कहा जा सकता। इस भूल में प्रायः पारिभाषिक शब्दों के ग़लत प्रयोग की अशुद्धि आती है।

(ख) **अतिशोधन** (Hypercorrection) **जनित**—अतिशोधन के चक्कर में भी भूल हो जाती है। 'शाप' का 'श्राप' या 'पण' का 'प्रण' रूप में विकास इसी का परिणाम है। हिंदी में 'कागज़' का 'क़ाग़ज़' 'फ़ौज' का 'फ़ौज़', 'लहजा' का 'लहज़ा' 'नमस्कार' का 'नमश्कार'; 'इच्छा' का 'इक्षा', 'प्रसाद' का 'प्रशाद' या

'स्वेच्छा' का 'स्वेक्षा', 'इच्छा' का 'इक्षा' रूप में उच्चारण या लेखन अतिशोधन की प्रवृत्ति के कारण ही होता है।

(ग) **अनिश्चयजनित**—कुछ प्रयोग ऐसे होते हैं कि लोग निश्चित रूप से नहीं जानते कि कौन-सा शुद्ध है, और कौन-सा अशुद्ध, अतः दोनों का ही प्रयोग करते हैं। कहीं एक का, तो कहीं दूसरे का। उदाहरण के लिए काफ़ी हिंदी-भाषी मुझको-मेरे को, हमको-हमारे को, तुमको-तुम्हारे को, तुझको-तेरे को उपर्युक्त-उपरोक्त, छठा-छठवाँ में भेद नहीं कर पाते। कहना न होगा कि इनमें पहले रूप शुद्ध हैं। इसी प्रकार सीता को रोटी बनानी है—सीता को रोटी बनाना है। इसमें भी हिंदी में पहला वाक्य ही शुद्ध है। यों उर्दू में दोनों शैलियाँ हैं। दिल्ली शैली में पहला वाक्य शुद्ध है तो लखनऊ शैली में दूसरा। वाक्य-स्तर पर कभी 'आप आइए' तो कभी 'आप आओ' या कभी 'आप चलिए' तो कभी 'आप चलो' की भी यही स्थिति है। पूर्ववर्ती वाक्य शुद्ध हैं। यहाँ शुद्ध का अर्थ, मानक रूप में स्वीकार्य तथा अशुद्ध का अर्थ मानक रूप में अस्वीकार्य है।

(3) **त्रुटि**—'त्रुटि' का सामान्य अर्थ तो 'कमी,' 'अपूर्णता', 'भूल', 'चूक' आदि है, किंतु इधर कुछ वर्षों से भाषा-शिक्षण में 'त्रुटि'[1] का प्रयोग भाषा के बोलने या लिखने में होनी वाली ऐसी अशुद्धियों के लिए होने लगा है, जो 'चूक' की तरह न तो असावधानी या जल्दी आदि के कारण हो जाती हैं, न भूल की तरह फुटकर रूप से अज्ञान (व्यवस्थाबद्ध या नियमित अज्ञान नहीं), अनिश्चय या अतिशोधन से जनित होती हैं, ये ऐसी अशुद्धियाँ होती हैं जो व्यवस्था-बद्ध और नियमित होती हैं। दूसरे शब्दों में **त्रुटि चूक और भूल से अलग उन व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियों को कहते हैं, जो दूसरी भाषा या बोली के व्याघात** (या व्यवधान), **नियमों-उपनियमों के अज्ञान, अतिसामान्यीकरण या अपवादों की जानकारी न होने तथा अन्य अनेक प्रकार की गड़बड़ियों के कारण बोलने तथा लिखने में हो जाती हैं।** चूक और भूल के कारण भाषा की व्यवस्था विषयक अशुद्धियाँ नहीं होतीं, किंतु त्रुटि के कारण व्यवस्थाविषयक अशुद्धियाँ होती हैं, इसी कारण चूक और भूल की तुलना में, इनको दूर करना कठिन होता है।

बच्चा जब मातृभाषा बोलना और सीखना शुरू करता है तो प्रारंभ में तो उससे त्रुटियाँ होती हैं, मुख्यतः अतिसामान्यीकरण तथा नियमों-उपनियमों के अज्ञान की, किंतु उम्र बड़ी होने पर तथा भाषा सीख लेने पर ये त्रुटियाँ प्रायः बहुत कम होती हैं। साथ ही यदि मातृभाषा सच्चे अर्थों में मातृभाषा है तो भाषिक व्याघात का भी प्रश्न नहीं उठता, अतः त्रुटियाँ होने की संभावना और भी कम हो जाती है। इसके विपरीत अन्य भाषा सीखते समय त्रुटियाँ

1. अँग्रेज़ी में ऐसी भूलों को error कहते हैं, error के लिए हिंदी में 'त्रुटि' शब्द चल निकला है।

बहुत अधिक होती हैं, जिनका कारण अतिसामान्यीकरण, नियमों-उपनियमों का अज्ञान तथा मातृभाषा द्वारा उपस्थित व्याघात होता है । अन्य भाषा-शिक्षण में 'त्रुटि' की स्थिति पर विचार आगे किया जाएगा, यहाँ मातृभाषा, मुख्यतः हिंदी के प्रसंग में उस पर विचार किया जा रहा है ।

ऊपर की बातों से स्पष्ट है कि सामान्यतः मातृभाषा में त्रुटियाँ नहीं होतीं, किंतु यदि व्यक्ति की मातृबोली (प्रथम भाषा) एक हो तथा मातृभाषा दूसरी हो, तो वह मातृबोली मातृभाषा सीखने में कुछ व्याघात उपस्थित करती है, अतः अन्य त्रुटियों के अतिरिक्त व्याघात से उत्पन्न कुछ त्रुटियाँ भी होती हैं। बड़े शहरों में रहनेवाले कुछ शिक्षित परिवारों की बात छोड़ दें, तो अधिकांश लोग, जिनकी मातृभाषा हिंदी है, प्रथम भाषा या मातृबोली के रूप में भोजपुरी, व्रज, अवधी, हरियाणी आदि बोलियाँ बोलते हैं, अत : हिंदी का मानक रूप सीखने में ये मातृबोलियाँ व्याघात उपस्थित करती हैं, और सीखने वालों से व्याघातजनित त्रुटियाँ उतनी नहीं होतीं जितनी रूसी या अँग्रेज़ जब हिंदी सीखता है तो उससे होती हैं। इसीलिए हिंदी वालों के लिए मैंने हिंदी की स्थिति बीच की (दे० इस अध्याय में 0.1) मानी है—मातृभाषा और अन्य भाषा के बीच की ।

हिंदी को मातृभाषा के रूप में सीखने वाले विभिन्न बोली-भाषियों (भोजपुरी, व्रज आदि के) से होने वाली त्रुटियाँ मुख्यतः निम्नांकित दो प्रकार की हैं :

(1) **भाषिक व्याघातजनित**—इसमें त्रुटियाँ निम्नांकित स्तरों पर होती हैं : (क) **ध्वनि**—हरियाणावाले स्वरों के मध्य में तथा शब्दांत में प्रायः 'ल' के स्थान पर 'ळ' बोलते हैं, अतः फल, साला, साली, काला आदि शब्दों को वे हिंदी बोलते समय भी प्रायः फळ, साळा, साळी, काळा बोल जाते हैं । ऐसे ही हिंदी की बोलियों में 'श' ध्वनि नहीं है, इसके स्थान पर 'स' है, अत : बोलियों के काफ़ी बोलनेवाले, मानक हिंदी बोलने में भी यह ग़लती करते हैं । वे सहर (शहर), भासा (भाषा), सायद (शायद), सोर (शोर) आदि बोलते हैं । इसी प्रकार जिन बोलियों में 'ण' नहीं है, तथा उसके स्थान पर 'न' है, उनके बोलने वाले 'ण' के स्थान पर 'न' बोलते हैं : प्रन, वीना, कन, प्रान आदि । पूर्वी प्रदेश की बोलियों में 'ह' के पूर्व का 'अ' हलके से 'ऍ' के रूप में उच्चरित नहीं होता, जबकि मानक हिंदी में होता है, अतः ये लोग शहर, नगर, वह, कहना, रहन-सहन का उच्चारण अपनी बोली के अनुसार ही करते हैं । 'क्ष' का आदिस्थान में 'छ' (क्षमा—छमा) तथा मध्य में 'च्छ' (शिक्षा—शिच्छा) हो जाना भी इसी वर्ग की अशुद्धि है। कुछ लोग 'श' का 'स' तथा 'ण' का 'न' या 'क्ष' का 'छ' को अक्षमता के कारण हुई गलती मानते हैं, किंतु तत्त्वतः यह अक्षमता इसीलिए है कि उनकी अपनी भाषा या बोली में ये ध्वनियाँ नहीं हैं । इस तरह यह अक्षमता भी 'व्याघात' से ही उत्पन्न है। (ख) **शब्द**—मानक हिंदी में प्रचलित शब्दों के

स्थान पर बोलियों में प्रचलित शब्दों के प्रयोग की ग़लतियाँ भी व्याघात के कारण बहुत मिलती हैं। उदाहरण के लिए भोजपुरी वाले 'दिखना' के स्थान पर 'लौकना', 'पागल' के स्थान पर 'बउरहा,' पुरुषों की 'चोटी' या 'चुटिया' के स्थान पर' चिरुकी', 'सीधा' के स्थान पर 'सोझ,' 'बैल' के स्थान पर 'बरध' या हरियाणी वाले 'ज़ेवर' या 'आभूषण' के स्थान पर 'टूम,' चींटी के लिए 'कीड़ी', 'चींटा' के लिए 'मकौड़ा,' 'गौरैया' के लिए 'चिड़िया,' 'चिड़िया' के लिए 'जनावर' और 'जानवर' के लिए 'डाँगर' आदि का प्रयोग कर जाते हैं। हिंदी की सभी बोलियों से इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं। (ग) **रूप**—हरियाणी वाले अपने मन्नै (मन्नै जाणा से—मुझे जाना है) के कारण हिंदी में 'मुझे' रूप के स्थान पर 'मैंने' का प्रयोग करते हैं। ऐसे ही 'राम को' के लिए 'राम ने' तो 'उसे' के लिए 'उसने' आदि। ब्रज तथा कुछ अन्य क्षेत्र वाले आज्ञा के रूप 'ना' न जोड़कर बहुत बार 'इयो' जोड़कर (तुम चलियो, तुम कल अइयो) बना लेते हैं, जो क्षेत्रीय बोलचाल का व्याघात है। (घ) **वाक्य**—वाक्य स्तर पर भोजपुरी, मगही, मैथिली वाले लिंग-अन्विति की अशुद्धि प्रायः कर जाते हैं। जैसे तकिया, कोट, रूमाल, गिलास, नीम, हाथी आदि का स्त्रीलिंग में प्रयोग और ऊन, गाजर, पैंट, दीमक आदि का पुल्लिग में प्रयोग। ऐसे ही हरियाणा वाले 'जाऊँ तो गा' (जाऊंगा तो) या 'कान ही पुर जाना है' (कानपुर ही जाना है) जैसे प्रयोगों में पदक्रम की अशुद्धि करते हैं। (ङ) **अर्थ**—अर्थ की दृष्टि से भी व्याघात होता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'चिड़िया' का अर्थ पक्षी है, किंतु हरियाणी में इसका अर्थ 'गौरैया' है, अतः हिंदी बोलने में भी हरियाणी-भाषी 'गौरैया' अर्थ में 'चिड़िया' का प्रयोग करते हैं। ऐसे ही 'सड़ना' का प्रयोग 'जलना' अर्थ में (रोटी सड़ गई) हरियाणा के काफी भागों में सुना जा सकता है। मानक हिंदी में 'बेटे के बेटे' को 'पोता' तथा 'लड़की के बेटे' को 'नाती' कहते हैं, किंतु ब्रज वाले 'पोता' अर्थ में भी 'नाती' का ही प्रयोग कर देते हैं, क्योंकि उनकी बोली में 'नाती' का प्रयोग दोनों के लिए होता है। खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा क्षेत्रवाले भाई के ससुर को भी मौसा कहते हैं, जबकि मानक हिंदी में 'मौसा' 'मौसी' (माँ की बहन) का पति ही है।

2. **अतिसामान्यीकरणजनित**—नियम जानकर, यदि व्यक्ति ऐसे अपवादों को न जाने, जहाँ वे नियम न लागू हों तो अतिसामान्यीकरणजनित त्रुटियाँ हो जाती हैं। बहुत-से हिंदी-भाषी हिंदी में भी ऐसी भूलें करते हैं। उदाहरण के लिए देखा, सुना, चला, पढ़ा आदि में 'आ' देखकर उसको अत्यंत सामान्य करते हुए बहुत-से लोग 'कर' से 'करा' बनाकर प्रयुक्त करते हैं; होना चाहिए 'किया'। ऐसे ही 'करी' न होकर 'की' होता है। चलिए, पढ़िए, आइए के सादृश्य पर 'करिए' तथा पढ़िएगा, आइएगा के सादृश्य पर 'करिएगा' भी ऐसी भी भूलें हैं। अच्छा-अच्छी, बड़ा-बड़ी, गहरा-गहरी के आधार पर अति-

सामान्यीकरण के रूप ताज़ा, ताज़ी, ज़िंदा-ज़िंदी, बेहूदा-बेहूदी (ताज़ी सब्ज़ी, लड़की ज़िंदी है, बेहूदी बात) में भी यही भूल है। मानक हिंदी में ताज़ा, ज़िंदा, बेहूदा आदि अपरिवर्तित रूप में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे ही बड़ी-बड़ा, हरी-हरा के आधार पर 'सुनहरी' से 'सुनहरा' (सुनहरा मौका) बनाना भी भूल है। यह शब्द 'सुनहरी' ही रहता है। भगवान्, विद्वान्, महान् आदि में हलंत देकर कुछ लोग विद्यमान में भी हल चिह्न लगाते हैं। बहुवचन में चँद्रबिंदु का प्रयोग (आएँ, पाएँ) देखकर बहुत-से लोग 'चाहिए' का बहुवचन 'चाहिएँ' ('मुझे बहुत-सी चीज़ें चाहिएँ') बना लेते हैं, जबकि यह दोनों वचनों में 'चाहिए' ही रहता है।

1.2. अन्य भाषा में होनेवाली अशुद्धियाँ

अन्य भाषा में मिलनेवाली अशुद्धियाँ भी तीन प्रकार की होती हैं :

1. चूक (lapse)

यहाँ भी 'चूक' वही है, जो पीछे मातृभाषा (दे० इसी अध्याय में 1.1) के प्रसंग में थी। अर्थात् यह अन्य या विदेशी भाषा के सीखने वालों द्वारा बोलने या लिखने में होने वाली ऐसी अशुद्धि है, जो असावधानी, परेशानी, घबराहट आदि के कारण हो जाती है, और जिसे अशुद्धि करनेवाला जानता है, कि अशुद्धि है, इसीलिए वह स्वयं उसे शुद्ध कर लेता है, या कर सकता है। जैसा कि पीछे मातृभाषा के प्रसंग में हम देख चुके हैं, चूक मुख्यत: एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग, स्थानांतरण, लोप तथा आगम आदि इन चार-पाँच प्रकारों की होती है।

2. भूल

अन्य भाषा सीखने में होनेवाली भूलें मुख्यतः अज्ञानजनित होती हैं। ये कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे : (क) **सहप्रयोग विषयक**—सबसे अधिक भूलें इसी वर्ग की होती हैं। उदाहरण के लिए हिंदी सीखनेवाले विदेशी, प्रायः भोजन खाना, खाना करना, नाश्ता खाना जैसे प्रयोग करते सुने जाते हैं, जबकि भोजन करना, खाना खाना, नाश्ता करना मानक हैं। यह ध्यान देने की बात है कि यह ग़लती व्याघात के कारण है तो त्रुटि में आएगी, अन्यथा भूल में। (ख) **समाज-सापेक्ष प्रयोग विषयक**—हर भाषा केवल आंतरिक संरचना के आधार पर ही नहीं, अपितु सामाजिक नियमों के आधार पर प्रयुक्त होती है। मान लीजिए, किसी चपरासी और किसी अध्यापक दोनों का नाम 'मोहन' है तो हिंदी का प्रकृत प्रयोग होगा : मोहन आया था—मोहन आए थे। इस बात से अनभिज्ञ विदेशी दोनों को 'आया था' या दोनों को 'आए थे' कर देते हैं। श्री, जी आदि कहाँ लगाएँ, कहाँ नहीं, यह भी समाज-सापेक्ष है। इस प्रकार की अशुद्धियाँ व्याघात के कारण हों तो उन्हें त्रुटि में स्थान देना चाहिए। कभी-कभी (ग) **अनिश्चयजनित भूलें** भी होती हैं। इनके उदाहरण अन्य भाषा के प्रसंग में भी वे

ही हो सकते हैं, जो मातृभाषा (दे० इसी अध्याय का 1.1) के प्रसंग में थे। (घ) **गणनीय-अगणनीय विषयक**—कुछ तो गणनीय-अगणनीय संज्ञाएँ सभी भाषाओं में होती हैं, किंतु कुछ भाषा-विशेष तक सीमित होती हैं। इसके अज्ञान से भी भूल हो जाती है। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ी में 'ब्रेड' अगणनीय है अतः 'अ ब्रेड' प्रयोग ग़लत है, इसके विपरीत 'लोफ़' गणनीय है अतः 'अ लोफ़' प्रयोग होना चाहिए। (ङ) **शैली तथा प्रयुक्तिविषयक**—इनका ज्ञान न होने से तकनीकी शब्दों या सामान्य प्रयोगों की भूलें हो जाती हैं। उदाहरण के लिए हिंदी सीखने-वाले एक जर्मन ने एक बार मेरे सामने कपड़े की दुकान पर पूछा, "महोदय, कृपया इस वस्त्र का मूल्य बताने का कष्ट करें।" स्पष्ट ही औपचारिक तथा संस्कृतनिष्ठ शैली का ग़लत जगह प्रयोग करने की भूल उसने की। सामाजिक दृष्टि से आदर-अनादर, शैली तथा प्रयुक्ति आदि की भूलों को कुछ लोगों ने 'भूल' में रखा है, किंतु कुछ अन्य लोगों ने त्रुटि में। मैं इन्हें यहीं रखना उचित समझता हूँ। ऐसे ही शब्दार्थविषयक भूलों को मैं व्यवस्थाबद्ध (जैसे मैं 'सोते-सोते' सोच रहा था, मुझे अपने देश पर 'घमंड' है) नहीं मानता, अतः उन्हें भी त्रुटि में न रखकर भूल में रखना मुझे उचित लगता है। वस्तुतः बहुत गहराई से देखें तो कई अशुद्धियाँ ऐसी भी मिलती हैं, जिनको 'भूल' में भी स्थान दे सकते हैं, तथा 'त्रुटि' में भी।

3. त्रुटि

'त्रुटि' के संबंध में, पीछे, मातृभाषा (दे० इस अध्याय का 1.1) में अशुद्धियों के प्रसंग में काफ़ी कुछ कहा जा चुका है। अन्य भाषा-शिक्षण के प्रसंग में 'त्रुटि' पर विचार करनेवालों का प्रारंभ में ख़्याल था कि 'त्रुटियाँ' केवल मातृभाषा के व्याघात के कारण ही होती हैं, किंतु बाद में यह देखा गया कि सिखाई जाने वाली भाषा की संरचना भी त्रुटियों के लिए ज़िम्मेदार हो सकती हैं। अन्य भाषा सीखनेवालों में पाई जानेवाली त्रुटियाँ मुख्यतः निम्नांकित कारणों से होती हैं :

(अ) **भाषिक व्याघात**—मातृभाषा तथा सीखी जाने वाली भाषा से पूर्व सीखी गई किसी अन्य भाषा के व्याघात के कारण काफ़ी त्रुटियाँ होती हैं। इन त्रुटियों को निम्नांकित वर्गों में रखा जा सकता है :

(1) **उच्चारण**—उच्चारण के स्तर पर होनेवाली त्रुटियाँ मुख्यतः निम्नांकित प्रकार की हो सकती हैं : (क) मातृभाषा और लक्ष्य भाषा में जो ध्वनियाँ पूर्णतः समान होती हैं, उनके उच्चारण में कोई ग़लती नहीं होती। जैसे अँग्रेज़ी-भाषी हिंदी सीखते समय न, म, ब, ग, स के उच्चारण में कोई अशुद्धि नहीं करता, किंतु मातृभाषा और लक्ष्य भाषा में मिलती-जुलती ध्वनियों के होने पर लक्ष्य भाषा के किसी स्वर या व्यंजन के स्थान पर मातृभाषा की ध्वनियाँ उच्च-रित करने की त्रुटि कर जाता है। उदाहरण के लिए हिंदी में अँग्रेज़ क, प, ट

के शब्द के आदि में बोलने में अशुद्धि करता है, क्योंकि ये ध्वनियाँ दोनों भाषाओं में समान नहीं हैं। वह प्रायः हिंदी शब्दों के आदि में अँग्रेज़ी की तरह ही क,प,ट को ईषत् महाप्राण (काला—खाला-सा, पान—फान-सा, टैंक—ठैंक-सा) बोलता है। ऐसे ही द, थ हिंदी में स्पर्श हैं, किंतु अँग्रेज़ी में संघर्षी हैं, अतः हिंदी-भाषी अँग्रेज़ी बोलने में इन्हें स्पर्श कर देता है, तो अँग्रेज़ी भाषी हिंदी बोलने में इन्हें संघर्षी कर देता है। हिंदी बोलते समय अँग्रेज़ कोट, जेल जैसे शब्दों को 'कोउट' 'जेइल' (उ, इ अत्यंत हलके, संयुक्त स्वर के द्वितीय सदस्य रूप में) बोल जाता है तो अँग्रेज़ी बोलते समय हिंदी-भाषी इन्हें कोट, जेल (संयुक्त स्वर के स्थान पर मूल स्वर) बोलने की अशुद्धि कर जाता है। (ख) यदि लक्ष्य भाषा में कोई ऐसी ध्वनि हो जो मातृभाषा में न हो तो उसे प्रायः मातृभाषा की निकटतम ध्वनि में परिवर्तित कर देते हैं। इसीलिए हिंदी महाप्राण को तमिल, कश्मीरी या पूरे यूरोप के लोग अल्पप्राण में बदल देते हैं : खाना-काना, घर-गर भारत-बारत आदि। अँग्रेज़ी में ज (जज), ज़ (रेज़र) तथा 'ज़' (प्लेज़र) तीन हैं, किंतु हिंदी में दो : ज, ज़, अतः हिंदी वाले 'ज़' को अपने बोलने में ज़ में बदल देते हैं, जैसे प्लेज़र, मेज़र आदि। (ग) संयुक्त व्यंजन और उनके आने की स्थिति भी सभी भाषाओं में समान नहीं होती। हिंदी में शब्द के आदि में स्पर्श नहीं है, अतः संस्कृत से आगत शब्दों में हिंदी वाले आदि में स्वर लाकर ऐसे संयुक्त व्यंजन को बीच में कर लेते हैं (स्नेह-इस्नेह, स्नान-अस्नान, इस्नान)। इसी प्रवृत्ति से अँग्रेज़ी में वे स्टूल (इस्टूल, अस्टूल), स्कूल, स्टेशन, स्प्रिंग आदि के भी प्रारंभ में कोई स्वर लाने की अशुद्धि कर जाते हैं। (घ) **बलाघात**—जिन भाषाओं में बलाघात प्रमुख नहीं होता, तथा नियमित होता है, उनके बोलनेवाले दूसरे प्रकार की भाषाओं को भी उसी रूप में बोलते हैं। हिंदी वाले अँग्रेज़ी, रूसी आदि सीखते समय ऐसा प्रायः कर जाते हैं। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ी Present को प्रायः सभी हिंदी वाले संज्ञा, विशेषण और क्रिया-रूप में एक-सा उच्चरित करते हैं, जबकि अँग्रेज़ी में क्रिया रूप में उच्चारण pre'sent होगा तो अन्य रूपों में pre'sent। (ङ) **अनुतान**—भाषाओं का अपना अलग अनुतान होता है। भाषा सीखने वाले मातृभाषा का अनुतान प्रायः लक्ष्य भाषा पर आरोपित करके बोलते हैं। यह बात, अँग्रेज़ को हिंदी बोलते समय तथा हिंदी-भाषी को अँग्रेज़ी बोलते समय देखी जा सकती है।

(2) **शब्द-रचना**—यदि भाषाएँ एक परिवार की हैं तथा दोनों में शब्दों, प्रत्ययों, उपसर्गों की एक सीमा तक समानता है तो भाषा सीखने वाला प्रायः मातृभाषा के नियमों के आधार पर लक्ष्य भाषा के शब्दों की रचना करने की अशुद्धि कर जाता है। उदाहरण के लिए हिंदी में स्त्रीलिंग प्रत्यय 'इन' है तो मराठी में 'ईण' है। बाघिन-बाघीण, सोनारिन-सोनारीण, धोबिन-धोबीण, तेली-तेलीण। हिंदी सीखनेवाला मराठी भाषी प्रायः हिंदी में उपर्युक्त शब्दों

में 'इन' के स्थान पर 'ईण' का तथा हिंदीवाला मराठी में 'ईण' के स्थान पर 'इन' का प्रयोग कर जाता है। ऐसे ही हिंदी में कृपा के साथ प्रायः 'आलु' प्रत्यय लगाकर 'कृपालु' बनाते हैं, किंतु मराठी में 'वंत'—'कृपावंत'—भी चलता है। बहुत-से मराठी-भाषी हिंदी 'कृपालु' के स्थान पर 'कृपावंत' का प्रयोग यह जानकर कर जाते हैं कि हिंदी में कृपा भी चलता है, और वंत (कलावंत) भी अतः मराठी की तरह ही 'कृपावंत' भी होगा।

(3) **रूप-रचना**—पंजाबी में कर्म-संप्रदान में 'नूँ' कारक-चिह्न का प्रयोग करते हैं, जबकि हिंदी 'ए'(मुझे, उसे) 'एँ' (उन्हें, तुम्हें) तथा 'को' (मुझको, उसको) का पंजाबी-भाषी इसी आधार पर 'ए', 'एँ', 'को' के स्थान पर 'नूँ' के समीप 'ने' को पाकर उसी का प्रयोग करने (जैसे मुझे या मुझको के स्थान पर 'मैंने') की ग़लती हिंदी बोलने तथा लिखने में कर जाते हैं : मैंने/उसने/तुमने जाना है। ऐसे ही हिंदी में प्रथम प्रेरणार्थक के रूप प्रायः 'आ' (पिलाना) तथा द्वितीय प्रेरणार्थक के 'वा' (पिलवाना) लगाकर बनाए जाते हैं, किंतु पंजाबी में आउ (पिलाउणा) एवं वाउ (पिलवाउणा) लगाकर बनते हैं। पंजाबी-भाषी अपनी भाषा से प्रभावित होकर हिंदी में भी 'पिलाउना' एवं 'पिलवाउना' जैसे रूपों का प्रयोग कर जाता है।

(4) **शब्द-प्रयोग**—इसमें कई प्रकार की त्रुटियाँ संभावित हैं। उदाहरणार्थ : (क) शब्द-भंडार के मिलते-जुलते होने पर, लक्ष्य भाषा में मातृभाषा के शब्द का प्रयोग, जैसे बंगाली में हिंदी 'निमित्त' एवं 'कारण' के स्थान पर 'निमित्ते' और 'कारणे' प्रयुक्त होते हैं। बंगाली-भाषी हिंदी में भी मातृभाषा व्याघात के कारण 'निमित्ते' और 'कारणे' का प्रयोग कर जाता है। ऐसे ही मराठी वाले हिंदी में 'सास' के स्थान पर 'सासू' का प्रयोग करने की अशुद्धि कर जाते हैं, जो उनकी भाषा का प्रभाव है। (ख) पंजाबी अपनी भाषा में 'जलना' के अर्थ में 'सड़ना' का प्रयोग करते हैं। इसी आधार पर वे हिंदी बोलने में भी 'रोटी सड़ गई' कहते हैं 'जल गई' नहीं। (ग) लक्ष्य भाषा के पर्याय-भेद से परिचित न होने के कारण मातृभाषा की तरह एक ही शब्द का कई अर्थों में प्रयोग करना भी एक प्रकार की त्रुटि है। जैसे हिंदी में 'बर्फ़' खाते भी हैं 'बर्फ़ गिरती भी है'। इसी आधार पर अँग्रेज़ी सीखते समय हिंदी का व्यक्ति snow और ice दोनों के स्थान पर, एक का ही प्रयोग करने की अशुद्धि कर जाता है। ऐसे ही अँग्रेज़ी see और look में भी हिंदी में एक ही शब्द 'देखना' के कारण गड़बड़ी हो जाती है।

(5) **वाक्य**—वाक्य में मातृभाषा के व्याघात के कारण कई प्रकार की त्रुटियाँ हो जाती हैं। उदाहरणार्थ : (क) **पदक्रम**—पदक्रम की त्रुटि वहीं होगी, जहाँ मातृभाषा और लक्ष्य भाषा में पदक्रम का अंतर होगा। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी में यदि उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष तीनों का प्रयोग हो तो अन्य पुरुष सबसे पहले, उसके बाद मध्यम पुरुष और फिर उत्तम पुरुष का प्रयोग करते हैं :

He, you and I will go. हिंदी में इस तरह का क्रम नहीं है, अतः हिंदीवाले इसे किसी भी मनमाने क्रम से रख देते हैं : I, he and you will go. (ख) **अन्वय**—उदाहरण के लिए बंगाली में क्रिया में लिंग की अन्विति नहीं होती : राम चला—राम चलिल, सीता चली—सीता चलिल। इसका प्रभाव यह हुआ है कि बंगाली हिंदी सीखते समय प्रायः राम चला, सीता चला या राम चली, सीता चली जैसे प्रयोग कर जाते हैं। (ग) **काल**—काल की दृष्टि से भी व्याघात होता है। अँग्रेज़ हिंदी बोलने में He is sitting on the chair. के लिए वह कुर्सी पर बैठ रहा है, प्रयुक्त करने की त्रुटि कर बैठता है। वस्तुतः ऐसे वाक्यों में अँग्रेज़ी के सातत्य वर्तमान के स्थान पर हिंदी में पूर्ण वर्तमान का प्रयोग होता है : Ram is sitting on the chair = राम कुर्सी पर बैठा है। (घ) **सहप्रयोग**—हर भाषा में संज्ञा + क्रिया, विशेषण + संज्ञा का सहप्रयोग समान नहीं होता। उदाहरण के लिए हिंदी में 'इम्तहान देना' तो अँग्रेज़ी में to take exam इस अंतर से अपरिचित अंग्रेज़ हिंदी में अँग्रेज़ी के आधार पर 'इम्तहान लेना' बोल जाता है तो हिंदी भाषी अँग्रेज़ी बोलने में 'to give exam. ऐसे ही पंजाबी अपनी भाषा के आधार पर हिंदी में 'बुरा मानना' को 'बुरा मनाना' कहता है। हिंदी में प्रयोग है सुंदर लड़का—सुंदर लड़की पर अँग्रेज़ी में handsome boy तथा beautiful girl. हिंदी भाषी अँग्रेज़ी में हिंदी में एक ही 'सुंदर' के दोनों जगह प्रयुक्त होने के आधार पर handsome girl या beautiful boy बोलने में भी यही ग़लती करते हैं। ऐसे ही अँग्रेज़ी में है : to make bed बिस्तर बिछाना। बहुत से ईसाइयों को मैंने हिंदी में 'बिस्तर बनाना' का प्रयोग करते सुना है, जो अँग्रेज़ी का व्याघात है। लैंप जलाना—to light the lamp, पार्टी देना—to throw a party, गोल करना—to score a goal आदि में अंतर भी इसी प्रकार गलती का कारण बनता है। ऐसे ही 'गंदला' हिंदी में पानी के साथ ही आता है, गंदा या dirty की तरह सब के साथ नहीं। 'बनैला' भी सूअर के साथ ही आता है, अन्यथा 'जंगली' आता है।

(6) **मुहावरे**—मुहावरों के प्रयोग में मातृभाषा व्याघात उपस्थित करती है। हिंदी में मुहावरा है 'घी के दिये जलाना'। इस अर्थ में मराठी में मुहावरा है, अत्तराचे दिवे जाळाणें। इस आधार पर मराठी भाषी हिंदी में भी 'इत्र के दिये जलाना' मुहावरे का प्रयोग करने की त्रुटि कर जाते हैं। ऐसे ही 'मूसलाधार वृष्टि होना' के लिए हिंदी में अँग्रेज़ीवाला 'बिल्ली और कुत्ते बरसना' (to rain cats and dogs) या मराठीवाला 'आकाश में सेंध लगना' (आभाळास भोंक पडणे) मुहावरे का प्रयोग कर सकता है।

(7) **लोकोक्ति**—ऐसे ही असमी-भाषियों की हिंदी में 'आँख का अंधा नाम नयनसुख' के स्थान पर 'आँख का फूटा नाम है पद्मलोचन' (असमी—चकुटो

फुटा नाम छे पद्मलोचन), कश्मीरी-भाषियों की हिंदी में 'गधा क्या जाने अदरक का स्वाद' के स्थान पर 'गधा क्या जाने केसर का स्वाद' (कश्मीरी—खर क्याह जानि जएफ़रानुक स्वाद), एवं गुजराती-भाषियों की हिंदी में 'कानी के ब्याह में सौ-सौ जोखिम' के स्थान पर 'नकटी की लग्न में सोलह सौ विघ्न' (गुजराती – नंकटी वां लगनमां सोलसै बघन) के प्रयोग की त्रुटि मिल जाती है।

(8) **सामाजिक अर्थ की भूलें**—यदि किसी की मातृभाषा में उस प्रकार के सामाजिक अर्थ न हों, जैसे लक्ष्य भाषा में हैं तो मातृभाषा के प्रभाव से वह प्रायः सामाजिक अर्थ की भूलें करता है। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ my father is coming के आधार पर 'मेरा बाप आ रहा है, या my faller will go के आधार पर 'मेरा पिता जाएगा' जैसे अशुद्ध प्रयोग कर जाता है। 'भूल' में भी ऐसे उदाहरण दिए गए हैं। वस्तुतः ऐसी अशुद्धि अपनी भाषा के व्याघात के कारण हो रही हो, तो उसे यहाँ स्थान दिया जाना चाहिए।

(9) **नियमों-उपनियमों का अज्ञान या अधूरा ज्ञान**—लक्ष्य भाषा के नियमों-उपनियमों का पूरा ज्ञान न होने से भी भूलें होती हैं। उदाहरण के लिए 'ने' का प्रयोग अपवादों को छोड़कर सकर्मक क्रिया के साथ ही होता है। इस नियम से अपरिचित व्यक्ति 'राम ने खाया', 'राम ने पढ़ा,' जैसे प्रयोगों को देखकर 'राम ने रोया', 'राम ने गाया', 'राम ने दौड़ा' जैसे प्रयोग करने की भूल कर बैठता है। नियमों का पूरा ज्ञान हो जाने पर इस तरह की भूलें नहीं होतीं। ऐसे ही हिंदी भाषा सीखनेवाला, यह नियम तो जानता हो कि सकर्मक क्रिया के पूर्ण कृदंत के साथ 'ने' आता है, किंतु यह उपनियम न जानता हो कि ऐसी स्थिति में क्रिया कर्म के अनुसार होती है, तो 'राम रोटी खाता है' का भूतकाल 'राम ने रोटी खाया'; 'सीता आम खाती है' का भूतकाल 'सीता ने आम खाई' बना जाता है। ऐसे ही यह बता देने पर कि 'ने' के आने और 'कर्म' के होने पर क्रिया कर्म का अनुसरण करती है, हिंदी भाषा सीखनेवाला 'विद्यार्थी ने पुस्तक पढ़ी' का प्रयोग करता है, किंतु इसके साथ ही 'विद्यार्थी ने पुस्तक को पढ़ी' का भी उसी के समान मानकर प्रयोग करता है, क्योंकि उसे इस उप-नियम का पता नहीं होता कि कर्त्ता के साथ 'ने' आने पर यदि कर्म के साथ 'को' आ जाए तो क्रिया सर्वदा ही एकवचन पुल्लिंग होती है। (विद्यार्थी ने पुस्तक को पढ़ा)।

(10) **नियमों-उपनियमों का अधूरा प्रयोग**—इससे भी त्रुटि हो जाती है। उदाहरण के लिए हिंदी में निषेधात्मक वाक्य बनाने के लिए 'नहीं' जोड़ते हैं, किंतु साथ ही यदि सामान्य वर्तमान (राम जाता है) या सातत्य वर्तमान (राम जा रहा है) हो तो कालद्योतक क्रिया का लोप कर देते हैं (राम नहीं जाता, राम नहीं जा रहा)। ऐसे ही हिंदी रंजक क्रियाओं (जाना, देना, लेना, बैठना,

आदि) का भी लोप हो जाता है—राम गिर पड़ा, राम नहीं गिरा; मोहन भाग गया, मोहन नहीं भागा; सीता बोल उठी, सीता नहीं बोली। हिंदी सीखनेवाला, नियम-उपनियम जानते हुए भी उन्हें पूरी तरह आत्मसात न करने के कारण लिखते या बोलते समय उनका अधूरा प्रयोग करे तो त्रुटियों का होना स्वाभाविक है।

वस्तुत: 'आ' और 'इ' संबद्ध हैं। पहले में ज्ञान नहीं है, दूसरे में ज्ञान है किंतु पूरा प्रयोग करने का अभ्यास नहीं है। यह ध्यान देने की बात है कि व्याकरण के नियम जान लेना ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें आत्मसात् करना भी आवश्यक है, नहीं तो प्रयोग के समय नियमसम्मत वाक्य बनाना कठिन हो जाता है। रूप (घोड़ा पर चढ़ा), परसर्ग (राम को पूछो), वाक्य (कान हो पुर गया है) आदि की विभिन्न प्रकार की त्रुटियाँ भी इन्हीं में आती हैं।

(11) **अपवादों का अज्ञान** अथवा **अतिसामान्यीकरण** (overgeneralaization)—कभी-कभी सामान्य नियम तो ज्ञात होते हैं, किंतु अपवादों का पता नहीं होता, अत: भाषा सीखने वाला सादृश्य के आधार पर अतिसामान्यीकरण की त्रुटि कर बैठता है। उदाहरण के लिए हिंदी सीखनेवाले विदेशी चला, पढ़ा, लिखा के आधार पर 'कर' से 'करा' (शुद्ध रूप किया) ; चलिए, पढ़िए, लिखिए, आदि के आधार पर 'कर' से 'करिए' (शुद्ध रूप कीजिए), 'पी' से 'पीइए' (शुद्ध रूप पीजिए), तथा 'ले' 'दे' से 'लेइए' 'देइए'(शुद्ध रूप लीजिए, दीजिए); बेटे, बच्चे के आधार पर पिता से पिते; छोटा-छोटी-छोटे, बड़ा-बड़ी-बड़े के आधार पर ताज़ा-ताज़ी-ताज़े, ज़िंदा-ज़िंदी-ज़िंदे जैसे रूपों का प्रयोग कर जाते हैं। ऐसे ही 'ने' का प्रयोग सकर्मक क्रिया के पूर्ण कृदंत के साथ होता है किंतु 'बोल' आदि कुछ अपवाद हैं। इससे अपरिचित व्यक्ति 'उसने कहा' के आधार पर 'उसने बोला' का प्रयोग करने की त्रुटि कर बैठता है, जबकि शुद्ध वाक्य 'वह बोला' है। अनेक भाषाओं में कुछ अपवाद शब्दों का दोनों वचनों में एक ही रूप होता है, जैसे अंग्रेज़ी में sheep, deer, cod आदि। इसका ज्ञान न होने पर लोग sheeps, deers, cods जैसे प्रयोग कर जाते हैं। ऐसे ही कुछ अपवाद शब्दों के वचन बदलने पर अर्थ बदल जाते हैं। iron=लोहा, irons—ज़ंजीर wood=लकड़ी, woods=जंगल। इससे अपरिचित व्यक्ति लोहे के लिए irons या 'लकड़ियाँ' के लिए woods, का प्रयोग करने की त्रुटि कर जाता है। कुछ भाषाओं में कुछ शब्दों का प्रयोग बहुवचन में ही होता है। जैसे हिंदी में 'दर्शन' (उनके दर्शन हुए) 'हस्ताक्षर' (उनके हस्ताक्षर हो गए)। इससे अपरिचित व्यक्ति 'उनका दर्शन हुआ, या 'उनका हस्ताक्षर हो गया' जैसे अशुद्ध प्रयोग करता है।

(12) **भ्रांत धारणा**—कभी-कभी भाषा सीखनेवाले के मन में कुछ भ्रांत धारणाएँ भी बैठ जाती हैं, जो त्रुटियों का कारण बनती हैं। उदाहरण के लिए

हिंदी में यह जानने पर कि 'था' भूतकाल के लिए आता है, प्रारंभ में छात्र 'वह गया' के स्थान पर 'वह गया था' का प्रयोग कर जाते हैं। ऐसे ही यह बताए जाने पर कि हिंदी में आदर के लिए एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होता है, भाषा सीखने वाला 'वह' का बहुवचन 'वे' तथा 'वे लोग' जानकर प्रयोग कर देता है—जो सज्जन कल आए थे, वे लोग आज भी आ रहे हैं।

अशुद्धियों के उपर्युक्त तीन प्रकारों में भूल और त्रुटि तो क्षमता (competence) या भाषा (lange) से संबंधित हैं। इनका ग़लत रूप ही भूल और त्रुटि का कारण होता है। भूल और त्रुटि का प्रयोग, प्रयोक्ता शुद्ध समझकर करता है; दूसरी ओर 'चूक का संबंध—निष्पादन (performance) या वाक् (parole) से हैं। चूक को वह जानता है कि यह अशुद्धि है, और असावधानी में वैसा प्रयोग कर जाता है।

(13) **अशुद्धि-विश्लेषण का उद्देश्य**—अशुद्धि-विश्लेषण में, जैसा कि हमने देखा चूक-विश्लेषण, भूल-विश्लेषण तथा त्रुटि-विश्लेषण ये तीन चीज़ें आती हैं। जहाँ तक 'चूकों' का संबंध है, उनके संकलन, विश्लेषण और वर्गीकरण के आधार पर उन चूकों को समझाकर चूक करने वाले को सावधान किया जा सकता है, ताकि भविष्य में उससे चूकें न हों, या कम हों। शेष दो के संकलन, विश्लेषण और वर्गीकरण का उद्देश्य यह होता है कि निष्कर्षों के आधार पर ये चार बातें जानी जा सकें—(क) सीखी जानेवाली भाषा की कौन-कौन-सी बातें भाषा सीखनेवाले ने अच्छी तरह आत्मसात् कर ली हैं ? (ख) उसने क्या-क्या अच्छी तरह ग्रहण नहीं किया है ? (ग) उसने क्या-क्या ग़लत ग्रहण किया है (व्याघात, अतिसामान्यीकरण या नियमों-उपनियमों आदि की अधूरी जानकारी के कारण) ? (घ) क्या-क्या उसने अभी बिल्कुल भी नहीं ग्रहण किया है ? इनको जान लेने पर : (अ) अध्यापक अपने पढ़ाने की पद्धति को आलोचक की दृष्टि से देख सकता है कि उसे बदलने की आवश्यकता तो नहीं है ? (आ) आगे का कार्यक्रम बना सकता है कि आगे कौन-कौन से शिक्षण-बिंदु किस क्रम से लिए जाएँ ? (इ) किन बिंदुओं को पढ़ाने के लिए कैसी पाठ-सामग्री तथा अभ्यास-सामग्री बनाई जाए ? तथा (ई) अभिरचना-अभ्यास को नई सूचनाओं के आधार पर कैसे पुनर्योजित किया जाए कि भाषा सीखनेवाला जो कम जानता है, उसे पूरा जान जाए, जो गलत जानता है, उसे शुद्ध जान जाए, तथा जिसे नहीं जानता है, उसे जान जाए—पूरी और अच्छी तरह। इस तरह अशुद्धि-विश्लेषण अध्यापक, पाठन-पद्धति, पाठ-सामग्री तथा अभ्यास-सामग्री सभी का ठीक दिशानिर्देश करता है, जिससे कम समय और कम श्रम से भाषा सिखाने की दिशा में अच्छे परिणाम निकाले जा सकते हैं।

वस्तुतः अशुद्धि (मुख्यतः भूल और त्रुटि)-विश्लेषण की प्रक्रिया तब तक

चलती रहनी चाहिए, जब तक कि भाषा सीखनेवाला उसे अच्छी तरह सीख न जाए। बिना उसके हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं है कि भाषा का क्या कुछ सीख लिया गया है, और क्या कुछ सीखना बाक़ी है।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अशुद्धि तो व्यक्ति करता है, किंतु हम प्रायः वर्ग को पढ़ाते हैं। इस दृष्टि से अच्छा यह हो कि किसी भाषा को सिखाने के लिए एक मातृभाषियों का एक वर्ग हो। कई मातृभाषियों को मिलाकर एक वर्ग नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि सबकी त्रुटियाँ अलग-अलग व्याघातों के कारण अलग-अलग होंगी।

5. अंतरभाषा (Interlanguage)

जब भी कोई व्यक्ति कोई अन्य भाषा सीखता है, तो सीखने की प्रक्रिया के दौरान उसके मन में सीखी जानेवाली भाषा का एक रूप बन जाता है। यह रूप न तो पूर्णतः उसकी अपनी मातृभाषा का होता है, जो अपने नियमों को प्रक्षेपित कर व्याघात उपस्थित करती है, और न पूर्णतः लक्ष्य भाषा का बल्कि दोनों के बीच का होता है। इसीलिए सेलिंकर (B. F. Selinker, 1969 में प्रकाशित अपने Language Transfer शीर्षक एक लेख में) ने इसे 'इंटरलेंग्विज' कहा है। पिट कॉर्डर (S. Pit Corder) ने इसे 'एककालिक व्यक्तिबोली' (Idiosynchratic Dialect) कहा है, क्योंकि भाषा सीखनेवाले के मन में यह केवल एक विशिष्ट काल में ही होती है। ज्यों-ज्यों वह लक्ष्य भाषा के नये-नये नियमों तथा अपवादों को हृदयंगम करता जाता है, उसकी यह 'अंतरभाषा' बदलती जाती है। अर्थात् उसका नया-नया रूप उसके मन में बैठता जाता है, जिसमें रोज़ मातृभाषा का प्रभाव कम होता जाता है, अतिसामान्यीकरण या नियमों-उपनियमों के अज्ञान से होनेवाली अशुद्धियाँ भी कम होती जाती हैं, तथा लक्ष्य भाषा का अंश बढ़ता जाता है। इसीलिए इसे संक्रांतिभाषा (Transitional Language) भी कहा गया है। यह ध्यान देने की बात है कि प्रारंभ में यह अंतरभाषा अपने स्वरूप में मातृभाषा से बहुत अधिक प्रभावित तथा विभिन्न कारणों से होने वाली भूलों और त्रुटियों से युक्त होती है, किंतु धीरे-धीरे प्रभाव कम होता जाता है तथा भूलें और त्रुटियाँ भी कम होती जाती हैं, तथा 'अंतरभाषा' लक्ष्य भाषा के समीप पहुँचती जाती है। अंत में जब वह व्यक्ति लक्ष्य भाषा को पूरी तरह सीख लेता है, मातृभाषा का प्रभाव तथा अन्य भूलें और त्रुटियाँ पूर्ण समाप्त हो जाती हैं तो 'अंतरभाषा' लक्ष्य भाषा में विलीन हो जाती है, या लक्ष्य भाषा की अलग की सत्ता समाप्त हो जाती है। निम्नांकित पाँच आरेखों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी :
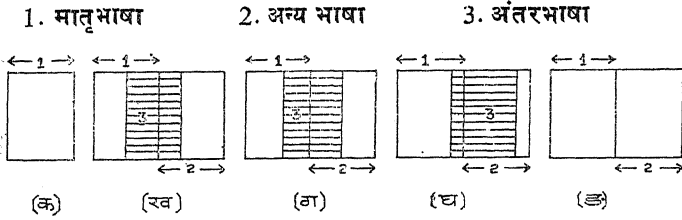
इस आरेख में 'क' स्थिति में व्यक्ति के अंतस् में केवल मातृभाषा है । 'ख' स्थिति में उसने अन्य भाषा सीखनी शुरू कर दी है। यहाँ ← 1 → मातृभाषा है, ← 2 → अन्य भाषा है, तथा पड़ी रेखाओं से चिह्नित अंश अंतरभाषा है, जिसमें कुछ अंश मातृभाषा का है, कुछ अंश सीखनेवाले से होनेवाली भूलों और अन्य त्रुटियों का है तथा कुछ अंश सीखी जानेवाली अन्य भाषा का। अन्य भाषा का जो अंश है, वह यह दिखा रहा है कि अन्य भाषा का उतना अंश उसने ठीक सीख लिया है, किंतु अंतरभाषा का जो अन्य अंश है, वह मातृभाषा के व्याघात के प्रभावस्वरूप होनेवाली त्रुटियों, अन्य त्रुटियों तथा भूलों का समूह है। 'ख' स्थिति में उस अन्य भाषा के नाम पर व्यक्ति यह अंतरभाषा ही जानता है। 'ग' में अंतरभाषा में मातृभाषा का प्रभाव तथा अन्य त्रुटियाँ और भूलें कम हो गई हैं, तथा अन्य भाषा का अंश ज़्यादा हो गया है। 'घ' में मातृभाषा का प्रभाव तथा अन्य त्रुटियाँ और भूलें बहुत ही कम हो गई हैं, एवं अंतरभाषा में अन्य भाषा का अंश बहुत बढ़ गया है।। 'ङ' तक आते-आते अंतरभाषा पूरी तरह अन्य भाषा बन गई है, व्यक्ति की मातृभाषा का प्रभाव उसके द्वारा सीखी जाने वाली अन्य भाषा पर बिलकुल नहीं रह गया है, अन्य त्रुटियाँ तथा भूलें भी समाप्त हो गई हैं और वह व्यक्ति अन्य भाषा पूरी तरह सीख गया है।

अंत में अंतरभाषा की कुछ मुख्य विशेषताओं का संकेत किया जा सकता है : (1) अंतरभाषा मातृभाषा से इतर कोई भाषा सीखने वाले के अंतस् में स्थित एक भाषा होती है। (2) इसकी अपनी व्यवस्था होती है, जो मातृभाषा और लक्ष्य भाषा की व्यवस्थाओं के मिश्रण, तथा सीखने वाले के मन में घर की हुई अन्य त्रुटियों और भूलों से युक्त होती है। उल्लेख्य है कि अंतरभाषा में प्राय: विद्वानों ने, त्रुटि, को ही स्थान दिया है। मेरे विचार में यह किसी भी काल में, उस समय तक जानी गई अन्य भाषा तथा उस समय तक होने वाली भूलों और त्रुटियों का योग होती है। साथ ही सीखी जाने वाली भाषा से पूर्व सीखी गई अन्य भाषा के तत्त्व भी इसमें हो सकते हैं। (3) सामाजिक दृष्टि से यह यथार्थ भाषा नहीं होती, किंतु जिसके मन में यह स्थित होती है, उसकी वैयक्तिक दृष्टि से, या उसके लिए, यह यथार्थ भाषा होती है। (4) यह भाषा परिवर्तनशील होती है। जैसे-जैसे व्यक्ति लक्ष्य भाषा को हृदयंगम करता जाता है, उसके मन में स्थित

अंतरभाषा परिवर्तित होती जाती है। (5) यह परिवर्तन मातृभाषा एवं अन्य भाषा(ओं) का प्रभाव तथा अन्य प्रकार की त्रुटियों और भूलों के कम होने, तथा लक्ष्यभाषा के नियमों के ठीक रूप में अधिकाधिक ग्रहण किए जाते रहने की दिशा में होता है। (6) अंतरभाषा का जन्म लक्ष्य भाषा सीखने की शुरूआत के साथ ही हो जाता है और यह भाषा परिवर्तित होती हुई, तब तक भाषा सीखनेवाले के अंतस् में स्थित रहती है, जब तक वह लक्ष्य भाषा को पूरी तरह सीख नहीं लेता। पूरी तरह सीखते ही अंतरभाषा की सत्ता समाप्त हो जाती है। (7) यों अंतरभाषा की सत्ता समाप्त होने की यह स्थिति एक कल्पना ही है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति अपवाद ही हो सकते हैं जो द्वितीय या विदेशी भाषा को पूर्णतः मातृ-भाषा के रूप में ग्रहण कर लें। इसका अर्थ यह है कि सामान्यतः किसी भी अन्य भाषा सीखनेवाले के अंतस् में इस अंतरभाषा की सत्ता ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-प्रयोग की दृष्टि से किसी-न-किसी रूप में बनी अवश्य रहती है। (8) भाषा सीखनेवाला जो भी भूलें और त्रुटियाँ करता है, वे लक्ष्य भाषा की दृष्टि से तो भूलें और त्रुटियाँ होती हैं, किंतु इस अंतरभाषा की व्यवस्था की दृष्टि से वे अशुद्धि नहीं होतीं। वे इसकी व्यवस्था और इसके नियमों के अनुसार 'शुद्ध प्रयोग' संज्ञा की अधिकारिणी होती हैं। (9) एक मातृभाषा वाले यदि दो या अधिक व्यक्ति कोईएक लक्ष्य भाषा सीखें तो उन सभी के 'अंतस्'की अंतरभाषा एक समय में पूर्णतः एक तो नहीं होती, क्योंकि हर एक की भाषा सीखने की क्षमता एक नहीं होती, किंतु मोटे रूप से हर एक की अंतरभाषा लगभग एक ही प्रकार के विकासक्रम से गुज़रती है। (10) किसी भाषा-भाषी समाज द्वारा जाने-अनजाने स्वीकृति मिलने पर, अंतरभाषा सच्चे अर्थों में भाषा बन जाती है। हिंदी भाषा के 'फ़िज़ी हिंदी,' 'कलकतिया हिंदी,' 'बंबइया हिंदी'' 'मारिशस की हिंदी' आदि रूप इस अर्थ में अलग-अलग भाषाएँ या हिंदी भाषा की अलग-अलग बोलियाँ हैं। अँग्रेज़ी की दक्षिण भारतीय अँग्रेज़ी, पंजाबी अँग्रेज़ी तथा हिंदी प्रदेशीय अँग्रेज़ी आदि की भी यही स्थिति है।

पुनश्च—प्रायः विद्वानों ने अंतरभाषा को एक ऐसी व्यवस्थावाली भाषा कहा है, जिसमें लक्ष्य भाषा के सीखनेवाले द्वारा आत्मसातित तत्त्वों तथा उस समय तक उससे होनेवाली उन त्रुटियों का योग होता है जो मातृभाषा के व्याघात, अतिसामान्यीकरण तथा नियमों-उपनियमों आदि के अज्ञान से जनित होती हैं। मेरी व्यक्तिगत राय दो बातों में भिन्न है : (क) एक तो यह कि कोई आवश्यक नहीं कि केवल मातृभाषा द्वारा लाया गया व्याघात ही हो; भाषा सीखने वाला, उस भाषा को सीखने के पूर्व जितनी भी भाषा या भाषाएँ अच्छी तरह सीख चुका हो, उन सभी का व्याघात संभव है। (ख) दूसरे यह कि अंतरभाषा केवल लक्ष्य भाषा के ठीक से प्राप्त ज्ञान तथा उस काल तक होने वाली त्रुटियों पर ही आधारित नहीं होती, उसमें वे भूलें भी शुद्ध मानकर स्वीकृत होती हैं, जो उस समय भाषा सीखनेवाला करता होता है।

9 हिंदी उच्चारण-शिक्षण[1]

0.0. हिंदी उच्चारण-शिक्षण (अथवा ध्वनि-शिक्षण) को दो रूपों में रखा जा सकता है : अन्य भाषा के रूप में, तथा मातृभाषा के रूप में। इन्हें क्रमशः लिया जा रहा है।

0.1. अन्य भाषा के रूप में

'अन्य भाषा के रूप में का अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति हिंदी सीख रहा है, उसकी मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा (भा-1) तमिल, कश्मीरी, अँग्रेज़ी, रूसी आदि कोई भारतीय अथवा विदेशी भाषा है तथा उसके लिए लक्ष्य भाषा या दूसरी भाषा (भा-2) हिंदी है।

1.1. इसके लिए सबसे पहले भा-1 तथा भा-2 के स्वरों और व्यंजनों को तुलनात्मक रूप से अध्यापक को अपने सामने रखना चाहिए। स्वरों के लिए स्वर-चतुर्भुज उपयोगी होता है। भा-1 के स्वरों को पहले चतुर्भुज से तथा भा-2 के स्वरों को दूसरे चतुर्भुज में चिह्नित किया जा सकता है। यहां भा-2 के रूप में हिंदी को रखा गया है :
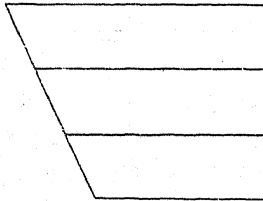
भा-1 के स्वर　　　　भा-2, अर्थात् हिंदी के स्वर
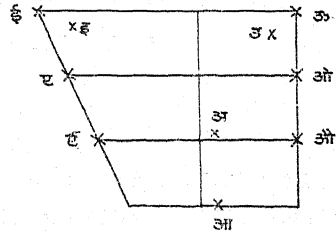
1. विस्तार के लिए, प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की 'हिंदी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण' शीर्षक पुस्तक, मुख्यतः उसका नवाँ अध्याय देखिए।

ये तो मूल स्वर हैं। इनके अतिरिक्त संयुक्त स्वर और स्वरानुक्रम के भी तुलनात्मक चार्ट बनाए जाने चाहिए। इसके लिए तीन खाने बनाए जा सकते हैं :

संयुक्त स्वर तथा स्वरानुक्रम	भा-1	भा-2
1.		
2.		
3.		
आदि		

हर संयुक्त स्वर या स्वरानुक्रम के सामने भा-1, भा-2 में उनके होने या न होने को √ या × रूप में संकेतित कर सकते हैं। मात्रा या ओष्ठों की वृत्तमुखता-अवृत्तमुखता की दृष्टि से भी दोनों भाषाओं के स्वरों की तुलना कर लेनी चाहिए। ऐसे ही स्वरों के महत्त्वपूर्ण उस्पस्वनों की दृष्टि से भी तुलनात्मक तथ्य एकत्र कर लेना उपयोगी होता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'अ' का एक उपस्वन 'ए' जैसा होता है, जो 'ह' के पहले (शहर, नहर, कहना आदि) आता है, किंतु अँग्रेज़ी, रूसी, तमिल आदि अनेकानेक भाषाओं में यह उपस्वन नहीं है। इसीलिए ये लोग ऐसी स्थिति में भी 'अ' ही उच्चारण करते हैं।

1.2. अब व्यंजनों की बात लें। दोनों भाषाओं के व्यंजनों को एक ही चार्ट में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए द्वयोष्ठ्य स्पर्श में नमूने के रूप में भा-1 रूप में अँग्रेज़ी तथा भा-2 रूप में हिंदी के व्यंजन दिए जा रहे हैं। ऐसे

	स्थान					
	द्वयोष्ठ्य		दंतोष्ठ्य		दंत्य	आदि
प्रयत्न	भा-1	भा-2	भा-1	भा-2	भा-1	भा-2
स्पर्श	प × ब ×	प फ ब भ				
संघष आदि						

ही पूरा चार्ट बनाया जाना चाहिए जिसमें दोनों भाषाओं के सभी व्यंजन स्थान, प्रयत्न, घोषत्व और महाप्राणत्व की दृष्टि से साथ-साथ आ जाएँ।

स्वरों की तरह ही संयुक्त व्यंजन तथा व्यंजनानुक्रम के भी तुलनात्मक बनाए जा सकते हैं। साथ ही भा-1 तथा भा-2 के व्यंजनों में संघर्ष, घोषत्व, प्राणत्व आदि उन सभी बातों को नोट किया जा सकता है, जिन दृष्टियों से

उनके समान लगने वाले व्यंजनों में भी थोड़ा-बहुत अंतर हो। ऐसे ही व्यंजनों के उपस्वन भी। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ी में प, ट, क के ईषत् महाप्राण उपस्वन मिलते हैं जो शब्द के आदि में आते हैं, किन्तु हिंदी में ऐसा नहीं है। हिंदी सीखने वाला अँग्रेज़ी-भाषी इसीलिए प्रारंभ में 'पीना' को 'फीना',-सा 'टाट' को 'ठाट'-सा तथा 'काना' को 'खाना'-सा बोलता है।

1.3. उपर्युक्त सामग्री के आधार पर निम्नांकित सूचियाँ बनाई जा सकती हैं : (1) दोनों भाषाओं में पूर्णतः समान स्वरों-व्यंजनों एवं उनके उपस्वनों की; (2) ऐसी ध्वनियों की जो भा-1 में ही हैं, किंतु भा-2 में नहीं हैं, जैसे अँग्रेज़ी में ज़ (प्लेज़र) है, किंतु हिंदी में नहीं है; (3) ऐसी ध्वनियों की जो भा-1 में नहीं हैं किंतु भा-2 में हैं, जैसे अँग्रेज़ी में ख, थ, फ आदि महाप्राण नहीं हैं, किंतु हिंदी में हैं; (4) ऐसे स्वरों एवं स्वर-उपस्वनों की जो समान लगते हैं, किंतु मात्रा, जीभ की स्थिति तथा ओठों की स्थिति आदि की दृष्टि से दोनों भाषाओं में कुछ भिन्न हैं, तथा ऐसे व्यंजनों एवं व्यंजन-उपस्वनों की जो समान लगते हुए भी स्थान, प्रयत्न, घोषत्व, प्राणत्व आदि की दृष्टि से अलग हैं।

1.4. उपर्युक्त बातें व्यतिरेकी विश्लेषण पर आधारित थीं। इसके बाद हिंदी सीखने वाले अन्य भाषा-भाषी छात्र की उच्चारण-अशुद्धियों (मुख्यतः भूलों और त्रुटियों) को एकत्र कर, उनका विश्लेषण कर, उपर्युक्त चार के अतिरिक्त कुछ और भी सूचियाँ बनाई जा सकती हैं : (5) संधि के नियमों में दोनों में क्या अंतर है? उदाहरण के लिए हिंदी में पहली ध्वनि दूसरे से प्रभावित होती है (वाक्+ईश=वागीश, सम्+तोष=सन्तोष), किंतु अँग्रेज़ी में पहली दूसरे को प्रभावित करती है (books=बुक्स, किंतु dogs=डाग्ज़ या caps=कैप्स, किंतु clubs=क्लब्ज़)। इसीलिए हिंदी-भाषी 'डाकघर' को 'डाग्घर' बोलता है, किंतु अँग्रेज़ इसे प्रारम्भ में 'डाक्कर' जैसा, क्योंकि वह 'घर' को अँग्रेज़ी में महाप्राणत्व न होने से 'गर' कर देता है फिर डाक्+गर से 'डाक्कर'। (6) स्थिति-विशेष में ध्वनियों के उच्चारण में कोई अंतर है क्या? उदाहरण के लिए रूसी और जर्मन में शब्दांत का घोष व्यंजन अघोष रूप में उच्चारित होता है, किंतु हिंदी में ऐसा नहीं है, अतः ये लोग हिंदी में रोब को 'रोप' तथा 'रोग' को 'रोक' बोल जाते हैं। (7) भाषा सीखने वाला भा-2 की किन-किन ध्वनियों को भा-1 की किन-किन ध्वनियों में बदल देता है। जैसे अँग्रेज़ हिंदी मूलाचर ए को संयुक्त स्वर 'एइ' (बेल-बेइल) में, या मूल स्वर ओ को संयुक्त 'ओउ' (गोल-गोउल) में, तथा हिंदी स्पर्श थ, द को संघर्षी थ़ द में, या रूसी व्यक्ति हिंदी ध, भ, घ को क्रमशः द, ब, ग में। इसका कारण यह है कि उनकी भाषाओं में ये ध्वनियाँ नहीं हैं, अतः वे अपनी भाषा की मिलती-जुलती ध्वनियों में इन्हें बदल देते हैं। (8) ऐसे संयुक्त व्यंजनों की सूची जो दोनों समान नहीं हैं, और उन्हें शब्दों में आने पर बोलते समय प्रायः गलतियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए हिंदी ह्न (चिह्न,

अपराह्न), ह्म (ब्रह्म, ब्राह्मण), ह्ल (आह्लाद) का उच्चारण अन्य भाषा-भाषी नहीं कर पाते तथा वे इन्हें 'न्ह', 'म्ह', 'ह्ल' में बदल देते हैं। जैसे हिंदी वाले, हिंदी में स्ट, स्न, स्क न होने से स्टेशन (इस्टेशन, अस्टेशन, सटेशन, टेसन), स्नान (अस्नान, इस्नान), स्कूल (इस्कूल, अस्कूल, सकूल) के ग़लत उच्चारण प्राय: करते हैं।

1.5. अंत में भा-1 तथा भा-2 के बलाघात तथा अनुतान के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर नवीं और दसवीं सूची क्रमश: बलाघात के अनुतान के अन्तरों की बनाई जा सकती है।

1.6. सामान्यत: हिंदी ही क्या किसी भी भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाने के लिए इतनी आधार-सामग्री प्राय: पर्याप्त होती है। इनके आधार पर अध्यापक कक्षा के लिए पाठ-सामग्री तथा अभ्यास-सामग्री तैयार कर सकता है। आवश्यकतानुसार टेप या रिकॉर्ड से भा-2 की ध्वनियों, बलाघात, अनुतान आदि को सुनाकर भी अभ्यास कराया जा सकता है। थोड़े-थोड़े समय पर अशुद्धि-विश्लेषण के आधार पर नई पाठ-सामग्री तथा नई अभ्यास-सामग्री तैयार की जाती रहनी चाहिए, जिसमें बल उन बिंदुओं पर हो, जो अभी पूरी तरह नहीं सीखे जा सके हों। ध्वनियों के अंतर के आसपास के लिए युग्मों को लेना अच्छा होता है। उदाहरण के लिए जिन भाषाओं में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं, वे प्राय: हिंदी में महाप्राण को अल्पप्राण कर देते हैं। उन्हें अर्थ बताते हुए ऐसे युग्मों (काना-खाना, गड़ी-घड़ी, बात-भात, दान-धान आदि) या त्रिकों (राम गया।—राम गया ?—राम गया !) से अभ्यास कराना मैंने प्राय: उपयोगी पाया है। यदि भाषा सीखने वाले प्रबुद्ध हों तो उपर्युक्त चार्ट के आधार पर उन्हें भा-1 भा-2 के उच्चारण का अंतर सैद्धांतिक दृष्टि से समझाया जा सकता है। यह भी बहुत लाभकारी रहता है।

1.7. कुछ लोग वैकल्पिक (Optional) तथा अनिवार्य (Obligatory) के आधार पर भी उच्चारण-शिक्षण के लिए भा-1 तथा भा-2 की ध्वनियों की सूचियाँ बनाते हैं। ये सूचियाँ आठ प्रकार की हो सकती हैं: (1) भा-1 अनि (अनिवार्य) : भा-2 अनि (2) भा-1 वै (वैकल्पिक) : भा-2 वै; (3) भा-1 अनि : भा-2 वै; (4) भा-1 वै : भा-2 अनि; (5) भा-1ϕ : भा-2 अनि, (6) भा-1 अनि : भाग-2ϕ, (7) भा-1ϕ : भाग-2 वै, (8) भा-1 वै : भा-2ϕ। उदाहरण के लिए 'भा-1ϕ वै : भा-2ϕ की बात लें तो जापानी में 'र'-'ल' काफी स्थितियों में विकल्प से आते हैं, (रोकु या लोकु=छ:; रोबा या लोबा=गदहा) किंतु हिंदी में ऐसी स्थिति नहीं है। ऐसे ही भा-1 अनि : भा-2 वै की बात लें, तो अँग्रेज़ी में शब्द के आदि में क, प, ट का ईषत् महाप्राण युक्त आना अनिवार्य है, किंतु हिंदी में ये अल्पप्राण रूप में भी आ सकते हैं महाप्राण रूप में

भी, अर्थात् विकल्प हैं। इनमें भा-1 वै : भा-2 अनि, भा-1ϕ : भा-2 वै, तथा भा-1 : भा-2 अनि, को सिखाना प्राय: कठिन होता है। ऐसे ही ऊपर के दस में से '1' में भाषा सीखने वाला कोई अशुद्धि नहीं करता, तथा 3, 4, 6, 7, 8, 9, 10 में बहुत अशुद्धियाँ करता है तथा इन अंतरों को आत्मसात् करके भा-2 की ध्वनि-संरचना को अपनी आदत का सहज अंग बना लेना बहुत कठिन होता है। मैंने सोवियत संघ में देखा कि जो हिंदी के रूसी और उज़्बेक विद्वान बीस-बाईस वर्ष से हिंदी पढ़-पढ़ा रहे हैं, तथा हिंदी में बहुत अच्छा लिख भी लेते हैं, उच्चारण में बहुत अशुद्धियाँ करते हैं, मुख्यत: 4, 7, 8, 9, 10 की।

1.8. अंत में बानगी के रूप में बंगालियों और पंजाबियों को हिंदी में उच्चारण-शिक्षण के लिए, व्यतिरेकी अध्ययन तथा अशुद्धि-विश्लेषण के आधार पर कुछ अत्यंत प्रमुख शिक्षण-बिंदुओं की ओर अत्यंत संक्षेप में संकेत किया जा रहा है :

बंगाली : (1) हिंदी अ—बँगला ओ ('बल', को वे लोग 'बोल' बोलेंगे तथा 'बस' को 'बोस') ; (2) हिंदी ई, ऊ—बँगला इ, उ ('दीन' को 'दिन' तथा 'सूना' को 'सुना'); (3) हिंदी ऐ—बँगला ऐए, ('ऐसा' को 'ऐएसा') या कुछ लोग अइ ('ऐसा' को 'अइसा'); (4) हिंदी ण—बँगला न ('कण' को 'कोन'); (5) अपवादों को छोड़कर हिंदी य, व—बंगला ज, ब (यदि—जोदि, शय्या-शोज्जा, आचार्य-अचर्ज्जो, वेद-बेद, व्यवसाय-ब्यबसाय); (6) हिंदी स—बंगला श (सब—शोब, असल—अशोल)। हाँ, संयुक्त व्यंजनों में 'स' का 'स' अवश्य रह जाता है : स्पृहा, (7) संयुक्त व्यंजनों में 'ह्म' का 'म्भ' (ब्राह्मण—ब्रम्भोन) तथा मध्यवर्ती 'क्ष' का क्ख (पक्षी—पोक्खी); (8) हिंदी क़, ख़, ग़, ज़, फ़—बंगला क, ख, ग, ज, फ (क़त्ल—कोतोल, ख़ुदा—खोदा, ग़रीब—गोरिब, ज़ोर—जोर, फ़ायदा—फाइदा)।

पंजाबी : (1) शब्दांत के इ, उ का ई,ऊ (अती, कवी, व्यक्ती, वस्तू, शत्रू, गुरू) ; (2) इ-अ (धोबिन-धोबण, पंडित-पंडत, मंदिर-मंदर); (3) उ-अ (साबुन-साबण); (4) मूल व्यंजन के स्थान पर द्वित्व (गाड़ी-गड्डी, सात-सत्त) या संयुक्त (दूध-दुद्ध, आठ-आट्ठ) का प्रयोग; तथा ऐसे शब्दों में दीर्घ स्वार का ह्रस्व स्वर; (5) हिंदी में प्राय: उपांत्य अक्षर पर बलाघात होता है, किंतु पंजाबी में अंत्य अक्षर पर अत: दीर्घ स्वर ह्रस्व : बारीक का बरीक। ऐसे ही बाज़ार-बज़ार, साहित्य-सहित्य आदि भी; (6) घ,ढ, ध,भ के स्थान पर विशिष्ट प्रकार का क, ट, त, प (घर-कार, ढक्कन-टक्कन, धोना-तोना, भाई-पाई), (7) न-ण (धोबण, आणा, जाणा), (8) ण-न (प्रान, प्रनाम) संयुक्त व्यंजन में स्वरागम(रजिंदर, सुरिंदर, सकूल, सटेशन, शमशान, यतन, प्रयत्न-परयतन), (9) अक्षर-विभाजन की अशुद्धि (छि-पक-ली, आ-मद-नी), (10) उपन्यास-

उपन्यास, अब्भ्यास-अभ्यास । इनके आधार पर पाठ-सामग्री, अभ्यास-सामग्री तथा श्रवण-सामग्री आदि तैयार की जा सकती है।

2.0. मातृभाषा के रूप में

मातृभाषा के रूप में हिंदी उच्चारण की शिक्षा देने का अर्थ है हिंदी की विभिन्न बोलियों (जैसे ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि) के बोलने वालों को हिंदी उच्चारण की शिक्षा देना। इसके लिए बच्चे की जो मातृबोली हो, पहले उसके स्वरों, संयुक्त स्वरों, स्वरानुक्रमों, व्यंजनों, संयुक्त व्यंजनों व्यंजनानुक्रमों बलाघात तथा अनुतान आदि का विश्लेषण कर लेना चाहिए। फिर, पीछे जैसे अन्य भाषा के रूप में हिंदी उच्चारण की शिक्षा पर विचार करते समय कहा गया, उस बोली को भा-1 मान कर तथा हिंदी को भा-2 मानकर दोनों के, ऊपर संकेतित प्रकार के, तुलनात्मक चार्ट बनाकर व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर अंतरों को सूचीबद्ध कर लेना चाहिए। साथ ही उस बोली के बोलने वालों से मानक हिंदी के उच्चारण में होने वाली अशुद्धियों का भी विश्लेषण कर लेना चाहिए, क्योंकि उच्चारण की गलतियाँ केवल मातृबोली या मातृभाषा के व्यवधान से ही नहीं होतीं, लक्ष्य भाषा की ध्वनि-संरचना की ठीक जानकारी का अभाव भी अशुद्धियों को जन्म देता है। इसके बाद उच्चारण की शिक्षा के लिए शिक्षण बिंदु निकाले जा सकते हैं।

2.1. समवेत रूप से कहना चाहें तो हिंदी को मातृभाषा के रूप में सीखने वाले उच्चारण की जो भूलें करते हैं, वे दो प्रकार की हैं :

(क) सभी हिंदी बोली-भाषियों में प्राप्त

कुछ भूलें और त्रुटियाँ ऐसी हैं, जिन्हें अधिकांश हिंदी बोलियाँ बोलने वाले मानक हिंदी के उच्चारण में करते हैं। उदाहरणार्थ : (1) **शब्दांत के इ, उ का ई, ऊ उच्चारण**—चूंकि हिंदी की किसी भी बोली में अंत्य इ, उ स्वर नहीं हैं, तथा हिंदी के अपने शब्दों में भी यह स्थिति नहीं है, अतः अंत्य इ, उ की ध्वनि-व्यवस्था हिंदी की अपनी न होकर गृहीत है। यही कारण है कि यह गलती (भक्ती, शक्ती, कवी, रवी, वस्तू, गुरू, लघू) लोगों से प्रायः हो जाती है। इसके लिए इ-ई, उ-ऊ, में मात्रा का अंतर स्पष्ट करते हुए युग्मों (जाति-जाती, भाँति-भाती, पाँति-पाती, साधु-साधू, आलु (प्रत्यय) आलू) के द्वारा उनमें अर्थ का अंतर बताते हुए शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना चाहिए। (2) **'ण' के स्थान पर न**—इसका भी कारण उपर्युक्त ही है। मानक हिंदी में 'ण' केवल तत्सम शब्दों में है, जो हिंदी के अपने न होकर गृहीत हैं। मानक हिंदी के तद्भव तथा देशज शब्दों में 'ण' नहीं है, किंतु 'न' है, अतः 'ण' उच्चारण में, न हो जाता है: वीणा-वीना, गण-गन, प्रण-प्रन, प्रणाम-प्रनाम, प्राण-प्रान। इनके अभ्यास के लिए

अनु (उपसर्ग)—अणु अनुवाद-अणुवाद (दर्शन का शब्द) जैसे युग्म काम के हैं। (3) **श का स**—'श' केवल गृहीत (विदेशी तथा तत्सम) में ही है, हिंदी के अपने तद्भव तथा देशज शब्दों में नहीं है, अतः यह अशुद्धि भी स्वाभाविक है : शहर-सह्र, शोर-सोर, शक-सक। इनके अभ्यास के लिए युग्म हो सकते हैं : शीशा-सीसा, शादी-सादी, शेर-सेर, शाल-साल। (4) **व का ब**—तत्सम शब्दों में यह भूल प्रायः हो जाती हैं : ब्यवहार, बिद्यार्थी, बिश्व, बिद्यालय, ब्यायाम आदि। 'व' के उच्चारण में ओष्ठों को एक-दूसरे से दूर रखने की सावधानी बरतनी चाहिए। ऐसा न करने से ओष्ठ मिल जाते हैं और 'व' का 'ब' हो जाता है। (5) **क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ऑ का क, ख, ग, ज, फ, आ**—हिंदी के अपने शब्दों में ये ध्वनियां भी नहीं हैं, अतः हमारी ध्वनि-व्यवस्था में इनका सहज स्थान नहीं है। इसी कारण ग़लती हो जाती हैं। इनके लिए भी युग्मों (ताक़-ताक, ख़ाना-खाना, बाग (घोड़े की)—बाग़, ज़रा-जरा, राज़-राज, फ़न-फन (साँप का), कॉफ़ी-काफ़ी, हाल-हॉल) के आधार पर अभ्यास करना अच्छा रहेगा। (6) **संयुक्त व्यंजन**—उन संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो हिंदी के अपने शब्दों में नहीं है, प्रायः अशुद्धि हो जाती है। यह कई प्रकार की होती है : (क) **आदि स्वरागम**—इस्कूल, अस्थान, अस्टूल, इस्टेशन, इस्लेट, अस्नान, इस्पष्ट, अस्पाट; (ख) **मध्य स्वरागम**—धरम, शरम, बरफ़, जनम, भसम, इन्दर।

(ख) कुछ हिंदी बोली-भाषियों में प्राप्त

खड़ी बोली : (1) **'ऋ' का 'र'** (क्रष्ण, क्रपा, न्रप, प्रथ्वी) ; (2) **'ऐ' का 'ए'** (ऐनक-एनक, ऐसा-एसा) ; (3) **'औ' का 'ओ'** (औरत-ओरत, पौदा-पोदा) ; (4) **प्रारंभ के स्वर का लोप** (अनाज-नाज, असाढ़-साढ़) ; (5) **न का ण** (जाना-जाणा, कौन-कौण); (6) **महाप्राणता बहुत कम** (भूख-भूक, हाथ-हात, धोखा-धोका); (7) मूल व्यंजन के स्थान पर द्वित्व (राज्जा, बेट्टा, चाच्चा, माट्टी)।

हरियाणी : (1) **मध्यम 'ल' का ळ** (काला-काळा) शेष खड़ी बोली के 2, 3, 7 ही।

भोजपुरी : (1) **मूल स्वर ऐ, औ का संयुक्त स्वर अए, अओ** (ऐसा, औरत) ; (2) **आदि तथा मध्य य का तत्सम शब्दों में ज** (यदि-जदि, यज्ञ-जग्य, अयोध्या-अजोध्या); (3) **ल का र** (हर, सार, कुदार, फर); (4) क्ष का आदि में छ (क्षत्रिय-छत्री क्षोभ-छोभ) तथा मध्य में च्छ (भिच्छा, सिच्छा) या क्ख (दक्षिण-दक्खिन, दच्छिन) ; (5) ह के पूर्व अ के ए, जैसे रूप का अ या अं (केहना-कहना, शेहर-शहर); (6) **अनुनासिकता** (आँटा, दुनियाँ, बढ़ियाँ, काँपी, डाँक्टर, डाँकू)।

2.2. यहाँ केवल उदाहरणस्वरूप तीन बोलियाँ ली गई हैं। ऊपर जो सभी

बोलियों के बोलने वालों में मिलने वाली छः अशुद्धियाँ दी गई हैं, तथा यहाँ तीन बोलियों को बोलने वालों में प्राप्त जो अशुद्धियाँ दी गई हैं, इन सबको मिला दें, तो ये ही अशुद्धियाँ समवेत रूप से मातृभाषा के रूप में हिंदी सीखनेवालों में प्रायः मिलती हैं। इनके आधार पर अलग-अलग बोलियों के लिए अलग-अलग अभ्यास-सामग्री तैयार करके उनके अभ्यास द्वारा उच्चारण की शिक्षा दी जानी चाहिए। अभी तक मातृभाषा के रूप में हिंदी पढ़ाने वाले अध्यापकों ने इस दिशा में कुछ विशेष नहीं किया है, और इसीलिए पूरे हिंदी-प्रदेश के विद्यार्थी उच्चारण की बहुत अधिक भूलें करते हैं।

10 नागरी लिपि-शिक्षण

0.0. नागरी लिपि

0.1. मानक रूप

मुख्य स्वर : अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ

गौण स्वर : ऑ, ऋ े ै ो ौ

मुख्य मात्राएँ : ा ि ी ु ू े ै ो ौ

गौण मात्राएँ : ॉ ृ

मूल व्यंजन

मुख्य व्यंजन : क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व
श ष स ह

गौण व्यंजन : ड़, ढ़, क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ळ

संयुक्त व्यंजन

विशिष्ट : क्ष, त्र, ज्ञ, द्य, श्र

सामान्य : क के—क्ख, क्न, क्य, क्र, क्व आदि
ख के—ख्त, ख्य, ख्र आदि
ग के—ग्घ, ग्या, ग्र आदि
घ के—घ्न, घ्र आदि
च के—च्छ, च्य, च्व आदि

इसी प्रकार अन्यों को भी सूचीबद्ध किया जा सकता है।

नागरी के अंक—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०.

अंतर्राष्ट्रीय अंक—1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0.

आजकल हिंदी-लेखन में अंतर्राष्ट्रीय अंकों का ही प्रयोग अधिक हो रहा है, किंतु कई प्रदेशों में हिंदी-शिक्षण में नागरी के परंपरागत अंकों का ही प्रयोग होता है। ऐसी स्थिति में दोनों का यथासमय परिचय कराया जाना चाहिए।

0.2. मानकेतर रूप

अ (अ्र), आ (अ्रा), इ (अि, अ्रि), ई (अ्री, अी), उ (अ्रु), ऊ (अ्रू) ए (अे), ऐ (अै), ओ (अ्रो), औ (अ्रौ), ख, छ, झ (भ्क), ण, ध, भ, ल, श, क्ष, त्र (त्र), ज्ञ, ७, ८, ९, आदि के मानकेतर रूप प्रचलित रहे हैं, और कुछ तो आज भी हैं, जिनमें कुछ को यहाँ कोष्ठक में दिखाया भी गया है। आज के लेखन के लिए अमानक रूपों की आवश्यकता नहीं है, किंतु पुराने ग्रंथ या पुराने लोगों द्वारा लिखित सामग्री को पढ़ने के लिए इनकी जानकारी अपेक्षित है। अतः सभी अमानक रूपों की जानकारी यथासमय कराई जानी चाहिए।

0.3. वर्गीकरण

शिक्षण की दृष्टि से नागरी लिपि के अक्षरों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है :

(अ) स्वरूप के आधार पर

(1) फ प ष — (2) त ल त्र न
(3) र ए ऐ स श — (4) ट ठ ढ द
(5) ग म भ ज्ञ ण — (6) ध घ य थ
(7) ड ङ इ ई ह छ — (8) उ ऊ
(9) व ब क ख — (10) च ज ञ ज्ञ क्ष
(11) अ आ ओ औ

इनके साथ मात्रा, अनुस्वार, विसर्ग, अनुनासिकता आदि को भी वर्गीकृत कर सकते हैं। 'ऋ' को वर्ग संख्या 'दो' या 'पाँच' में रखा जा सकता है।

(आ) मुक्तता और बद्धता के आधार पर

(1) मुक्त—जो अलग प्रयुक्त हो सकें। स्वर तथा व्यंजन अक्षर ऐसे ही हैं।

(2) बद्ध—जो अलग न प्रयुक्त होकर किसी-न-किसी से बद्ध होकर आएँ। स्वरों की मात्राएँ तथा आधे व्यंजन (जैसे ग्, च्, म् आदि) इसी श्रेणी के हैं।

(इ) रेखाओं (स्ट्रोक) की संख्या के आधार पर

(1) **त्रिरेखीय**—ग, न, र, त, उ, प, ण, व, ए, ट, ठ, ञ, छ आदि ।

(2) **चतुर्रेखीय**—म, भ, ऊ, फ, ष, ब, क, च, घ, ध, य, थ, द, ड, श, ऐ, ज, भ आदि ।

(3) **पंचरेखीय**—स, ख, क्ष, ड़, अ आदि ।

(4) **षड्रेखीय**—ख, ई, आ ।

(5) **सप्तरेखीय**—झ, ओ, ऋ ।

(6) **अष्टरेखीय**—औ ।

1.0. मातृभाषा शिक्षण में

मातृभाषा की शिक्षा प्राय: बच्चों को दी जाती है । बच्चों को नागरी लिपि की शिक्षा कई प्रकार से दी जा सकती है । उदाहरणार्थ :

(अ) बच्चे को पहले खड़ी (।), पड़ी (—), तिरछी (/\), अर्धवर्तुल (()), वर्तुल (०) रेखाएँ खींचने का अभ्यास कराना चाहिए । (आ) इसका अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर चार पंक्तियों वाली कापी पर बिंदुदार रूप में अक्षर लिखकर उन पर लिखने का अभ्यास कराना चाहिए । (इ) अक्षरों को वर्णमाला क्रम से न लेकर या तो स्वरूप-वर्ग (दे० 0.3 में 'अ') या फिर रेखा-संख्या (दे० 0.3 में 'इ') के आधार पर क्रमश: (पहले सरल फिर कठिन) लेना चाहिए । (ई) हर अक्षर को लिखने में तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए : पहली तो यह कि अक्षर लिखते समय कहाँ से प्रारंभ करें, दूसरे क्रमश: किन-किन रेखाओं को खींचें तथा, हर रेखा को किधर से किधर ले जाएँ । उदाहरण के लिए :
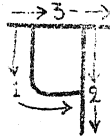
(उ) अभ्यास हो जाने पर धीरे-धीरे चार पंक्तियों के स्थान पर तीन, फिर दो और फिर एक पंक्ति के काग़ज़ पर अभ्यास कराना चाहिए ।

1.2. प्रारंभ में गत्ते (दफ्ती) या लकड़ी के अक्षर कटवा कर उन पर हाथ फिरवा कर भी अभ्यास करवाया जा सकता है, और फिर उपर्युक्त पद्धति को अपना सकते हैं ।

1.3. राख, रेत, या मिट्टी आदि पर अक्षर लिखकर उस पर उँगली फिरवा कर भी लेखन-अभ्यास की शुरूआत की जा सकती है ।

1.4. एक पद्धति यह भी हो सकती है कि पूरी वर्णमाला एक साथ न सिखाई जाए, बल्कि थोड़े-थोड़े अक्षर और मात्राएँ सिखाकर शब्द और वाक्य लिखवाते हुए आगे बढ़ा जाए। यह पद्धति बच्चे के लिए मनोरंजक होती है। उदाहरण के लिए 'ग न ा' सिखाकर 'गाना गा' लिखना और पढ़ना सिखाना। अन्य उदाहरण हो सकता है : 'च ल ा' से 'चाल चल', 'चला ला'।

1.5. एक यह पद्धति भी हो सकती है कि कापी पर ऊपर चार लाइनों में अक्षर लिखे हों तथा नीचे चार पंक्तियों में बिंदुदार अक्षर। बच्चा ऊपर के अक्षर देखकर बिंदुदार अक्षर को पेंसिल या कलम से पूरा करे। इसका अभ्यास हो जाने पर बिना बिंदुदार अक्षर के सीधे देखकर लिखवाना चाहिए और फिर बिना देखे।

लिखने का अभ्यास हो जाने पर श्रुतलेख (डिक्टेशन) लिखवाना उपयोगी होता है। पहले अक्षर का, फिर शब्द का फिर वाक्य का। इसमें जो लेखन-अशुद्धियाँ हों उन्हें समझाते हुए फिर से लिखवाकर सही लिखने का अभ्यास कराना चाहिए।

2.0. अन्य भाषा-शिक्षण में

2.1. अन्य भाषा की शिक्षा प्रायः बच्चों को न दी जाकर अपेक्षाकृत बड़ों को दी जाती है, अतः शिक्षार्थी का हाथ अभ्यस्त होता है, तथा उनका मस्तिष्क विकसित होता है। इसीलिए यह आवश्यक नहीं कि उन्हें बच्चे की तरह लिखना सिखाया जाए।

2.2. अन्य भाषा की लिपि शिक्षण में कई स्थितियाँ संभावित हैं। एक तो यह कि मातृभाषा की लिपि ही अन्य भाषा की भी (जैसे हिंदी-नेपाली या हिंदी-मराठी) हो, दूसरे यह कि दोनों में काफ़ी समानता हो (जैसे हिंदी-गुजराती) और तीसरे यह कि समानता भी हो और असमानता भी (जैसे हिंदी-पंजाबी) और चौथे यह कि दोनों में कोई संबंध न हो (जैसे हिंदी-उर्दू, हिंदी-रूसी, हिंदी-जापानी)। इनमें पहली स्थिति में लिपि सिखाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरी में तुलनात्मक दृष्टि से दोनों लिपियों का स्वरूप विश्लेषण करते हुए लक्ष्य लिपि सिखाई जा सकती है। तीसरी में असमान अक्षरों पर बल देने की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि मातृलिपि व्यवधान उपस्थित करती है। उदाहरण के लिए गुरुमुखी का 'क' नागरी के 'र'-जैसा होता है तो 'स' 'म'-जैसा; 'ख' 'ष'-जैसा या 'म' 'भ'-जैसा। अतः एक में दूसरे का भ्रम होता है। चौथी स्थिति में मातृलिपि के व्यवधान की आशंका नहीं होती।

2.3. अन्य भाषा की लिपि सिखाने में, पीछे संकेतित (1.4.) पद्धति अच्छी होती है। साथ ही इसमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि लिपि सीखने वाले को यह बताया जाए कि कितनी रेखाओं में वह अक्षर लिखे, पहले कौन-सी

रेखा खींचे और फिर कौन-कौन सी, तथा हर रेखा को खींचना वह किधर से शुरू करे तथा कहाँ ख़त्म करे। अक्षरों के सीख लेने पर, श्रुतलेख और अशुद्धि संशोधन द्वारा उन्हें शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना चाहिए।

3.0. स्वर-व्यंजन अक्षरों के अतिरिक्त अंक, अन्य चिह्न तथा विराम-चिह्न आदि भी यथासमय यथाक्रम सिखाना चाहिए। वस्तुतः इनका भी शिक्षण लेखन-शिक्षण में ही आता है।

हिंदी वर्तनी-शिक्षण 11

हिंदी वर्तनी-शिक्षण

0.0. किसी भाषा के शब्दों के लेखन में प्रयुक्त 'विशिष्ट क्रम के अक्षर-समुदाय' को वर्तनी कहते हैं। वर्तनी में दो बातें ध्यान देने की होती हैं : (क) किन अक्षरों का प्रयोग है; (ख) उन अक्षरों का क्रम क्या है। उदाहरण के लिए यदि कोई 'प्रकट' को 'प्रगट' लिखे तो 'क' के स्थान पर 'ग' के प्रयोग की अशुद्धि है, किंतु यदि कोई 'लखनऊ' को 'नखलऊ' लिखे तो क्रम की ग़लती है। ऐसे ही 'ब्राह्मण' को 'ब्राम्हण' लिखने में भी क्रम की ग़लती है।

1.0. हिंदी वर्तनी-शिक्षण पर यों तो मातृभाषा और अन्य भाषा के शिक्षण के प्रसंग में अलग-अलग भी विचार किया जा सकता है। किंतु दोनों को एक साथ समवेत रूप से भी लिया जा सकता है। यहाँ दोनों को एक साथ ही लिया जा रहा है।

1.1 अनेक अन्य भाषाओं की तरह हिंदी वर्तनी में भी अशुद्धि का एक मुख्य कारण है उच्चारण और वर्तनी का अंतर। उच्चारण और वर्तनी का संबंध तो है किंतु एक सीमा तक। उदाहरण के लिए 'काला' की जो वर्तनी है, वही उसका उच्चारण भी है, किंतु दूसरी तरफ़ लिखते 'पाप' हैं, किंतु बोलते 'पाप्' हैं या लिखते 'न्यायी' हैं, किंतु बोलते 'न्याई'। अंग्रेजी में Put का उच्चारण 'पुट' है, किंतु But का उच्चारण 'बट' है, अर्थात् But की वर्तनी उच्चारण के अनुरूप नहीं है। इसीलिए वर्तनी की शिक्षा चाहे मातृभाषा के शिक्षण में दी जा रही हो या अन्य भाषा के शिक्षण में, जहाँ शब्द के उच्चारण और वर्तनी में अंतर है, उसकी ओर भाषा सीखने वाले का ध्यान दिलाना चाहिए। ऐसे शब्दों की अनुस्तरित (graded) सूची विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हो सकती है।

1.2. हर भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो एक-से लगते हैं किंतु अलग-अलग होते हैं। उनमें अर्थ का अंतर होता है। वर्तनी की शिक्षा में उनकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। उदाहरणार्थ हिंदी में कोश (शब्दकोश)—कोष

(ख़ज़ाना), जरा (बुढ़ापा)—ज़रा (थोड़ा), खाना (भोजन)—ख़ाना (शेल्फ, दराज़), काफ़ी (पर्याप्त)—कॉफ़ी (एक पेय), बाग (घोड़े की बागडोर)—बाग़ (उपवन) ऐसे ही शब्द हैं। इनकी ओर लेखन सीखने वाले का ध्यान यथासमय अवश्य दिला देना चाहिए।

1.3. ऐसे ही कुछ शब्दों की एकाधिक वर्तनियाँ मानक होती हैं। उनको भी सूचीबद्ध करके विद्यार्थियों को दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ हिंदी में साधु—साधू, औषधि—औषध, संबंध—सम्बन्ध, आनंद—आनन्द, स्वयं—स्वयम् आदि इसी श्रेणी के शब्द हैं।

2.0. उपर्युक्त बातें मातृभाषा तथा अन्य भाषा दोनों ही के शिक्षण की दृष्टि से कही गईं। अब कुछ बातें अन्य भाषा-शिक्षण की दृष्टि से अलग से भी की जा सकती हैं। इस दृष्टि से अन्य भाषाओं के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं। एक तो उन अन्य भाषाओं का वर्ग, जिनकी मातृभाषा से लिपि तथा शब्द की दृष्टि से कोई समानता नहीं है। जैसे हिंदी अन्य भाषा तथा रूसी मातृभाषा या रूसी अन्य भाषा और हिंदी मातृभाषा। दूसरी वे जिनसे समानता है। जैसे हिंदी—मराठी, गुजराती—हिंदी, हिंदी—बंगला आदि।

2.1. समानता-रहित लक्ष्य भाषा की वर्तनी-शिक्षण की समस्या की मुख्य बातें वे ही हैं, जिनकी ओर ऊपर संकेत किया गया। समानतायुक्त लक्ष्य भाषा की एक विशिष्ट समस्या भी होती है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो भाषा सीखने वाले की भाषा में दूसरे रूप में होते हैं और लक्ष्य भाषा में दूसरे रूप में। ऐसे शब्दों के लेखन में अन्य भाषा-भाषी प्रायः ग़लती करते हैं। उदाहरण के लिए मराठी में 'ज़िला' को 'जिल्हा' कहते तथा लिखते हैं, अतः मराठी-भाषी हिंदी लिखने में 'ज़िला' की वर्तनी 'जिल्हा' लिखने की अशुद्धि कर जाता है। ऐसे ही हिंदी आँगन—मराठी आँगण, हिंदी केसर—म० केशर, हि० मुक्का—म० बुक्का, हि० तूफान—म० तुफान। यह ध्यान देने की बात है कि मराठी में चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु ही लगाते हैं, अतः मराठी वाले काँटा या ताँबा आदि को कांटा, तांबा ही लिख देते हैं। ऐसे ही बहुत से अरबी-फ़ारसी शब्दों में जहाँ हिंदी अधोबिंदु का प्रयोग करती है, मराठी, गुजराती आदि नहीं करतीं। इस प्रकार के अंतरों को वर्तनी के व्यतिरेकी अध्ययन द्वारा निकाल लेना चाहिए तथा भाषा सीखने वाले को बता देना चाहिए। ऐसे ही गुजराती वाले अपनी वर्तनी के प्रभाव से 'महल' को 'महेल', 'रिक्शावाला' को 'रिक्षावाला' या उर्दू वाले 'धोखा' को 'धोका' तथा 'भूख' को 'भूक' लिख जाते हैं।

2.2. भाषा सीखने वाले की वर्तनी-विषयक अशुद्धियों का नियमित रूप से संकलन और विश्लेषण करते रहना चाहिए तथा उनके प्रति सावधान करते हुए बार-बार लिखने को कहना चाहिए। इस दृष्टि से वर्तनी की अशुद्धियों को भी चूक, भूल तथा त्रुटि में वर्गीकृत किया जा सकता है तथा तदनुरूप उन्हें

दूर करने के उपाय किए जा सकते हैं।

अंत में हिंदी वर्तनी में होने वाली कुछ अशुद्धियों एवं अव्यवस्थाओं को कारणों के अनुसार वर्गीकृत करके यहाँ देखा जा सकता है :

(अ) लिपि के समुचित ज्ञान का न होना

नागरी लिपि की मात्राओं के ऊपर-नीचे और आगे-पीछे लगने, संयुक्त व्यंजनों के स्वतंत्र रूप होने, तथा कुछ ध्वनि-चिह्नों में अन्तर का ज्ञान न होने आदि के कारण बहुत से लोग लेखन में गलती करते हैं। इसे कई उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) ह्रस्व इ की मात्रा पीछे लगती है। जिन्हें इसका ठीक ज्ञान नहीं है 'कि' को 'की' लिख जाते हैं। संयुक्त व्यंजन में यह मात्रा संयोग के पहले आएगी। जिन्हें इस बात का पता नहीं है 'निश्चित', 'चन्द्रिका' आदि लिखते हैं, जबकि इन्हें 'निश्चित', 'चन्द्रिका' आदि लिखना चाहिए।

(2) र्+ऊ=रू होता है तथा र्+उ=रु। इसमें भी लोग उलट-फेर कर देते हैं।

(3) 'ृ' 'ऋ' की मात्रा है तथा '्र' 'र' का एक रूप है। ये एक-दूसरे का स्थान नहीं ले सकते। इन दोनों में अन्तर न जान पाने के कारण, कुछ लोग 'कृपा' को 'क्रपा' या 'कृष्ण' को 'क्रष्ण' लिखते हैं, जो अशुद्ध है।

(4) ए तथा ऐ की मात्राओं े (के) ै (कै) के भ्रम से कुछ लोग ऐ, एँ लिखते हैं, जो अशुद्ध है। ऐसा, ऐतिहासिक, ऐनक, जैसी अशुद्ध वर्तनियाँ इसी का परिणाम हैं।

(5) र के कुल रूप चार हैं : र, ्र, ्र, र्। इनमें अन्तर न जानने के कारण भी गलती होती है। ध्यान दें :

(क) '्र' तथा '्र' व्यंजन के बाद उच्चरित होते हैं :

्र—ट, ड, छ आदि के नीचे आता है (ट्र, ड्र, छ्र) तथा इनमें 'र्' का उच्चारण ट, ड के बाद होता है: ट्रेन, ड्रामा।

'्र'—क, ख, ग, ज, प आदि अन्य व्यंजनों के नीचे (क्र, ख्र, ग्र, ज्र, प्र) आता है। 'श्र' का र् भी यही है : क्रम, श्रम।

(ख) 'र्' व्यंजन के पहले उच्चरित होता है :

यह उस व्यंजन के ऊपर आता है, जिसके पहले उच्चरित होता है : अर्ध, धर्म, फ़र्क, शर्त, सर्द।

(ग) र शब्द के आदि में स्वर के पहले :

राम, रीति, रोष, रुष्ट।

शब्द के बीच में दो स्वरों के बीच :

आराम, तारीफ़, आरोप।

तथा शब्द के अन्त में स्वर के बाद आता है : पार, तीर, पर, बौर।

(6) अनुस्वार (ं) तथा अनुनासिक अथवा चंद्रबिंदु (ँ); तथा अनुस्वार और ङ्, ञ, ण, न, म में अन्तर न जानने से भी वर्तनी की ग़लतियाँ हो जाती हैं।

निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं :

अनुस्वार तो नासिक्त व्यंजन है जो बीच में (अंक, चंचल) अथवा अन्त में (स्वयं) आता है। इसका उच्चारण क, ख, ग, घ के पूर्व ङ् (अंक,पंख,गंगा, जंघा); च, छ, ज, झ के पूर्व ञ् (चंचल, वांछा, गंजा, झंझा); ट, ठ, ड, ढ के पूर्व ण् (टंटा, अवगुंठन, डंडा); त, थ, द, ध के पूर्व न् (संत, पंथ, अंदर, अंध); तथा प, फ, ब, भ के पूर्व म् (पंप, गुंफित, बंबा, खंभा) होता है। य, र, ल, व, श, स, ह के पूर्व भी यह आता है (संयम, संरचना, संलाप, संवाद, संशय, संसार, संहार) और इसका उच्चारण ङ्, ञ, न्, म् से मिलता-जुलता होता है, जैसा कि नीचे दिया गया है।

अनुनासिक कोई स्वतंत्र ध्वनि नहीं है। वह जिस स्वर के ऊपर लगता है उसी स्वर के उच्चारण को अनुनासिक बना देता है : 'सास', 'साँस' दोनों में ही तीन-तीन ध्वनियां हैं। अन्तर केवल यह है कि 'सास' का 'आ' मौखिक है और 'साँस' का 'आँ' अनुनासिक। हंस-हँस में स्पष्ट अन्तर है। ऐसे ही बेदांत-बेदाँत में। यदि शिरोरेखा के ऊपर मात्रा है तो अनुनासिक के स्थान पर भी अनुस्वार ही लगाते हैं : विंधना, खींचन, में, मैं, सोंठ, कौंधना। इन शब्दों में 'अनुस्वार' अनुनासिक का काम कर रहा है। इसका आशय यह हुआ कि अनुनासिक अपने मूल रूप में केवल अ (हँस), आ (साँस), उ (फुँदना), ऊ (ऊँघना) के साथ ही आता है, अन्य स्वरों के साथ यह अनुस्वार हो जाता है।

ऊपर जहाँ ङ्, ञ्, ण् के उच्चारण की बात की गई है, वहाँ न् का प्रयोग वर्तनी की दृष्टि से अशुद्ध होता है। अतः शन्का, पन्खा, चन्चल, जन्ज़ीर, पन्डित, टन्टा आदि ग़लत हैं।

अनुस्वार तथा नासिक्य व्यंजनों के लेखन के मुख्य नियम ये हैं :—

अनुस्वार तथा नासिक्य व्यंजन में विकल्प	केवल नासिक्य व्यंजन	केवल अनुस्वार
ङ् + क, ख, ग, घ (पङ्क अथवा पंक, या गङ्गा अथवा गंगा आदि)	ङ् + म (वाङ्मय, पराङ्मुख)	+ ह (संहार)
ञ् + च, छ, ज, झ (पंच अथवा पञ्च आदि)	×	+ य (संयम) + श (वंश)
ण् + ट, ठ, ड, ढ (पण्डित अथवा पंडित, या डण्डा अथवा डंडा आदि)	+ ण (अक्षुण्ण) + म (मृण्मय) + य (पुण्य) + व (कण्व)	×
न् + त, थ, द, ध (अन्दर अथवा अंदर, या अन्धा अथवा अंधा आदि)	+ न (अन्न) + म (जन्म) + य (अन्याय) + व (अन्वेषण) + ह (कान्ह)	+ स (संसार) + र (संरचना) + ल (संलग्न)
म् + प, फ, ब ,भ (दंभ अथवा दम्भ या पम्प अथवा पंप आदि)	+ न (निम्न) + म (सम्मान्य) + य (साम्य) + र (विनम्र) + ल (अम्ल) + ह (तुम्हें)	+ व (सवेदना)

तीनों में अंतिम खाने में संकेतित 'ह' के पूर्व के अनुस्वार का उच्चारण ङ्-सा; य के पूर्व का ञ्-सा; र, ल, श, स के पूर्व न-सा तथा व के पूर्व म-सा होता है, किंतु लिखने में इन स्थानों पर अनुस्वार ही लिखा जाएगा, कोई भी नासिक्य व्यंजन नहीं। 'संन्यासी' शब्द अपवाद है जिसमें 'अनुस्वार' और 'न्' दोनों होते हैं।

बहुत से लोग अँग्रेजी शब्दों में उपर्युक्त नियमों का उल्लंघन करते हैं। जैसे—कैन्टीन, इन्च आदि। किंतु ऐसा लिखना अशुद्ध है। इन्हें 'कैंटीन', 'इंच' रूप में ही लिखना चाहिए।

(7) संयुक्त व्यंजनों की ठीक जानकारी न होने से भी वर्तनी की भूल हो जाती है : 'शृंगार' का 'श्रंगार' इसी का उदाहरण है।

(आ) लिपि में अस्पष्टता

वर्तनी की कुछ ग़लतियाँ लिपि की अस्पष्टता के कारण भी होती हैं। उदाहरण के लिए 'स्र' तथा 'स्त्र' में कम अन्तर है, अतः काफी लोग 'सहस्र' को 'सहस्त्र' लिखते हैं।

'द्य' 'ध' में अन्तर की कमी के कारण लोग 'विद्यार्थी' तथा 'विद्यालय' को कभी-कभी 'विधार्थी' और 'विधालय' लिखते भी देखे गए हैं। इस अशुद्ध वर्तनी का प्रभाव उच्चारण पर भी पड़ता है।

(इ) संधि के नियमों की जानकारी का अभाव

संधियों के नियमों का अज्ञान या ध्यान न रखना भी अशुद्ध वर्तनी का कारण बनता है। 'अत्यधिक' के स्थान पर 'अत्याधिक', 'तदुपरांत' के स्थान पर 'तदोपरांत', 'देवेन्द्र' के स्थान पर 'देविन्द्र', 'रीत्यनुसार' के स्थान पर 'रीत्यानुसार', 'अनधिकार' के स्थान पर 'अनाधिकार', 'छत्रच्छाया' के स्थान पर 'छत्रछाया', 'महत्त्व', के स्थान पर 'महत्व','उज्ज्वल' के स्थान पर 'उज्वल', 'सद्गुण' के स्थान पर 'सत्गुण', 'शरच्चन्द्र' के स्थान पर 'शरत्चन्द्र', 'अन्तःकथा' के स्थान पर 'अन्तर्कथा', 'अन्तःसाक्ष्य' के स्थान पर 'अन्तर्साक्ष्य', 'बहिःसाक्ष्य' के स्थान पर 'बहिर्साक्ष्य', 'नीरोग' के स्थान पर 'निरोग', 'दवाइयों' के स्थान पर 'दवाईयों', 'विद्यार्थियों' के स्थान पर 'विद्यार्थीयों', 'डाकुओं' के स्थान पर 'डाकूओं' लिखने की अशुद्धि इसी के उदाहरण हैं। उच्चारण पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

(ई) शब्द-रचना की जानकारी का अभाव

शब्द-रचना का ठीक ज्ञान न होने से भी वर्तनी की भूलें हो जाती हैं। उदाहरण के लिए 'इक' प्रत्यय लगने पर पहले अक्षर में—

अ का आ	:	समाज—सामाजिक, अध्यात्म—आध्यात्मिक
इ का ऐ	:	विदेश—वैदेशिक, इतिहास—ऐतिहासिक
ई का ऐ	:	नीति—नैतिक, जीव—जैविक
उ का औ	:	मुहूर्त—मौहूर्तिक
ऊ का औ	:	भूगोल—भौगोलिक, भूत—भौतिक
ए का ऐ	:	वेद—वैदिक, सेना—सैनिक
ओ का औ	:	लोक—लौकिक

हो जाता है। इस नियम का ध्यान न रखने वाले प्रायः सप्ताहिक, समाजिक, वेदिक, लोकिक, इतिहासिक जैसे शब्द लिखने की अशुद्धि कर जाते हैं। इसका प्रभाव उच्चारण पर भी पड़ता है।

(उ) वर्तमान उच्चारण का प्रभाव

आज का हिन्दी उच्चारण परम्परागत वर्तनी से बहुत बदल गया है। इसका परिणाम यह होता है कि उच्चारण के अनुसार लिखने पर भी वर्तनी की अशुद्धि हो जाती है। 'बाजपेयी' के स्थान पर 'बाजपेई', 'स्थायी' के स्थान पर 'स्थाई', 'साहित्यिक' के स्थान पर 'साहित्तिक', 'करता' के स्थान पर 'कर्त्ता', 'सकता' के स्थान पर 'सक्ता', 'चलना' के स्थान पर 'चल्ना', 'कृतज्ञ' के स्थान पर 'क्रितग्य', 'कृपा' के स्थान पर 'क्रिपा', 'ज्ञान' के स्थान पर 'ग्यान', 'प्रायः' के स्थान पर 'प्रायह', 'दोष' के स्थान पर 'दोश', 'ऋण' के स्थान पर 'रिड़ँ' या 'रिण' आदि इसी श्रेणी की अशुद्धियाँ हैं।

(ऊ) अशुद्ध उच्चारण का प्रभाव

ग़लत उच्चारण के कारण भी वर्तनी में अनेक प्रकार की भूलें हो जाती हैं। इसके लिए प्रस्तुत पुस्तक में पीछे दिया गया उच्चारण वाला अंश ध्यान से देखना चाहिए। 'प्रसाद' का 'प्रशाद' या 'परशाद'; 'नमस्कार' का 'नमश्कार' ऐसी ही अशुद्धियाँ हैं। इस वर्ग की अशुद्धियों में 'व' का 'ब' (विद्यार्थी—बिद्यार्थी), 'श' का 'स' (शहर—सहर), 'क़' का 'क' (क़ानून—कानून), 'ख़' का 'ख' (अख़बार—अखबार), 'ग़' का 'ग' (ग़रीब—गरीब), 'ज़' का 'ज' (ज़रूर—जरूर), 'फ़' का 'फ' (फ़ौरन—फौरन), 'ऑ' का 'आ' (डॉक्टर—डाक्टर), 'क्ष' का 'छ' (क्षत्रिय—छत्रिय), 'छ' का 'क्ष' (छात्र—क्षात्र), 'इ' का 'ई' (भक्ति—भक्ती)। 'उ' का 'ऊ' (वस्तु—वस्तू) आदि मुख्य हैं। यों और भी हो सकती हैं जो पीछे उच्चारण के प्रसंग में संकेतित हैं।

(ऋ) हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था की समुचित जानकारी का अभाव

ड़, ढ़, के बारे में यह ज्ञान न होने से भी भूल हो जाती है कि ये शब्द के प्रारम्भ में नहीं आते। कुछ लोग इसी कारण ड़ाली, ढ़क्कन, ढ़ोल आदि लिखते हैं।

(ए) कुछ शब्दों की कई वर्तनियों का प्रचलन

इसके कारण भी ग़लती हो जाती है। जाएगा, जावेगा, जायगा, जायेगा में जाएगा; सोएगा, सोवेगा, सोयेगा में सोएगा; जाय, जावे, जाए, जाये में जाए तथा लिये, लिए में लिए ठीक हैं। संस्कृत के प्रभाव से कुछ लोग हनुमान्, भगवान्, कर्म्म, धर्म्म, वर्म्मा आदि लिखते हैं। हिंदी में हनुमान, भगवान, श्रीमान, कर्म, धर्म, वर्मा, ठीक हैं। हल् की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि हिन्दी के अब सभी अकारान्त शब्द व्यंजनांत हो गए हैं, अतः अन्त का हल्-चिह्न अनावश्यक है। द्वित्व वाला उच्चारण (धर्म्म, सूर्य्य, कर्त्ता) हिन्दी में अब नहीं है, अतः वह भी

अनावश्यक है।

(ऐ) समास का ध्यान न रखा जाना

जो लोग समास का ध्यान नहीं रखते वे समास के दोनों या तीनों शब्दों को अलग-अलग लिखते हैं। करना यह चाहिए कि उनके बीच में या तो योजक-चिह्न लगाएँ (माता-पिता, धीरे-धीरे, सभा-भवन, नीचे-ऊपर, हवन-सामग्री) या उन शब्दों को मिलाकर लिखें (रेलगाड़ी, देशभक्ति, दोपहर)। ऐसा न करने से भी लेखन में अशुद्धि हो जाती है। 'वादविवाद' की अशुद्धि भी यही रखी जा सकती है।

व्याकरण-शिक्षण | 11

0.0. व्याकरण का ज्ञान भाषा के शुद्ध प्रयोग के लिए आवश्यक है क्योंकि यह ज्ञान ही भाषा की मर्यादा को तोड़ते समय सतर्क करता है। व्याकरण भाषा के शुद्ध प्रयोग को बढ़ावा देता है और अशुद्ध प्रयोग पर अंकुश रखता है। जलधारा को सीमा में रखने के लिए जो महत्त्व तटबंध का है वही भाषा में व्याकरण का है। भाषा में भी अनुशासन की आवश्यकता होती है, अन्यथा सभी अपने-अपने ढंग से इच्छानुसार बोलने-लिखने लगें। 'अनुशासन' में बने रहना तभी संभव है, जब व्याकरण का समुचित ज्ञान हो। यही कारण है कि पतंजलि ने 'व्याकरण' का प्रयोग न कर 'शब्दानुशासन' का प्रयोग किया और आधुनिक युग के वरिष्ठ वैयाकरण आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने अपने हिंदी व्याकरण को 'हिंदी शब्दानुशासन' नाम दिया।

1. व्याकरण का महत्त्व और उद्देश्य

1.1. इस प्रकार **व्याकरण का महत्त्व** निर्विवाद है। यह भी सत्य है कि काल बड़े-बड़े तटबंधों को तोड़ देता है। जल के वेग से तटबंध क्या बड़े-बड़े कंक्रीट के बाँध टूट जाते हैं और बाद में सामान्य स्थिति होने पर पुनः तटबंधों/बाँधों का निर्माण होता है। प्रयत्न किया जाता है, पहले से दृढ़ तथा स्थायी हों। इसी प्रकार भाषा भी व्याकरण के नियमों/उपनियमों की परवाह किये बिना अपने प्रवाह में बहती है और अनेक नियमों की अवहेलना कर आगे बढ़ती है, फलतः, कालान्तर में, व्याकरण को भी अपने नियमों में परिवर्तन करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि व्याकरण की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है क्योंकि उसके बिना भाषा के प्रयोग में अव्यवस्था तथा उच्छृंखलता आ जाएगी। व्याकरण साध्य नहीं, मात्र भाषा-ज्ञान का साधन है। व्यक्ति भाषा का ठीक प्रयोग करें, मौखिक अभिव्यक्ति ऐसी हो जो दूसरे व्यक्ति को बोधगम्य हो, लैखिक अभिव्यक्ति ऐसी हो जो स्पष्ट हो।

1.2. भाषा-शिक्षण में व्याकरण का एकमात्र उद्देश्य है—विद्यार्थी/

शिक्षार्थी को शुद्ध भाषा-प्रयोग में कुशल बनाना। अगर इस उद्देश्य की पूर्ति बिना व्याकरण के हो जाए तो फिर व्याकरण के झमेले में पड़ने की क्या आवश्यकता? आखिर उद्देश्य भी तो शुद्ध भाषा प्रयोग मात्र है, जिसको अन्य साधनों से प्राप्त किया जा सकता है।

भाषा तो अर्जित की जाती है और वह भी व्यवहार से। इस अर्जित भाषा के माध्यम से परस्पर व्यवहार किया जाता है, निजी विचारों का प्रेषण किया जाता है। यही प्रेषण यदि संभव हो जाए तो उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। ऐसी स्थिति में शुद्ध/अशुद्ध भाषा का विचार अब पुराना पड़ गया है/हाँ इतना अवश्य है कि प्रेषण के लिए प्रयुक्त वाक्य कहाँ तक स्वीकृत है और कहाँ तक अस्वीकृत, इसकी ओर ध्यान रखा जाता है। एक ही विचार की अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत पाँच वाक्यों में तीन 'स्वीकृत' माने जा सकते हैं, एक को स्वीकार किया जा सकता है और एक अस्वीकृत या अमान्य। मुख्य समस्या अस्वीकृत तथा अमान्य वाक्यों से बचने की है। कभी-कभी ऐसे वाक्यों के अर्थ में अस्पष्टता होती है और कभी कोई भिन्न अर्थ निकलता होता है।

1.3. भाषा-शिक्षण में व्याकरण का महत्त्व भी प्रथम तथा द्वितीय/तृतीय (अन्य भाषा) भाषा की दृष्टि से भिन्नता रखता है। प्रथम भाषा सीखने वाला बालक जब कक्षा में आता है तो भाषा का प्रयोग करता हुआ आता है। यह भाषा वह अपने परिवेश से सीखता है। भिन्न-भिन्न परिवेशों से आए बालक, एक ही भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों का प्रयोग करते हैं और उनको भाषा के मानक स्वरूपों का ज्ञान कराया जाता है, जबकि द्वितीय भाषा का अध्ययन सबको समान रूप से कराया जाता है, जिसे भिन्न-भिन्न विद्यार्थी अपनी क्षमता के अनुसार सीखते हैं।

उक्त विवरण से इतना स्पष्ट हो जाता है कि व्याकरण का महत्त्व है। पर यह विवादास्पद ही नहीं पर्याप्त विवादास्पद है कि आखिर व्याकरण को पढ़ाया जाए अथवा नहीं। एक ओर ऐसा वर्ग है जो भाषा-शिक्षण में व्याकरण को अनिवार्य मानता है क्योंकि उससे ही भाषा के अशुद्ध प्रयोग से बचा जा सकता है जबकि दूसरी ओर एक वर्ग है जो इसके शिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं समझता क्योंकि विद्यार्थी भाषा के अध्ययन के साथ स्वतः ही व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ये दोनों पक्ष एकदम विपरीत हैं पर इस बात से सभी सहमत हैं कि व्याकरण के अन्तर्गत आवश्यक तत्त्वों पर प्रकारान्तर से बल देना चाहिए।

2. व्याकरण-शिक्षण की विभिन्न विधियाँ

व्याकरण के आवश्यक तत्त्वों की जानकारी किस प्रकार दी जाए इसके लिए अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। कुछ प्राचीन काल से चली आ रही हैं और कुछ

नई बनी हैं। ये पद्धतियाँ इस प्रकार हैं :

2.1. सूत्र पद्धति।
2.2. पाठ्य पुस्तक पद्धति।
2.3. विश्लेषणात्मक पद्धति।
2.4. प्रासंगिक पद्धति।
2.5. प्रयोग पद्धति।

2.1. सूत्र पद्धति

यह पद्धति परंपरागत है जिसके अनुसार व्याकरण के नियम-उपनियम सूत्रबद्ध कर लिए जाते हैं और उनको विद्यार्थियों को रटा दिया जाता है। प्राचीन काल में सस्कृत के शिक्षा ग्रंथों तथा व्याकरण ग्रंथों में इस प्रकार के सूत्र ही होते थे जिनको भाष्य कर समझाया जाता था। यही पद्धति हिंदी व्याकरण के साथ भी प्रारंभ में रही जिसके कारण व्याकरण के प्रति विद्यार्थियों में अरुचि उत्पन्न हो गई। वस्तुतः 'सूत्र पद्धति' में भाष्य तथा उपयुक्त सरस उदाहरणों को जोड़ दिया जाए, अशुद्ध उच्चारण या लेखन होने से कितने भयंकर परिणाम हो सकते हैं इस बात को रोचक उदाहरणों से समझाया जाए तो सरसता आ सकती है। मात्र सूत्र रटाना नीरस तथा शुष्क तो है ही आज के युग में नितान्त अ-मनोवैज्ञानिक भी है।

2.2. पाठ्य पुस्तक पद्धति

यह ऐसी पद्धति है जिसका आधार व्याकरण की पुस्तक होती है। इस पुस्तक में व्याकरण के विभिन्न पक्षों पर आवश्यकतानुसार संक्षेप/विस्तार में चर्चा होती है, प्रारंभ में व्याकरणिक कोटि की परिभाषा, उसके भेद-विभेद तथा व्याख्या व नियम-उपनियम, मय उदाहरणों के प्रस्तुत किये जाते हैं जिनको आधार मानकर कक्षा में अध्यापक पढ़ाता है। यह पहली पद्धति का ही विकसित रूप है। इसमें भी नियमों पर बल दिया जाता है जिनको बिना सोचे-समझे विद्यार्थी रट लेता है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी को 'व्याकरण' शब्द मात्र से अरुचि हो जाती है। पृथक् से पुस्तक तथा निश्चित समय होने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे व्याकरण भाषा से कुछ पृथक् है।

आधुनिक काल में कई नवीन पद्धतियाँ विकसित हो गई हैं फिर भी पृथक् से प्रथम/द्वितीय भाषा के लिए विभिन्न स्तरों की छोटी-बड़ी व्याकरण की पुस्तकें बाज़ार में तैयार मिलती हैं। लेखकों के अनुसार इनका स्तर अच्छा-बुरा हो सकता है। यहाँ तक कि राष्ट्रीय शिक्षक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में भी इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकें तैयार करवायी गई हैं।

2.3. विश्लेषणात्मक पद्धति

इस पद्धति में स्वतंत्र रूप से नियम-उपनियम देकर ऐसे पर्याप्त प्रयोग लिए जाते हैं जिनमें अभीष्ट नियम परिलक्षित हो तत्पश्चात् इन प्रयोगों/अभ्यासों के द्वारा नियम निकलवाया जाता है। फिर उस नियम की अन्य उदाहरणों से पुष्टि की जाती है। वस्तुतः यह 'आगमन-निगमात्मक' पद्धति है। इस प्रकार के व्याकरण की उपयोगिता विश्व के सभी देशों में स्वीकार की गई है। हाँ, जहाँ भाषा के उच्चरित रूप पर बल दिया जाता है, वहाँ स्वतः ही इस प्रकार से व्याकरणिक बिंदु स्पष्ट होते हैं। एक से उदाहरण प्रस्तुत कर उदाहरणों की सहायता से सामान्य नियम का स्पष्टीकरण स्वतः हो जाता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'ने' नियम सिखाने के लिए इससे संबंधित सभी उदाहरण पहले प्रस्तुत किये जाएँ, जैसे :

बालक ने जलेबी खायी।
बालकों ने जलेबी खायी।
मोहन ने जलेबी खायी।
राधा ने जलेबी खायी।
बालिका ने जलेबी खायी।
बालिकाओं ने जलेबी खायी।

इन छह वाक्यों में प्रारंभिक अंशों के एकवचन-बहुवचन तथा पुल्लिंग-स्त्रीलिंग में बदलने पर भी क्रियारूप समान रहता है अतः निष्कर्ष निकलता है कि कर्त्ता में जब 'ने' लगा हो तो क्रिया से उसका व्याकरणिक संबंध नहीं रहता। इस प्रकार 'आगमन-निगमानक विधि' से इस नियम को पढ़ाया जा सकता है। नियम बताकर उदाहरणों से पुष्ट करना 'निगमन' है, और उदाहरणों से नियम निकलवाना 'आगमन' है। इन दोनों का सम्मिलित प्रयोग होने के कारण, पद्धति को 'आगमन-निगमन' न कहकर विश्लेषणात्मक कहना अधिक उपयुक्त है। भाषा-शिक्षण की अमरीकी पद्धति में ड्रिलिंग पर विशेष ज़ोर है, अतएव वहाँ इसी प्रकार के अभ्यास पर ज़ोर दिया जाता है। रूस में भी प्रारंभिक युग में औपचारिक व्याकरण पर ही विशेष बल दिया जाता था अब श्रव्य भाषा पर अधिक है फिर भी व्याकरण का महत्त्व तो है ही।

2.4. प्रासंगिक पद्धति

यह पद्धति भी अच्छी है क्योंकि इसके अनुसार व्याकरण के नियमों को प्रसंग के अनुसार प्रयोग द्वारा समझाया जाता है। पाठ्य पुस्तक के अध्यापन के समय बीच में प्रसंग देखकर, शिक्षक को व्याकरण की बात बताने के लिए उपयुक्त स्थल ढूंढ़ना पड़ता है। इससे विद्यार्थी तो बिना श्रम के नियमों

को हृदयंगम कर लेता है, किंतु शिक्षक को पर्याप्त श्रम करना पड़ता है। यदि इसके साथ विश्लेषणात्मक पद्धति का सम्मिश्रण कर लिया जाए तो यह पद्धति अधिक उपयोगी और सरल हो जाती है और विद्यार्थी/शिक्षार्थी पर स्थायी प्रभाव छोड़ती है।

2.5. प्रयोग पद्धति

इस पद्धति द्वारा व्याकरण की शिक्षा बिल्कुल नहीं दी जाती किंतु यह प्रयास किया जाता है कि अच्छे लेखकों द्वारा लिखी सामग्री को ही प्रस्तुत किया जाए जिसको पढ़कर सीखने वाले को बिना जाने ही शुद्ध भाषा को सीखने की ओर प्रेरित किया जा सके।

3. शिक्षण पद्धतियाँ और व्याकरण के विभिन्न स्वरूप

इन सभी पद्धतियों को मोटे तौर पर तीन प्रकार से बाँट सकते हैं :

3.1. **औपचारिक व्याकरण**—प्रथम दो पद्धतियाँ इसमें समाहित हो जाती हैं। व्याकरण के किसी सूत्र या नियम की जानकारी विद्यार्थी को कराते हैं तो, एक प्रकार से, हम सैद्धांतिक पक्ष पर बल दे रहे हैं।

3.2. **प्रसंग के अनुसार व्याकरण**—बिना किसी नियम की जानकारी दिए जब कभी कोई प्रसंग आए अथवा रचनाभ्यास में शुद्ध लेखन पर ज़ोर दिया जाए साथ ही मुहावरेदार भाषा लिखना सिखाया जाए, तो अप्रत्यक्ष रूप से व्याकरण आ जाती है।

3.3. **व्यावहारिक व्याकरण**—विभिन्न प्रकार के प्रयोग विद्यार्थी के समक्ष रखे जाएँ और उन प्रयोगों के आधार पर ही व्याकरण के नियम जाने-अनजाने सिखाये जाएँ। किस प्रकार कर्त्ता की क्रिया से अन्विति होती है यह बात नियम न देकर पर्याप्त प्रयोगों से स्पष्ट की जाए :

मोहन पढ़ता है।	राधा पढ़ती है।
मोहन खाता है।	राधा खाती है।
मोहन जाता है।	राधा जाती है।
मोहन आता है।	राधा आती है।
पु० एकवचन=धातु+आ	स्त्रीलिंग एकवचन=धातु+ई

इस प्रकार प्रयोगाभ्यास से आवश्यक नियमों को दिया जाए। आधुनिक शिक्षण पद्धति में अभिरचना-अभ्यास भी प्रकारान्तर से यही विधि है। व्यवहार अभ्यास से आता है अतएव उचित यही है कि किसी भी नियम से संबंधित पर्याप्त अभ्यास कराये जाएँ और प्रकारान्तर से नियमों पर बल दिया जाए।

अभ्यास के महत्त्व को मानते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अन्य भाषा शिक्षण-द्वितीय/तृतीय में संरचनात्मक व्याकरण के विविध पक्षों पर कक्षा

में सीधे भी सिखाना होगा, उसको व्यवस्थित रखना होगा और क्रमश: एक-एक पक्ष को स्पष्ट करना होगा। सिद्धांत और अभ्यास परस्पर पूरक हैं। अभ्यास के बाद सिद्धांत दिये जा सकते हैं और कभी सिद्धांत के स्पष्टीकरण के बाद अभ्यास।

3.4. प्रस्तुतीकरण की विधि :

उक्त तीनों प्रकारों के प्रस्तुतीकरण की विधि में कोई विशेष अन्तर नहीं है फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से इनको इस प्रकार रख सकते हैं :

	औपचारिक	प्रसंग के अनुसार	व्यावहारिक
उदाहरण	√	√	√
तुलनात्मक विश्लेषण	√	√	√
सिद्धांत निरूपण	√	×	√
अन्य उदाहरणों द्वारा पुष्टीकरण	√	×	√
अभ्यास	×	√	√

इस प्रकार व्यावहारिक व्याकरण को पढ़ाना ही सर्वाधिक उपयुक्त है।

4. व्याकरण किन कक्षाओं से पढ़ाया जाए

इस संबंध में सभी सहमत हैं कि प्राथमिक कक्षाओं में व्याकरण की न तो पढ़ाई की आवश्यकता है और न पृथक् से किसी पुस्तक की। गद्य पाठों को ही इस क्रम से रखा जाए कि एक पाठ में एक व्याकरणिक पाठ्य बिंदु/वाक्य साँचा आ जाए। मातृभाषा से इतर जब किसी भाषा की पढ़ाई अन्य भाषा के रूप में प्रारंभ की जाए तो पाठ्य-पुस्तक का निर्माण ही इस विधि से होना चाहिए। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में जो प्रारंभिक कक्षाओं के लिए पहली पाठ्य-पुस्तक (कक्षा 5 अथवा 6) तैयार की गई उसके लिए भाषिक पाठ्य बिन्दु इस प्रकार रखे गए :

1. यह···है। /किताब, लड़का, विद्यार्थी/
2. वह···है। /लड़का, लड़की/
3. ये···हैं। /लड़के, लड़कियाँ/
4. वे···हैं। /लड़के, लड़कियाँ/
5. यह क्या है?
6. वह+विशेषण पूरक+है। /बीमार, चतुर आदि/
7. तुम···हो।
8. मैं···हूँ।

9. हम…हैं।
10. आप…हैं।
11. यह कौन है ?
12. (कर्ता)+-आदेश प्रार्थना।

इस प्रकार प्रारंभिक कक्षाओं में 26 बिन्दु रखे गए हैं और स्तर के अनुसार यही क्रम दसवीं कक्षा तक बढ़ता जाता है और जितने भी संभव वाक्य साँचे हो सकते हैं सभी का ज्ञान कराया गया है, यहाँ तक कि क्रियाओं के विविध पक्षों का भी :

प्रथम भाषा की माध्यमिक कक्षाओं के लिए व्याकरण की पृथक् से पाठ्य पुस्तक की आवश्यकता उतनी नहीं है जितनी कि अभ्यास-पुस्तिका की आवश्यकता है जिससे बोलने-लिखने में शुद्धता आए और भाषा की एकरूपता स्थिर बनी रहे। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक व्याकरण पर बल दिया जाना स्वाभाविक है। व्याकरण को बिल्कुल हटा देना भी भूल होगी और नियमों की भरमार कर देना भी, अतएव मध्यम मार्ग का अनुसरण करना ही श्रेयकर है।

5. कक्षा तथा पद्धति

किस कक्षा में किस पद्धति से व्याकरण की शिक्षा दी जाए? वैसे प्रबुद्ध अध्यापक किसी एक पद्धति का अनुसरण नहीं करता, आवश्यकतानुसार वह पद्धति बदलता रहता है। सामान्यतः प्रथम तीन कक्षाओं तक तो व्याकरण-शिक्षण की बात होनी ही नहीं चाहिए। मात्र शुद्ध प्रयोग पर बल दिया जाए। इसके बाद चौथी कक्षा से सातवीं-आठवीं (मिडिल) कक्षा तक प्रयोग के माध्यम से ही व्याकरण के विविध पक्ष पढ़ाये जाएँ। इसमें अध्यापक को विशेष परिश्रम करना होगा।

इसके बाद की कक्षाओं में सभी पद्धतियों का समन्वित रूप अपनाया जा सकता है क्योंकि इन कक्षाओं में ही व्याकरण का सम्यक् ज्ञान प्रदान करना अपेक्षित है अर्थात् नियमादि का पूरा-पूरा ज्ञान। इस स्तर पर प्रयोगात्मक, या व्यावहारिक किसी भी प्रकार की व्याकरण की पुस्तक का सहारा लिया जा सकता है।

सैद्धांतिक पक्ष पर बल देने से भाषा-प्रवाह में बाधा पड़ती है, और उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है अतएव उच्च कक्षाओं में 'रचना' के लिए निश्चित कालांश में ही व्याकरण से संबंधित पक्ष ले लिए जाएँ, पृथक् से किसी कालांश की आवश्यकता नहीं है। शेष कालांश में खूब पढ़ने, खूब सुनने और प्रयोग करने पर बल देना चाहिए। लक्ष्य 'वातावरण-निर्माण' होना चाहिए जिससे विद्यार्थी शुद्ध भाषा का प्रयोग अनुकरण की विधि से सीखता चले। बिना व्याकरण के नियमों को

जाने ही तो प्रथम भाषा-भाषी भाषा सीखता है, कसे ? अनुकरण विधि से ही।

6. व्याकरण-शिक्षण में सतर्कता

व्याकरण-शिक्षण का मुख्य उद्देश्य शुद्ध तथा प्रांजल भाषा को बोलना-लिखना सिखाना है। बोलने-लिखने के क्रम में व्याकरण के नियमों का पालन किया जाए। व्याकरण के नियम मात्र पढ़ने अथवा रटने के लिए नहीं हैं वरन् समझने के लिए हैं जिससे शिक्षार्थी (बालक/प्रौढ़) में अभिव्यंजना शक्ति का विकास हो और पठित सामग्री में अर्थ ग्राह्यता बढ़ती जाए।

अशुद्धियों के आधार पर शिक्षण बिंदुओं का निश्चय किया जाए। जिस वर्ग में जिस प्रकार की अशुद्धियाँ हों उनकी संधि, समास, प्रत्यय, लिंग, वचन, विशेषण, क्रिया-विशेषण, क्रिया आदि के अनुसार वर्गीकृत कर इस प्रकार से बल दिया जाए कि भविष्य में उस प्रकार की अशुद्धियाँ फिर न हों।

पाठ्य-विषय को रुचिकर बनाया जाए। उदाहरण यथासंभव पाठ्य-पुस्तकों से लिए जाएँ अथवा दैनिक जीवन/समीप के वातावरण से लिए जाएँ।

नियम/उपनियमों की परिभाषाएँ समझायी जाएँ, न कि रटायी जाएँ। प्रश्न भी उसी प्रकार के पूछे जाएँ।

मातृभाषा से इतर अन्य भाषा-शिक्षण में पाठ्यबिंदु दोनों भाषाओं के व्यतिरेकी अध्ययन पर आधारित होने चाहिए।

व्याकरण के नियमों/उपनियमों को व्यावहारिक रूप में प्रयोग करके बताना चाहिए।

भाषा-शिक्षण के बीच बात-बात पर व्याकरण के बिंदुओं को ले आना और उन्हें समझाते रहना उचित नहीं है। इस प्रकार विषय के प्रति ही अरुचि उत्पन्न हो जाती है। व्याकरण तो साधन मात्र है जिससे शुद्ध भाषा तक पहुँचना साध्य है, अतएव साध्य हमेशा समक्ष रहना चाहिए। साध्य तक पहुँचने के लिए साधन बदले भी जा सकते हैं।

पुनश्च—व्याकरण में चार बातें आती हैं : शब्द-रचना, रूप-रचना, वाक्य-रचना, प्रोक्ति-रचना। मातृभाषा शिक्षण में इन सभी को लेना चाहिए। यदि बच्चे की बोली सिखाई जाने वाली भाषा से बहुत भिन्न है तो दोनों में शब्द-रचना, रूप-रचना तथा वाक्य-रचना का व्यतिरेकी विश्लेषण करके असमताओं को अनुस्तरित रूप में क्रमशः उदाहरणों के साथ पढ़ाना चाहिए। साथ ही अशुद्धि-विश्लेषण के द्वारा उसके वे बिंदु बार-बार लेने चाहिए, जिनमें गलती हो रही हो। द्वितीय या अन्य भाषा-शिक्षण में व्यतिरेकी विश्लेषण तथा अशुद्धि विश्लेषण की सहायता से शब्द-रचना, रूप-रचना, वाक्य-रचना तथा प्रोक्ति-रचना की असमानताएँ निकाल लेना चाहिए तथा उन्हें अनुस्तरित करके क्रमशः पर्याप्त उदाहरणों की सहायता से पढ़ाना चाहिए।

शब्दावली का शिक्षण | 12

0.0. जब हम प्रथम भाषा/अन्य भाषा के रूप में हिन्दी के शिक्षण की चर्चा चलाते हैं तो एक साथ हिन्दी की स्वन-प्रक्रिया, शब्दावली, वाक्य साँचों के रूप में संरचनात्मक गठन की कई समस्याएँ सामने आती हैं। जब हम प्रथम/द्वितीय भाषा के रूप में 'हिंदी शब्दावली' के शिक्षण की बात करते हैं तो शेष समस्याएँ भी साथ-साथ चलती हैं। शब्दावली के माध्यम से जहाँ एक ओर ध्वनि-प्रक्रिया स्पष्ट की जाती है वहाँ शब्दावली के सम्यक् प्रयोग से वाक्य-संरचना के साँचे भी दिमाग़ में बैठते हैं। जो 'शब्दावली' हम सर्वप्रथम किसी को देना चाहते हैं, सिखाना चाहते हैं वह सीमित होनी चाहिए, इसमें दो राय नहीं हो सकतीं।

1.0. यह सीमित शब्दावली ही 'बेसिक शब्दावली' के नाम से जानी जाती है। जिसके सीखने से उस भाषा का सामान्य व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह शब्दावली उस भाषा की संरचनात्मक व्याकरणिक आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। एक प्रकार से 'बेसिक शब्दावली' उस भाषा का आधार है जिस पर भाषा का समस्त ढाँचा खड़ा होता है। इस शब्दावली के एक-एक शब्द का महत्त्व नींव की ईंट की तरह होता है। इसी कारण इसको 'बुनियादी शब्दावली' भी कहते हैं। संख्या कितनी सीमित रहे और उसका आधार क्या हो ? ये दो प्रश्न हमारे सामने आते हैं। इधर हिंदी में इस प्रकार की कई शब्दावलियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनकी संख्या में वैविध्य है। यह संख्या निम्नतम 500 है और अधिकतम 5000 है। केन्द्रीय हिंदी संस्थान द्वारा प्रकाशित शब्दावली[1] की संख्या 5000 होते हुए भी जिन शब्दों की आवृत्ति दी गई है उनकी संख्या 2000 ही है, यही प्रारंभ में दिए गए हैं। मोटे रूप से शब्दावली की 2000 संख्या उपयुक्त प्रतीत होती है, यही संख्या मेरी अपनी शब्दावली[2] की है, और साथ ही भारत सरकार[3] तथा पिटमैन के लिए तैयार की गई श्री गणेशदत्त

1. 'हिंदी की आधारभूत शब्दावली,' केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
2. 'हिंदी की बेसिक शब्दावली,' डा० कैलाशचन्द्र भाटिया, मु० वि० वि०, अलीगढ़, 1968.
3. 'बेसिक हिंदी शब्दावली,' शिक्षा मंत्रालय, 1958

गौड़[1] की शब्दसूचियों की संख्या भी 2000 ही है। शेष शब्दावलियों की संख्याएँ भिन्न-भिन्न हैं। इनमें से भारत सरकार(शिक्षा मंत्रालय) द्वारा प्रकाशित शब्दा-वली को छोड़कर बाकी सभी शब्दावलियों का आधार प्रयोगावृत्ति है। इस प्रकार ये सभी समान दृष्टिकोण से तैयार की गई हैं। अँग्रेज़ी में बेसिक इंग्लिश[2] की शब्दावली 850 निश्चित की गई है।

1.1. बेसिक शब्दावली का आधार :

1.1.1. **आधार सामग्री की भिन्नता :** इस संदर्भ में मुख्य बात यह है कि क्या लिखित साहित्य के साथ-साथ बोलचाल की भाषा के नमूनों को भी लिया जाए? जितने अधिक बोलचाल के नमूने लिए जाएँगे, शब्दावली उतनी ही भिन्न हो जाएगी।

1.1.2. **कितनी बड़ी शब्दावली में से शब्दों की छाँट की गई है ?** मोटे तौर पर संस्थान द्वारा किए गए कार्य में कुल शब्द संख्या 3,20,000 है जबकि गणेशदत्त गौड़ की शब्दावली केवल 11,545 है और 'बेसिक हिंदी शब्दावली' (भाटिया) में लगभग 50,000 है। शब्दावली की कुल संख्या का प्रभाव परि-णाम पर भी पड़ता है।

1.1.3. **परिणाम प्रस्तुत करते समय शब्दों के मूल रूप की ओर ध्यान :** प्रत्येक भिन्न रूप वाले शब्द को पृथक शब्द माना जाए, जैसे चल, चलता, चलते, चलाने, चलाएँ, चला, चली, चलीं, चले, चलें, चलेंगे, चलेगा, आदि अथवा इसको एक ही धातु, 'चल्' में परिगणित किया जाए? संस्थान ने प्राय: रूपों की भिन्नता को एक ही रूप में समाहित किया है जैसे चलना(आवृत्ति 135)। 'बेसिक शब्दावली' में भी ऐसा ही किया गया, जैसे धातु 'चल्' (आवृत्ति 124), जबकि श्री गौड़ ने भिन्न-भिन्न रूपों को भिन्न शब्द स्वीकार किया है। इससे अनावश्यक रूप से मूल शब्दों की संख्या सीमित हो गई या कहें कि 2204 शब्दों में एक ही शब्द भिन्न-भिन्न रूप से विद्यमान है, अतएव मूलत: शब्द 2204 से काफ़ी कम हैं। इस शब्दावली में से 12 शब्द[3] मात्र एक चौथाई संख्या के, 69 शब्द दूसरी चौथाई संख्या के और 325 शब्द तीसरी चौथाई संख्या के हैं। शेष एक चौथाई

1. 'हिंदी शब्द तथा उनकी आनुपातिक प्रयोग गति,' गणेशदत्त गौड़, पिटमैन एण्ड सन्स, लंदन।

2. इस संबंध में ओग्डन तथा रिचर्ड्स के विचार देखे जा सकते हैं। मिशेल वेस्ट ने इस प्रकार की 2000 की शब्दावली दी है। अमेरिका में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि प्रथम ग्रेड में लगभग 16900 शब्दों का ज्ञान हो जाता है।

3. डा० ड्यूवे के परिणामों के आधार पर अँग्रेजी से मिलाइए : प्रथम ९ शब्द एक चौथाई, दूसरे 60 दूसरी चौथाई, आगे के 663 शब्द तीसरी चौथाई। तीन चौथाई संख्या में कुल 732 शब्द हैं।

में 1798 आते हैं जिनमें से अनेक शब्द ऐसे भी हैं जो एक अथवा अनेक बार किसी दूसरे रूप में पहले भी आ चुके हैं।

मेरी दृष्टि में 'मूल' रूप को ही शब्दों में परिगणित किया जाए और उसके अन्य रूपों की आवृत्ति को उसमें ही जोड़ दिया जाए। अगर ऐसा नहीं किया जाएगा तो कभी-कभी संयोग से मूल रूप छूट भी सकता है, जैसा कि एक सूची में 'लोगों,' 'पैरों' तो हैं पर इनके स्वतंत्र मूल रूप 'लोग' तथा 'पैर' नहीं हैं। योजना (16) तथा योजनाओं (5) को सम्मिलित रूप से (21) समझा जाए : साथ में बहुवचन बनाने के नियम दिए जाएँ। कभी यह भी संभव है कि मूल शब्द की आवृत्ति कम हो और उससे व्युत्पादित शब्द की अधिक, जैसे 'आवश्यक' एक आवृत्ति पर है और आवश्यकता अधिक पर। संस्थान द्वारा दी गई आवृत्ति बिल्कुल भिन्न है, क्रमशः 52,29 हैं। हाँ, व्याकरणिक रूपों की आवृत्ति से भी शिक्षण में लाभ उठाया जा सकता है। भाषा की संरचना सिखाते समय अधिक आवृत्ति वाले रूपों को पहले सिखा सकते हैं। जो निम्नतर आवृत्ति वाले रूप हैं उनको छोड़ भी सकते हैं या बाद में सिखा सकते हैं।

1.1.4. **शब्दावली में किसी शब्द विशेष (या उसका रूप विशेष) का होना**—चुनी हुई आधार सामग्री की विविधता तथा शैलीगत भेदों पर भी निर्भर होता है। उर्दू मिश्रित शैली की सामग्री लेने पर तरमीम, शिकमी, ताहम, दफ़ात, जरायें, इम्कान, अशख़ास, मुत्तफ़िक जैसे शब्द में 'शरीक' हो जाते हैं जिन पर 'एतराज' किया जा सकता है। दूसरी ओर संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से युक्त सामग्री अधिक ले लेने से परिणाम भिन्न हो जाएँगे। संस्थान की शब्दावली में प्रथम 2000 की सूची में केवल 'आकर्षण' है, शेष 3000 की सूची में 'आकर्षक' तथा 'आकर्षित' है जबकि 'आकृष्ट' कहीं भी सम्मिलित नहीं है, जबकि एक दूसरी शब्दावली (2000 की सूची) में प्रथम तीन का पता नहीं, केवल 'आकृष्ट' विद्यमान है।

मैं समझता हूँ कि इन विविध शब्दावलियों में सम्मिलित समान शब्दों (Common Core) को पृथक् सूचीबद्ध किया जाए। ऐसी सूची को हम निर्विवाद मान सकते हैं। शेष शब्दों पर विचार-विमर्श किया जाए और विभिन्न आवृत्तियों, शैलीगत भेदों को ध्यान में रखते हुए विवेक से निर्णय लिया जाए।

यहीं पर एक और मुख्य प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो अनायास ही साथ में आ जाते हैं, जैसे जब 'असली' की बात होती है तो 'नक़ली' स्वतः आ जाता है, अतएव आवृत्ति के निष्कर्ष चाहे भिन्न क्यों न हों, प्रयोग में इनकी आवृत्ति समान ही समझनी चाहिए। संस्थान की

सूची में 'असली' (आवृत्ति 22) तो 'नकली' (आवृत्ति 10) ऐसे युग्म[1] शब्दों की ओर अलग से ध्यान देना चाहिए।

1.1.5. बेसिक शब्दावली और पर्याय :

विभिन्न पर्यायों में किसको प्राथमिकता दी जाए यह समस्या भी रहती है। इस समस्या पर कुछ शब्दावलियों की भूमिकाओं में प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ, सुन्दर (141), मनोहर (65), चारु (49), मंजु (26), सुठि (22), मंजुल (18), ललित (14), अभिराम (5), कमनीय (4),ललाम (2), मनोरम (1) में से किन-किन को बेसिक शब्दावली में लिया जाए ? प्रवृत्ति के आधार पर प्रारंभिक रूप लिए जाने चाहिए। जल, वारि, नीर, पानी, सलिल, अश्रु, पाथ, तोय, अप, उदक, पय, में से आखरी छह को बिल्कुल छोड़ा जा सकता है। सामान्यतः प्रयोग में 'पानी' ही आता है पर दक्षिण भारतीय भाषाओं के संदर्भ में नीर तथा जल को भी सम्मिलित कर लेना चाहिए क्योंकि ये दोनों शब्द वहाँ विद्यमान हैं।

इसके ठीक विपरीत आधारभूत शब्दावली में शब्दों का इस प्रकार का अध्ययन होना चाहिए कि अमुक शब्द कितने भिन्न अर्थों में प्रयोग में आता है और उनमें से कितने अर्थ अन्य भाषा शिक्षण के संदर्भ में ही उपयुक्त होंगे। विशेष अर्थों को उसमें स्थान नहीं देना चाहिए।

इस प्रकार सीमित शब्दावली को ही अन्य भाषा-भाषियों को सिखाना हमारा ध्येय है। यह शब्दावली भी दो भागों में बाँटी जा सकती है। प्रथम भाग में व्याकरणिक संरचना की शब्दावली ले सकते हैं जिसको अनिवार्य शब्दावली कहा जा सकता है और इसको सिखाना प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए तथा दूसरे भाग में शेष शब्दावली।

1. डॉ० बदरीनाथ कपूर ने युग्म शब्दों को इतना अधिक महत्त्व दिया है कि समस्त शब्दावली को ही युग्मवत् करके केवल 27 व्याकरणिक नियमों के साथ 'बेसिक हिंदी' (Basic Structure of Hindi based on 555 word pairs (सन् 1965) प्रस्तुत की। इन युग्मों में से अधिक प्रचलित इस प्रकार हैं :—

उत्तर-दक्षिण, कागज-पत्र, किसान-मजदूर, खून-पसीना, खेल-खिलौने, गाँव-शहर, घर-दफ्तर, घी-मक्खन, चोर-डकैत, जूता-मोजा, दिल-दिमाग, दुख-दर्द दूध-दही, देश-विदेश नगद-उधार, नाम-पता, पान-तंबाकू, पेड़-पौधा, पैसा-रुपया, पूर्व-पश्चिम, फायदा-नुकसान, मित्र-शत्रु, सवाल-जबाव, कलम-दवात, कुर्सी-मेज, दाढ़ी-मूँछ, भूख-प्यास, सुबह-शाम, खाँसी-बुखार, चाँदी-सोना, जमीन-आसमान, दाल-चावल, धोती-कुर्ता, मक्खी-मच्छर, रद्दी-कूड़ा, रात-दिन, सुई-धागा, हँसी-मजाक, अगला-पिछला, अपना-पराया, अमीर-गरीब आदि।

2.0.0. समान शब्दावली

हमें यह भी देखना चाहिए कि जिस भाषा-भाषी को शब्दावली सिखायी जा रही है उस भाषा से हिंदी में कितनी समान शब्दावली है। उदाहरणार्थ यदि हम हिंदी-मलयालम को लें तो इस दिशा में अब तक निम्नलिखित कार्य हो चुके हैं :

1. 'हिंदी-मलयालम समान शब्दावली', शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. 'हिंदी तथा मलयालम की समान शब्दावली', डा० वेल्लियाणि अर्जुनन, मु० वि० वि० का शोध प्रबंध (अप्रकाशित)।
3. 'मलयालम तथा हिंदी की समान शब्दावली,' संस्थान की पत्रिका 'गवेषणा' (मार्च, 64 तथा सितम्बर, 64) में प्रकाशित सुश्री बी० एम० मेरी के निबंध।
4. 'Hindi-Malayalam Common Vocabulary', Smt. Shyamal Kumari, Central Institute of Indian Languages, Mysore.
5. 'A Comparative Study of the Vocabulary of Hindi-Malayalam', M. Easwari, Kerala University, 1969.

उक्त सभी प्रकाशित कार्यों में शब्दावली की संख्या में भिन्नता है। सर्वाधिक संख्या डा० अर्जुनन के अनुसार लगभग 10,000 है जबकि भारतीय भाषा संस्थान की सूची में यह संख्या लगभग 2,500 है। संस्थान ने अपनी शब्दसूची उपयोगिता की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित की है :

1.(अ) समान अर्थ के शब्द।
(ब) असमान शब्द समान अर्थ में।

2. समान भिन्नार्थी शब्द।

3. समान शब्द, समान तथा विशिष्ट अर्थ के साथ।

दोनों भाषाओं की शब्दावली की तुलना के कुछ प्रतिशत इस प्रकार हैं :
समय : 19-20 वीं शताब्दी

	तत्सम (संस्कृत)	**तद्भव**	**विदेशी**	**देशी**
हिंदी में प्रतिशत	20	70 (हिंदी)	9	1
मलयालम में प्रतिशत	58	36 (द्रविड़)	6	-

(एम० ईश्वरी के अप्रकाशित शोध प्रबंध से, पृ० 80 तथा 125)।

इस तुलनात्मक पर्यवेक्षण से हम यह निष्कर्ष स्पष्टतः निकाल सकते हैं कि

मलयालम भाषा-भाषियों को जो हिंदी की शब्दावली सिखायी जाए उसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता होनी चाहिए।

3.0.0. हिंदी तथा अन्य किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली का व्यतिरेकी अध्ययन

मेरी दृष्टि में समान शब्दावली से अधिक यह पक्ष महत्त्वपूर्ण है। दो भाषाओं में सहस्रों शब्द समान होते हुए भी हो सकता है प्रयोगावृत्ति के आधार पर दोनों भाषाओं की आधारभूत शब्दावली में सम्मिलित न हो सकें। यह कार्य तब तक संभव नहीं जब तक कि भारतीय भाषा को प्रयोगावृत्ति पर आधारित शब्दावलियाँ उपलब्ध न हों। संयोग से इस दिशा में मलयालम भाषा अग्रणी है। प्रयोगावृत्ति पर आधारित लगभग 4000 शब्दों की सूची मिलती है। इस सूची को श्री विजयनाथन पिल्लै ने तैयार किया है और भाषा संस्थान, त्रिवेन्द्रम ने भाषा-विज्ञान विशेषांक में प्रकाशित किया है।

आवृत्ति के आधार पर तैयार की गई उच्चतम से निम्नतम प्रयोगावृत्ति के आधार पर संकलित इस सूची में लगभग 1000 शब्द ऐसे हैं जो संस्कृत, अँग्रेज़ी, फ़ारसी आदि विभिन्न स्रोतों से आए हुए हैं फलतः समान हैं। प्रथम 50 शब्दों में ही तीन शब्द समान हैं। इन शब्दों में अधिकांश संस्कृत के हैं, जैसे मान, जीवित, कथा, कार्य, काल, मनुष्य, प्रवर्तन, शक्ति, जन्म, चन्द्र, मन, बन्धन, आद्य, साहित्य, पत्र, अवश्य, यन्त्र, शब्द, दिवस, प्रत्येक, कारण, अनुभव, शास्त्र, संभव, विश्वास, श्रद्धा, मुख, यात्रा, स्नेह, भूमि, रात्रि, स्थल, वस्तु, राज्य, गति, अल्प, रंग, रूप, सृष्टि, उपयोग, समय, श्री, उदय, पेटी, सुन्दर, प्रश्न, भाषा, पद्धति, चरित्र आदि। इसके बाद संख्या अँग्रेजी के शब्दों की है, जैसे, नोट, नोवल, पार्टी, इलैक्ट्रोन, काँग्रेस, सोशलिस्ट, पुलिस, आफिस, डाक्टर, मार्किट, स्टेशन, कार, माइक, एसोसिएशन, कमीशन, रोड, मेजर, गवर्नमेंट, टोन, स्टाक, स्पेस, सिगरेट, यूनियन, फैक्ट्री, कम्युनिस्ट, आफर, इंग्लिश, सीट, सेट, कालेज, ट्यूब, सिग्नल, हेल्थ, होटल, रिसीवर, रिपोर्ट, चर्च, फोटो, मैनेजर, मीडियम, मेस, स्काच आदि।

मलयालम के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि क्रियारूप भी मिलते हैं जैसे स्वीकरिक्कुक। इसी सूची में तो 10-20 ही हैं जबकि इनकी संख्या मलयालम की पूरी क्रियाओं की एक तिहाई है।

शिक्षण की दृष्टि से शब्दावली को रूप, अर्थ तथा आवृत्ति के अनुसार कई भागों में बाँटा जा सकता है। दो भाषाओं की शब्दावली को मोटे रूप से इस प्रकार रख सकते हैं :

		हिंदी	मलयालम
सरलतम	1. रूप में तथा अर्थ में समानता :	कवि	कवि
		बुद्धि	बुद्धि
		मृत्यु	मृत्यु

2. रूप में समानता लेकिन अर्थ में भिन्नता।

3. रूप में भिन्नता होते हुए भी अर्थ में समानता।

कठिनतम 4. रूप तथा अर्थ दोनों में भिन्नता।

विशिष्ट 5. दोनों भाषाओं में प्राथमिक अर्थ समान होते हुए भी किसी एक भाषा में विशिष्ट अर्थ।

मलयालम तथा हिन्दी की उस समान शब्दावली के प्रति पर्याप्त सतर्कता रखनी होगी जिनमें अर्थ दोनों भाषाओं में पर्याप्त भिन्न हो चुके हैं:

हिंदी में अर्थ		मलयालम	
		रूप	अर्थ
अनुवाद	भाषान्तर	अनुवादम्	अनुमति
अंत:	अन्त:करण	अंतरस	सामाजिक अवस्था
अपवाद	नियम के विपरीत	अपवादम्	दोष, अपमान
अपेक्षा	तुलना, इच्छा	अपेक्ष	आवेदन
अबद्ध	मुक्त	अबद्धम्	गलती, बेवकूफी

यहीं उन शब्दों की ओर भी विशेष ध्यान देना है कि जिनका सांस्कृतिक संबंध है। अनेक ऐसे फल-फूल, साग-सब्ज़ी, वस्त्र-आभूषण आदि से संबद्ध शब्दावली होती है जिनको अर्थ द्वारा समझाना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में चित्र-पद्धति की सहायता लेनी चाहिए।

कोई-कोई समान रूप का शब्द लगभग समान-अर्थ रखते हुए भी पर्याप्त भिन्न हो जाता है। उत्तर भारत में भोजन में जो 'खिचड़ी' से तात्पर्य है दक्षिण भारत में उससे भिन्न अर्थ है अतएव स्पष्ट अर्थ की जानकारी न होने पर बीमार आदमी को खिचड़ी के खाने के फेर में कुछ और खाना पड़ सकता है।

सर्वाधिक सावधान उन भ्रामक शब्दों से रहना है जो रूप मात्र में समान हैं पर पर्याप्त भिन्न अर्थ रखते हैं। वस्तुत: ये शब्द समान नहीं कहे जा सकते, अतएव इन शब्दों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जैसे:

	हिंदी	तमिल
कल	कल(समय)	पत्थर
मोर	एक सुन्दर पक्षी	मट्ठा
नाम	नाम	हम

डा० जगन्नाथन द्वारा इस प्रकार का कार्य संस्थान से प्रकाशित हो ही चुका है। इस प्रकार की कुछ शब्दावली मलयालम से यहाँ ली जा सकती है :

	हिंदी	मलयालम
तरि	नौका	कण
कलम	लेखनी	बर्तन
कायल	बात स्वीकार की हो	झील
बातल	वायु संबंधी	दरवाजा
अयाल	घोड़े के गर्दन के बाल	वह
पनीर	पनीर	इत्र
नूर	प्रकाश	सौ
पेश	आगे	लुंगी

अन्यभाषा के शिक्षण में 'सरल' शब्दावली पहले तथा 'कठिन' बाद में लेनी चाहिए।

प्रयोग-भिन्नता

हिंदी 'लगना' क्रिया के स्थान पर मलयालम में भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग करना होगा :

आग लगना	ती पिटिक्कुक
डर लगना	पेटि आकुक
देर लगना	तामसम वरुक
काई लगना	पायल् पट्टुक
भूख लगना	विशप्पुं वक्कुक

4. 0.0. कोशीय अर्थ के साथ प्रयोगार्थ

कभी-कभी कोशीय अर्थ मात्र से काम नहीं चलता। प्रयोग पर भी बल देना चाहिए। हिंदी में अभी तक प्रयोग कोश का अभाव बना हुआ है। उदाहरण के लिए 'कभी' और 'कहाँ' के प्रयोग तथा अर्थ सिखाते समय 'कभी का' और 'कहाँ का' का विशिष्ट अर्थ समझाना आवश्यक है।

उदाहरणार्थ एक शब्द 'अन्तर' ले सकते हैं। अन्तर की आवृत्ति यद्धपि कम है, फिर भी कई दृष्टियों से इसको समझाया जा सकता है। इस शब्द का कोशीय अर्थ है :

1. क्रिया प्रयोग, अन्तर करना, अन्तर होना, अन्तर पड़ना।
2. बीच, फासला, दूरी, अवकाश, दो वस्तुओं के बीच स्थान।
3. दो घटनाओं के बीच का समय, मध्यवर्ती काल।

4. ओट, आड़, परदा।
5. छेद, रंध्र।

अन्तर से बनने वाले समस्त शब्दों में से उन्हीं शब्दों को लेना आवश्यक है जिनकी आवृत्ति अधिक हो, शेष को छोड़ा जा सकता है।

एक भिन्न अर्थ में 'दूसरा' तथा 'अन्य' के लिए 'अन्तर' युक्त शब्दों की सूची भी प्रयोग के आधार पर बनायी जा सकती है, जैसे,

ग्रंथांतर, स्थानांतर, देशांतर, कालांतर, पाठांतर, रूपांतर आदि।

भाषा प्रयोग के लिए सिखायी जाती है अतएव भाषा का वास्तविक अध्ययन उसका प्रयोग सिखाना है। भाषा का ज्ञान कराने के लिए शब्दावली का चयन करना नितांत आवश्यक है। सर्वप्रथम न्यूनतम शब्दावली को छाँटना होगा। मात्र किसी धातु रूप को छाँट लेने से काम नहीं चलेगा, उसके साथ उसके प्रयोगों पर बल देना चाहिए। जैसे 'पड़' धातु के 25 विभिन्न प्रयोग मिलते हैं :

	(क)	(ख)
1.··· (क)···में (ख)··· पड़ना	पेट	भोजन
	कान	दवा
	तरकारी	नमक
	फल	कीड़े
(क)···पर (ख)···पड़ना	छत	पलंग
	पलंग	बिस्तर

2.··· (क)···में पड़ना — क¹ धर्मशाला, सराय, आदि
क² बातचीत, बात, बीच

··· (क)···पर पड़ना — क¹ बिस्तर
क² बाप, माँ

3.······पड़ना — संज्ञाओं के प्रयोग—घूँसा, लात, गला, ठंड, गर्मी, पत्थर, ओले, डाका, मौका, पड़ाव, डेरा, लागत, चैन आदि।

4.······पड़ना — विशेषणों के प्रयोग—चैन, खाली, भारी, नरम, गरम, कमज़ोर, मज़बूत, मँहगा आदि।

5.······पड़ना — अन्य धातु रूपों के साथ—जान, चौंक, हँस, कूद, घूम, चल, निकल आदि।

5.0.0. शब्दावली का चयन और आवृत्ति

शब्दावली के चयन में मात्र आवृत्ति ही आधार नहीं है। कभी-कभी कम आवृत्ति के शब्द को भी चुना जा सकता है, जैसे पूना के दकन कालेज से प्रकाशित सूची में 'करफ्यू' की एक ही आवृत्ति है। अन्य सूचियों में तो है भी नहीं। आवश्यकता पड़ने पर यही बोलचाल में अधिकतम हो जाती है। 'अन्न' शून्य आवृत्ति पर है लेकिन अन्न का, अन्न को, अन्न के, अन्न की आदि मिलकर अधिक आवृत्ति पर हैं। कभी-कभी समस्त शब्द कम आवृत्ति पर हो सकता है पर उसका कोई अंश अथवा दोनों/तीनों अंश अधिक आवृत्ति पर रहते हैं। पूना की सूची में 'अख़बार-प्रेमी' मात्र एक आवृत्ति पर है पर हम जानते हैं 'अख़बार' तथा 'प्रेमी' दोनों को बेसिक सूची में रखना चाहिए।

6.0.0. शब्द-संरचना

शब्द को तोड़कर सिखाया जा सकता है। यह प्रक्रिया दो स्तरों पर प्रस्तुत की जा सकती है :

क—आक्षरिक संरचना

ख—व्याकरणिक संरचना

आक्षरिक संरचना से उच्चारण सिखाने में भी सहायता मिलती है।

व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से शब्दावली की निम्नलिखित कोटियाँ संभव हैं :

1. मुक्त रूप	राग, धान	
2. मुक्त रूप+आबद्ध रूप	छोटा+पन	=छुटपन, छोटापन
	दास+ता	=दासता
3. आबद्ध रूप+मुक्त रूप	स+हर्ष	=सहर्ष
	सु+पुत्र	=सुपुत्र
4. मुक्त रूप+मुक्त रूप	काम+धंधा	=कामधंधा
	दीप+शलाका	=दीपशलाका
5. आबद्ध रूप+आबद्ध रूप	तार+तम्य	=तारतम्य

7.0.0. शब्द-शिक्षण तकनीक

यह तो बात कही जा चुकी है कि शब्दावली शिक्षण में सरल से कठिन और कठिन से कठिनतर की ओर चलना चाहिए। प्रारंभ में भाषा के उच्चारण तथा साँचा अभ्यास कराने के लिए आवश्यक शब्दावली को ले लेना चाहिए। प्रथम भाषा-शिक्षण में घर तथा परिवार से संबंधित शब्दावली पर बल देना चाहिए। प्रकार्य संबंधी शब्दावली भी प्रारंभ में ले लेनी चाहिए। इसके

बाद स्थितिपरक वार्तालाप से संबंधित शब्दावली को लेना चाहिए। इस प्रकार शब्दावली का उद्देश्य विद्यार्थी के मानसिक क्षितिज को विकसित करना है। उक्त दोनों प्रकार की शब्दावली के बाद तकनीकी/विशिष्ट शब्दावली को लेना चाहिए।

शब्दावली को सामान्यत: पृथक् से नहीं, अपितु वाक्यों के अन्तर्गत प्रयोग-विधि से ही समझाना चाहिए फिर भी शिक्षण की दृष्टि से कई विधियाँ हैं :

7.1. संदर्भ से अर्थ निकालना

यह विधि सर्वाधिक उत्तम मानी जाती है। इसके अनुसार सीधे अर्थ के चक्कर में न पड़कर प्रसंग से ही 'शब्द' का आशय समझने का अभ्यास कराना होता है।

7.2. व्याख्या

सांस्कृतिक शब्द के लिए व्याख्या ही एक मात्र साधन है क्योंकि अन्य भाषा में आवश्यक नहीं कि उसका प्रतिशब्द हो ही।

7.3. विलोम

वाक्य में प्रयुक्त शब्द का अर्थ समझाने के लिए या आशय निकालने के लिए विलोम भी उपयोगी होता है। जैसे 'प्रोत्साहन' समझाते समय विलोम 'निरुत्साह' की सहायता ली जा सकती है।

7.4. पर्याय

पर्याय एकार्थी नहीं मिलते हैं, कुछ-न-कुछ अर्थ-भेद अवश्य होता है। फिर भी इस विधि का सामान्यत: प्रयोग किया जाता है, क्योंकि यह समस्या के समाधान के लिए तत्काल मार्ग प्रशस्त करती है।

7.5. व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति के माध्यम से शब्द का अर्थ ही अधिक स्पष्ट नहीं होता, वरन् विभिन्न पर्यायों के मध्य सूक्ष्म अर्थ भेद भी स्पष्ट किया जा सकता है। शब्द के विविध व्युत्पादित रूपों को समझाया जा सकता है। मातृभाषा-शिक्षण में यह विशेष उपयोगी पद्धति है। अन्यभाषा-शिक्षण में ऐसे व्युत्पादित शब्दों को एक साथ सिखाया जा सकता है जो रूप में काफी समान हों। उत्साह, उत्साही, उत्साहित, उत्साहप्रद, हतोत्साहित आदि नियम बताकर अन्य शब्द भी व्युत्पन्न किए जाएँ जिससे आगे स्वत: ही शब्दार्थ समझने की आदत का विकास हो। 'भगीरथ' से 'भागीरथी' कैसे बना समझा कर 'जनक' से 'जानकी' समझाया जा सकता है। 'धनुषाकार' समझाने के बाद 'बृहदाकार' सरलता से समझ में आ

जाता है ।

उक्त पद्धतियों के अतिरिक्त चित्र, रेखाचित्र, अभिनय, प्रतिकृति, तथा प्रयोग आदि के द्वारा भी शब्दार्थ स्पष्ट किया जा सकता है। कोई एक पद्धति ही हमेशा कारगर नहीं होती। जब जहाँ जिस पद्धति से स्पष्टता संभव हो वहाँ वही अपनानी चाहिए। विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 'शब्दावली' का चयन किया जाता है। सामग्री-निर्माण में भी उसी प्रकार की शब्दावली पर बल देना चाहिए जो पहले से उस भाषा में विद्यमान है। सिखायी गई शब्दावली के आधार पर विस्तार करना चाहिए तथा नये शब्दों को उचित संदर्भ में प्रयोग करना सिखाना चाहिए।

दृश्य-श्रव्य तथा प्रोद्योगिकी | 13

0.0. आवश्यकता तथा उपयोगिता

शिक्षण में और विशेष रूप से भाषा-शिक्षण में सहायक सामग्री का विशेष महत्त्व है। भाषा-शिक्षण को सहज और सरल, साथ ही उन्नत करने में सहायता पहुँचाने वाली सामग्री को 'सहायक-सामग्री' की संज्ञा दी जाती है। किसी को भी मात्र वर्णन तथा विवेचन से दी जाने वाली शिक्षा सफल नहीं होती जितनी सहायक सामग्री के माध्यम से। यह सिद्ध हो चुका है कि जिस सीमा तक बालक/प्रौढ़ की ज्ञानेन्द्रियों को क्रियाशील रखा जाएगा उतना ही अधिक प्रभाव पड़ेगा। जिस पद्धति में सीखने वाला निष्क्रिय श्रोता मात्र रह जाए वह अधिक कारगर नहीं। यही कारण है कि आज शिक्षण-विधि को प्रभावी तथा सजीव बनाने के लिए दृश्य-श्रव्य उपकरणों की आवश्यकता का अनुभव तेज़ी से किया जाने लगा है। भाषा को जीवन्त भाषा के रूप में सिखाने के लिए दैनिक प्रयोग में आने वाली भाषा को ही प्राथमिकता दी जाए। प्रभावी शिक्षण के लिए चित्रात्मक सामग्री का उपयोग किया जाए। अन्यभाषा शिक्षण में भी स्थितिपरक (Situational) सामग्री को अधिक उपयोगी समझा जाता है अतएव पाठ के साथ ही उस स्थिति का रेखाचित्र, फोटो दे दिया जाता है। दर्शन के क्षेत्र में प्रारंभ से ही रूसो, पेस्तालॉजी, कैमेनियस जैसे दार्शनिकों ने इस प्रकार की सहायक सामग्री को उपयोगी बताया है। रूसो ने तो निरर्थक शब्दपरक ज्ञान की निन्दा की और प्रत्यक्ष अनुभव को महत्त्व दिया।

'प्रत्यक्ष अनुभव' के लिए ही तो दृश्य उपकरणों की आवश्यकता है। दृश्य उपकरणों की सहायता से (1) पाठ्य सामग्री को सरस तथा सरल बनाया जा सकता है; (2) विषय को स्पष्ट किया जा सकता है; (3) विषय को रोचक शैली में बोधगम्य बनाया जा सकता है; (4) ज्ञानेन्द्रियों और कभी-कभी कर्मेन्द्रियों को क्रियाशील रखा जा सकता है; (5) प्रत्यक्ष अनुभव होता है जिससे स्वयं सीखने की प्रेरणा मिलती है; (6) क्रमिक रूप से विचार-श्रृंखला को स्थायित्व प्राप्त होता है; (7) प्रत्यय निर्माण और सही अर्थ ग्रहण में सहायता मिलती है जिससे शब्द भंडार में पर्याप्त वृद्धि होती है।

सहायक सामग्री में दृश्य-श्रव्य उपकरणों की आवश्यकता और उनके महत्त्व के बाद शिक्षक को इन सब का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए कि इस सामग्री में से किसका, कब, कैसे और कितना उपयोग करें। ज्ञान को अधिक स्पष्ट और चिरस्थायी बनाने के लिए तथा अवधान को बनाए रखने, साथ ही इन्द्रियों को क्रियाशील रखने के लिए इनका उपयोग नितान्त आवश्यक हो गया है। विवेचनात्मक दृष्टि से सामग्री की छाँट हो और प्रदर्शित करने से पूर्व उद्देश्य स्पष्ट हो (पाठ या इकाई के सामान्य और विशिष्ट दोनों प्रकार के उद्देश्यों पर विचार कर लेना चाहिए।) उपयुक्त समय पर ही इसमें से किसी एक अथवा दो का प्रयोग हो जिससे अधिकतम प्रभावशाली सिद्ध हो। किसी सामग्री का प्रदर्शन बार-बार तभी किया जाए जब नितान्त आवश्यक हो, (किसी परिस्थिति की पुनरावृत्ति किसी व्यक्ति में उतना ही परिवर्तन ला सकती है जितना कि तार (Wire) का संदेश तार को बदलता है—(थॉर्नडाइक) अन्यथा ठीक नहीं।

इस प्रक्रिया से पुनर्बलन संभव है। किसी भी सामग्री को दुबारा दिखाने से पूर्व यह विचार कर लेना चाहिए कि इससे क्या कुछ नये विचारों को फिर से ग्रहण करने में सहायता मिलेगी अथवा उनको वर्गीकृत करने में, अथवा मात्र पुनर्बलन है।

भाषा-शिक्षण का उद्देश्य जैसा कहा जा चुका है, विभिन्न कौशलों के अतिरिक्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को क्रियाशील बने रहने का अवसर प्रदान करना भी है। अवसर प्रदान करना मात्र सक्रिय रखने के लिए नहीं है वरन् चिन्तन प्रक्रिया को भी विकसित करने के लिए है।

शिक्षण के समय कुछ वस्तुएँ/धारणाएँ ऐसी होंगी जो अमूर्त होंगी अतएव उन्हें मौखिक साधनों द्वारा समझाया जाएगा, कभी-कभी दृश्य साधनों द्वारा भी और जो मूर्त होंगी उन्हें दृश्य-श्रव्य उपकरणों द्वारा। इस प्रकार इन्द्रियों को यदि मूलाधार माना जाए तो इन सब उपकरणों का विभाजन होगा :

1. दृश्य
2. श्रव्य
3. स्पर्श
4. दृश्य-श्रव्य

इन सभी साधनों/उपकरणों को नई विधि से भी विभाजित कर सकते हैं—परम्परागत; स्वनिर्मित तथा प्रोद्योगिकी। यहाँ सभी प्रकार के साधनों का विवरण दिया जाएगा विशेष रूप से प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में विकसित नवीनतम विधाओं का।

1.1.0. दृश्य उपकरण

सहायक उपकरणों में दृश्य साधन/उपकरण का विशेष स्थान है। बालक

भाषा तो अनुकरण से ही सीखता है, उपयुक्त सामाजिक परिवेश में बालक अन्यभाषा (द्वितीय/तृतीय) बड़े सहज भाव से अनुकरण से सीख जाता है, मातृभाषा तो इसी विधि से सीखता है। इस प्रकार दृश्य उपकरण कक्षा में वातावरण की सृष्टि करने में सहायक होते हैं। सभी परिस्थितियों/घटनाओं को वह प्रत्यक्ष दर्शन से नहीं सीख सकता। अतएव मातृभाषा से अपेक्षाकृत अन्य भाषा-शिक्षण (द्वितीय/तृतीय) में दृश्य उपकरणों का अधिक महत्त्व स्वयं सिद्ध है। इन दृश्य साधनों/उपकरणों को कई प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। प्रक्षेपण को महत्त्व देते हुए डा० किशोरीलाल शर्मा ने 'हिंदी शिक्षण : श्रव्य-दृश्य प्रक्रिया' में पृ० 40 पर इन दृश्य उपादानों को दो वर्गों में विभाजित किया है :

1. अप्रक्षेपित
2. प्रक्षेपित

अप्रक्षेपित उपादानों के अन्तर्गत यथार्थ वस्तुएँ, प्रतिरूप, नमूने, पर्यटन, अभिनय, चित्र, रेखाचित्र, कार्टून, पोस्टर, फ्लैनलग्राफ़ या खद्दरोग्राफ़, छायाचित्र, फ्लैश कार्ड, डायोरमा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जबकि प्रक्षेपित उपादानों के अन्तर्गत चलचित्र, चित्रपट्टी, फलक तथा अन्य मूक चित्र उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा भाषा-शिक्षण के विभिन्न अंगों, वाक्यों के विभिन्न साँचों, सूक्तियों, विभिन्न सांस्कृतिक प्रसंगों में प्रयुक्त शब्दों, अर्थबोध के तथ्यों, वर्णों के साँचों, मुहावरों, वाक्यांशों, लिपि, रचना, व्याकरण के विभिन्न अंगों एवं उपांगों, उच्चारण, भाव-प्रकाशन आदि का चमत्कारिक ढंग से अनायास ही बोध कराया जा सकता है (वही, पृ० 45)।

पर यहाँ विभाजन भिन्न ढंग से किया जा रहा है :

1. पट्ट (बोर्ड)
2. चित्रादि (पिक्चर)
3. प्रक्षेपक (प्रोजेक्टर)
4. चित्रपट्टिका (फ़िल्म-स्ट्रिप)

1.1.1. पट्ट (बोर्ड)

पाठ्य पुस्तक के बाद सर्वाधिक सुलभ साधन विभिन्न प्रकार के बोर्ड हैं :

1. श्याम पट्ट (ब्लैक बोर्ड)
2. नम्दा पट्ट (फ़ेल्ट बोर्ड)
3. चुम्बकीय पट्ट (मैग्नेटिक बोर्ड)

1.1.1.1. श्याम पट्ट (ब्लैक बोर्ड)

भारत जसे विकासशील देश में वैसे सभी प्रकार के दृश्य उपादान उपलब्ध

हैं पर देश की विशालता तथा निर्धनता को देखते हुए यही एक ऐसा दृश्य उपकरण है जिसको भी कठिनाई से सभी स्थानों पर उपलब्ध कराया जा सकता है। इस दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। अब यह आवश्यक नहीं कि यह श्याम (ब्लैक) ही हो, हरे रंग के शीशे के बोर्ड भी अनेक संस्थानों में उपलब्ध हैं। यही कारण है कि अब इसका नाम 'चॉक-बोर्ड' कहना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। सामान्यत: सफ़ेद (कभी-कभी रंगीन) चॉक का प्रयोग श्याम अथवा हरे पट्ट पर किया जाता है यद्यपि नये अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि गहरे नीले अथवा बैंगनी रंग की चॉक के प्रयोग से लिखी गई सामग्री का अधिक प्रभाव पड़ता है और यही यदि हल्के पीले रंग के बोर्ड पर हो तो क्या कहना। यदि संभव हो तो कक्षा में दो बोर्ड रखे जाएँ जिनमें से एक पर पाठ का सारांश साथ-के-साथ बढ़ता जाए और दूसरे पर उद्धरण, उदाहरण आदि। यदि बड़ा बोर्ड है तो उसको ही दो भागों में बाँटा जा सकता है अन्यथा पाठ के सारांश को बोर्ड पर लाने की चिन्ता अध्यापक को छोड़ देनी चाहिए।

बोर्ड का प्रयोग रेखाचित्र, चित्र, मानचित्र, ग्राफ़ आदि के लिए किया जा सकता है। यदि कोई जटिल समस्या है तो 'वृक्ष' अथवा 'समस्या-समाधान के गुरु' (एल्गोरिथ्म) के माध्यम से भी समझाया जा सकता है। अच्छा यही रहेगा कि बोर्ड पर सरल रेखाचित्र ही खींचे जाएँ। जटिल रेखाचित्रों को कक्षा में पृथक् से वितरित किया जाए।

तकनीकी शब्द, केन्द्रीय भाव तथा परिभाषाएँ बोर्ड पर स्पष्ट लिखी जाएँ तथा नये शब्दों की वर्तनी को विशेष सावधानी से लिखा जाए। शिक्षक की लेख-प्रक्रिया स्पष्ट होनी चाहिए। रोमन में तो बड़े अक्षरों (कैपीटल लेटर्स) का प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता है नागरी में रेखांकित किया जा सकता है। बोर्ड पर स्पष्ट लेखन/रेखांकन/चित्रांकन विद्यार्थियों को नोट्स लेने की ओर आकर्षित करता है। स्थायी महत्त्व की सामग्री एक ओर लिखनी चाहिए, शेष सामग्री को थोड़ी देर बाद मिटाया जा सकता है। अगर पाठ का संक्षिप्त रूप विकसित किया जा रहा है तो वह दुहराने में भी सहायक सिद्ध होता है। शिक्षण में बोर्ड का महत्त्व सर्वाधिक है फिर भाषा-शिक्षण में यह अनिवार्य है जिसके बिना कक्षा की कल्पना ही नहीं की जा सकती। विद्यार्थी को बुलाकर भी इसके प्रयोग के लिए कहा जा सकता है।

भाषा-शिक्षण में निम्नलिखित बातों के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है :

(क) सही वर्तनी।

(ख) शब्द-निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करना। प्रत्यय, उपसर्ग आदि के विवेचन के साथ ही नये शब्द बनवाये जा सकते हैं।

(ग) भाषा के तत्त्वों का स्पष्टीकरण।

(घ) महत्त्वपूर्ण संदर्भ की ओर ध्यान दिलाना।
(ङ) सार-लेखन।
(च) लेखन कार्य में विचार-बिन्दु संकलित करना।
(छ) पदबंध/ सूक्ति का स्पष्टीकरण।
(ज) चित्र, रेखाचित्र, मानचित्र आदि।
(झ) समस्या, रूपरेखा आदि।

कोई-कोई शिक्षक निरंतर बोर्ड पर लिखता रहता है जिससे गति तो धीमी हो जाती है साथ ही कक्षा निष्क्रिय। यही कारण है कि कुछ आवश्यक बातें पहले से बोर्ड पर लिख लेनी चाहिए और जब तक आवश्यक न हो, उसे ढक कर रखना चाहिए। भाषा-शिक्षण के अन्तर्गत श्रुतलेख, वाक्य-विश्लेषण, वाक्य रचना आदि विभिन्न क्षेत्रों में क्या भिन्न-भिन्न प्रक्रिया अपनायी जाए, यह शिक्षक को पहले से निश्चित कर लेना चाहिए। अन्य भाषा-शिक्षण (द्वितीय या तृतीय) में व्यतिरेकी अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए बोर्ड बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

आवश्यकता न होने पर बोर्ड को साफ़ कर देना चाहिए। किसी शब्द/भाव पर बल प्रदान करने के लिए नीचे लिखी सावधानियाँ रखनी चाहिए :

(अ) बोर्ड पर अधिक भीड़-भाड़ न होने दें।
(आ) अनावश्यक शब्दों/पंक्तियों को मिटाते जाएँ।
(इ) रंगीन चॉक का कभी-कभी प्रयोग।
(ई) मुख्य शब्द/भाव को रेखांकित करें अथवा उसको रंगीन चॉक से चारों ओर से बंद कर दें।
(उ) आवश्यकतानुसार अक्षरों की आकृति छोटी-बड़ी हो।

1.1.1.2. नम्दा पट्ट (फेल्ट बोर्ड)

वस्तुतः यह एक ऐसा बोर्ड है जिस पर नम्दा या बिलयर्ड का कपड़ा चढ़ा होता है। इस बोर्ड के अन्य कई नाम हैं जैसे फ्लैनलग्राफ़, प्लास्टीग्राफ़ आदि। इसको ही खद्दरोग्राफ़ कहते हैं। वस्तुतः यह इस प्रकार का बोर्ड है जिस पर आकृति, रेखाचित्र, सूक्ति आदि को चिपकाया जा सकता है। यह बड़े आकार के भी बनाये जा सकते हैं। कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या के अनुसार आकार को छोटा-बड़ा किया जा सकता है। इस विधि से वार्ता में रुकावट पैदा नहीं होती, शिक्षक अपनी गति से आगे बढ़ता जाता है और उपयुक्त समय पर नाटकीय ढंग से बोर्ड पर प्रस्तुत कर देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं, चॉक बोर्ड की तुलना में इससे अध्यापक की बहुमुखी प्रतिभा में कमी होती है, पर इससे गति आती है और यह दुहराने तथा पुनर्व्यवस्था में सहायक सिद्ध होता है।

इस बोर्ड पर विभिन्न आकृतियाँ जल्दी से चिपकायी जा सकती हैं और

उखाड़ी जा सकती हैं और फिर कभी भिन्न परिस्थिति में उसी कक्षा में अथवा अन्य किसी कक्षा में उपयोग किया जा सकता है। उपयोग में लाने से पूर्व पर्याप्त तैयारी करनी होती है अतएव समयसाध्य है पर एक बार तैयारी हो जाने पर बार-बार उसका/उनका उपयोग किया जा सकता है।

इस विधि से शब्द-भेद, संज्ञा, विशेषण आदि के भेद मय उदाहरणों से बड़े सुन्दर ढंग से सजाकर सिखाये जा सकते हैं। व्याकरण के अनेक पक्षों को चार्टों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

'प्लास्टीग्राफ़' चटक रंगों में उपलब्ध होता है जिसमें से मनचाही आकृति के चित्र, रेखाचित्र, काटकर बनाये जा सकते हैं और इनका दृश्यात्मक रूप प्रभावी होता है। कक्षा के बाद में इनको संभालकर रखना चाहिए।

यह भी संभव हो सकता है कि विभिन्न रंगों के फ्लैनल से भिन्न-भिन्न आकृतियाँ काट ली जाएँ, बादामी रंग के फ्लैनल से घर, हरे रंग से वृक्ष और भूरे रंग से बिल्ली। बोर्ड पर इन सबको भिन्न-भिन्न प्रकार से चिपकाकर वार्तालाप के अभ्यास, कहानी-रचना का अभ्यास बनाया जा सकता है।

1.1.1.3. चुम्बकीय पट्ट (मैग्नेटिक बोर्ड)

ये बोर्ड वस्तुतः लोहे अथवा टिनप्लेट के बने हुए होते हैं जिनको इस प्रकार पेंट कर दिया जाता है कि उनका उपयोग चॉक बोर्ड की तरह भी किया जा सके और आवश्यकता पढ़ने पर चुम्बक लगे पदार्थों, चित्रों, रेखाचित्रों आदि को लगाया जा सके। चलित आकृतियों की विभिन्न स्थितियाँ दिखाने के लिए इस बोर्ड का विशेष उपयोग है। ट्रैफ़िक समस्याएँ, कार्याध्ययन के लिए यह विधि विशेष उपयोगी है। भाषा अध्ययन में चित्र-कहानी सिखाने में उपयोगी है जिसमें प्रकारान्तर से विभिन्न क्रियारूपों को सिखाना हो। इनका उपयोग भी उसी नाटकीय पद्धति से किया जा सकता है जिस प्रकार फ़ेल्ट बोर्डों का। इस प्रकार की सामग्री रंगीन चुम्बकीय प्लास्टिक शीट से कैंची की सहायता से काट-कर बनायी जा सकती हैं।

1.1.2. चित्रादि

भाषा-शिक्षण में सर्वाधिक प्रभावशाली दृश्य उपकरण चित्र हैं। मातृभाषा शिक्षण में भी बालक सर्वाधिक चित्रों के माध्यम से सीखता और अन्य भाषा-शिक्षण में भी कुछ ऐसे पदार्थ/भाव होते हैं जिनको चित्रोंसे सिखाना ही सुलभ होता है।

सामान्यतः चित्रों को निम्नलिखित कोटियों में विभाजित किया जा सकता है :

1.1.2.1. चित्र तथा रेखाचित्र (पिक्चर तथा ड्राइंग)
1.1.2.2. छायाचित्र (फ़ोटो)
1.1.2.3. व्यंग्यचित्र-पोस्टर (कार्टून/पोस्टर)

1.1.2.4. प्रतिकृति
1.1.2.5. सारणी तथा मानचित्र (चार्ट्स तथा मैप)
1.1.2.6. फ्लैश कार्ड

1.1.2.1. चित्र तथा रेखाचित्र

छोटे बालक तो चित्रों से आनंद लेते ही हैं पर प्रौढ़ भी कम रुचि नहीं लेते। रुचि-परिवर्तन के लिए भी समय-समय पर चित्रों का प्रयोग प्रभावशाली सिद्ध होता है। प्रसंगानुकूल चित्रों से पाठक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और चित्रों से रचना तथा रचना से चित्रों का निर्माण करवाया जा सकता है। पुस्तक में दिए गए चित्रों को भी आधार बनाया जा सकता है। इन चित्रों के आधार पर वार्तालाप के पाठों को खड़ा किया जा सकता है और विद्यार्थी के ज्ञान की परीक्षा ली जा सकती है।

मूक चित्र जब सामने होते हैं तो दृश्य अनुभवों के एक हिस्से का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। आज का युग ही चित्रप्रधान है। कहाँ चित्र नहीं मिलते, पाठ्य-पुस्तक, समाचार-पत्र, साप्ताहिक, दिवाल पर पोस्टर, दुकान पर, सभी जगह देखा जाए तो आज लेखन का स्थान चित्र लेते जा रहे हैं। तब ही तो चित्रप्रधान कथाओं की सीरीज पत्र-पत्रिकाओं में स्थायी स्तम्भ के रूप में आने लगी हैं। इस संबंध में यूनेस्को की रिपोर्ट (1955) का यह अंश पठनीय हैं :

> "It is an inexhaustible mine and we can call upon our pupilss to help us in exploiting it. They will bring us picture-post-cards and cuttings from Catalogues, and we shall sometimes be amazed at their ingenuity. All this will furnish the stock from which we shall draw the illustrations for our conversations about the foreign country we are studying, its general appearance, customs and inhabitants, all of which will be associated with centres of interest and much more lively than the ordinary discussion and appreciation of literary texts."

चित्र और शब्द साथ-साथ प्रस्तुत करने पर अधिक प्रभाव उत्पन्न करता है। जहाँ प्रत्यक्ष वस्तु, नमूना या चित्र न मिले, वहाँ श्यामपट्ट पर उस वस्तु/नमूने की आकृति को स्पष्ट करने के लिए रेखाचित्र प्रस्तुत कर दिया जाता है। अगर शिक्षक कलात्मक रेखाचित्र बनाने में असमर्थ है तो वह पहले से इन्हें बनवाकर फ़ेल्ट अथवा मैगनेटिक बोर्ड पर प्रस्तुत कर सकता है।

चित्रों का सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्व है। चित्र में दिखायी गई वस्तुएँ

विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न अर्थ रख सकती हैं। प्रत्येक व्यक्ति चित्र को अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुसार समझता है। यही कारण है कि सांस्कृतिक पक्ष को स्पष्ट करने के लिए चित्रों का विशेष महत्त्व है। जब हम अन्यभाषा—द्वितीय अथवा तृतीय के रूप में—किसी विदेशी को सिखाते हैं तो भाषिक पक्ष के साथ सांस्कृतिक पक्ष भी प्रकारान्तर से आता है। स्थितिपरक पाठ्य सामग्री का तो आधार ही चित्र होते हैं।

इधर कुछ प्रयोग चित्रों के माध्यम से भाषा के वाक्य साँचों को अनुस्तरित ढंग से सिखाने के लिए किए गए हैं। इसी प्रकार शब्दावली, उच्चारण के अभ्यास भी तैयार किए जा सकते हैं। जर्मन, फ्रेंच, अँग्रेज़ी भाषा सिखाने की पुस्तकें तो रेखाचित्रों/चित्रों से भरी पड़ी हैं। इधर शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने मलयालम, कन्नड़, तेलुगु सिखाने के लिए जो पुस्तकें नागरी लिपि के माध्यम से प्रकाशित की हैं उनमें चित्रों को समुचित स्थान दिया गया है। विशेष रूप से लक्ष्य भाषा तथा माध्यम भाषा के सर्वनामों का जितना व्यतिरेकी विवेचन इन पुस्तकों में चित्रों द्वारा स्पष्ट हो जाता है उतना बिना चित्रों के नहीं।

कहानी-शिक्षण व कहानी-रचना सिखाने में तो चित्रों का निर्विवाद महत्त्व है।

1.1.2.2. छायाचित्र (फ़ोटो)

फ़ोटो की प्रामाणिकता असंदिग्ध रहती है। प्रौढ़ों पर चित्र की तुलना में फ़ोटो का अधिक प्रभाव पड़ता है। फ़ोटो का भी वही महत्त्व है जो चित्र/रेखा-चित्र का है। केवल यह अन्तर है कि फ़ोटो में विवरण (details) काफ़ी स्पष्ट होते हैं और अधिक प्रभाव डालते हैं।

1.1.2.3. व्यंग्य चित्र (कार्टून)-पोस्टर

भाषा-शिक्षण के अन्तर्गत कहानी-शिक्षण में व्यंग्य-चित्र सहायक सिद्ध होते है। वैसे व्यंग्य-चित्र भी चित्र की भाँति ही प्रभावी सिद्ध होते हैं। कार्टून से भाषा के गूढ़ भावों को प्रकट किया जा सकता है। इनका प्रभाव स्थायी होता है। इनके द्वारा कक्षा की एकरसता भंग होती है और पाठ मनोरंजक हो जाता है।

पोस्टर भी चित्र का ही प्रकार है। पोस्टर द्वारा शब्दों और अक्षरों के स्वरूपों को प्रस्तुत किया जा सकता है। इनके द्वारा किसी एक केन्द्रीय भाव को सम्यक् रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

1.1.2.4. प्रतिकृति

जब किसी वस्तु के वास्तविक चित्र के प्रयोग से स्पष्टता न आ सके तो उसका वास्तविक दर्शन कराना चाहिए लेकिन वास्तविक दर्शन हमेशा संभव नहीं है अतएव उसकी प्रतिकृति को दिखा दिया जाता है। प्रतिकृति को ही प्रति-मूर्त्ति भी कहते हैं। इसी प्रकार ठोस प्रकार के उपकरण को 'डायोरमा' कहते हैं। इससे किसी वस्तु/व्यक्ति की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई की वास्तविकता का पता लगता है क्योंकि वह पदार्थ अनुपात से छोटा बनाया जाता है। भाषा-शिक्षण की पाठ्य सामग्री के आधार पर इनका निर्माण संभव है अथवा बाजार से अपने उपयोग की चीजों को खरीदा जा सकता है। अच्छा हो इस प्रकार के पदार्थों का आधार ऐसा हो जिन पर इन्हें घुमाया जा सके जिससे पूरी कक्षा उससे लाभान्वित हो सके। प्रतिरूपों के प्रयोग से कक्षा में रोचकता तथा सरलता उत्पन्न होती है।

1.1.2.5. सारणी तथा मानचित्र (चार्ट्स तथा मैप)

भाषा-शिक्षण में व्याकरणिक पक्ष की विभन्न समस्याओं की सारणी तैयार की जा सकती है। मानचित्रों का प्रयोग बहुत अधिक आवश्यक नहीं जब तक कुछ पाठ ही इस प्रकार के न हों जिनमें भौगोलिक/ऐतिहासिक स्थानों को दिखाना हो। द्वितीय/तृतीय भाषा-शिक्षण में लक्ष्य भाषा की भौगोलिक सीमाओं को मानचित्र में दिखाया जा सकता है। कभी-कभी परिणाम को विषयक ज्ञान के ग्राफ़ के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। कुछ स्थायी महत्त्व के चार्ट कक्षा में प्रदर्शित किए जाते हैं। वाक्य-साँचों के अभ्यास के लिए भी चार्ट बन-वाये जा सकते हैं।

1.1.2.6. फ्लैश कार्ड

शिक्षण और विशेष रूप से भाषा-शिक्षण में फ्लैश कार्डों का महत्त्व असंदिग्ध है। इन कार्ड में एक शब्द या फ्रेज़ होता है और दूसरी ओर उसका अर्थ। इस प्रकार के कार्ड का प्रयोग टीचिंग मशीन में भी किया जाता है। अनुदेशों के आधार पर विद्यार्थी उत्तर लिखता है और बाद में पीछे लिखे उत्तर से मिलाता है।

ये चित्रात्मक कार्ड किसी मोटे कागज पर प्राय: 10″ × 12″ के आकार के होते हैं। वैसे 6″ या 15 से०मी० का आकार ठीक समझा जाता है। पाठ्य सामग्री के अनुसार इन कार्डों को पहले से व्यवस्थित रूप से रखा जाता है। इस पर अक्षर मोटे होते हैं और कक्षा पर सीधा प्रभाव क्षण भर में बिजली की तरह पड़ता है। यही कारण है कि इनको फ्लैश कार्ड कहा गया। इनके द्वारा कोई

घटना, कहानी भी प्रस्तुत की जा सकती है। भाषा संरचना के अनेक तत्त्वों में से किसी एक तत्त्व पर कार्डों का सेट तैयार किया जाता है। लक्ष्य भाषा के शब्दों की सही वर्तनी सिखाने में भी इस प्रकार के कार्ड सहायक सिद्ध होते हैं। शब्द और उसके साथ वर्तनी का सीधा प्रभाव पड़ता है, इसके लिए एक ओर माध्यम भाषा का शब्द लिखा रहता है और दूसरी ओर लक्ष्य भाषा का शब्द। बोधगम्यता के लिए यह विधि उपयोगी है। 'पहचान' के लिए इन कार्डों का विशेष महत्त्व है। इनकी सहायता से वाक्य की संरचना भी करवायी जा सकती है।

1.1.3. प्रक्षेपक (प्रोजेक्टर)

इस प्रकार के उपादानों में अनेक प्रकार के प्रक्षेपक, मूकचित्र, चलचित्र आदि आते हैं। द्वितीय भाषा-शिक्षण में इनका विशेष महत्त्व है। कुछ अधिक काम में आने वाले प्रक्षेपक इस प्रकार हैं :

1.1.3.1. ओवरहेड प्रक्षेपक (ओवरहेड प्रोजेक्टर)

इस प्रक्षेपक की सहायता से 250 वर्ग मि०मी० की कोई भी पारदर्शी दिखायी जा सकती है। इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता यही है कि शिक्षक इस प्रकार की पारदर्शियाँ दिखाते समय भी निरन्तर कक्षा की ओर केन्द्रित रहता है। वह विभिन्न प्रकार की व्याकरणिक सारणियों को पहले से पारदर्शक पत्र
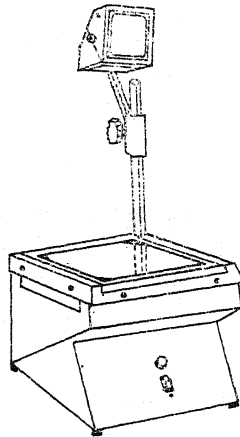
ओवरहेड प्रोजेक्टर

पर विशेष पेन्सिल की सहायता से बनाकर ला सकता है। प्लास्टिक शीट पर भी वह जो कुछ लिखकर तैयार करता है वह भी प्रक्षेपित किया जा सकता है। इन पर बने छोटे-छोटे चित्रों/दृश्यों को प्रक्षेपित किया जा सकता है।

'श्याम पट्ट' की तुलना में इससे सबसे बड़ा लाभ यही है कि इसके प्रयोग में कक्षा की ओर पीठ नहीं होती। अध्यापक कक्षा के सामने निरन्तर बना रहता है। इस प्रक्षेपक से रेखाचित्र, मानचित्र आदि की पारदर्शियाँ भी दिखायी जा सकती हैं। इस विधि से कक्षा में रोचकता बनी रहती है। इसमें प्लास्टिक की ट्रान्सपरन्सियाँ काम में आती हैं। बोर्ड से बड़ी आकृति स्क्रीन पर आती है। एक हजार वाट पावर के बल्ब का प्रयोग किया जाता है।

1.1.3.2. स्लाइड प्रक्षेपक

इसके भी कई प्रकार होते हैं। पहले लैंटर्न प्रोजेक्टर काम में लाए जाते थे जिनके द्वारा $3\frac{1}{4}'' \times 4''$ की स्लाइडें प्रयुक्त होती थीं पर अब तो फोटोग्राफ़ी के माध्यम से तैयार हल्की स्लाइडें $2'' \times 2''$ की तैयार कर इसके माध्यम से प्रक्षेपित की जाती हैं। यह प्रोजेक्टर बहुत हल्का और आसानी से इधर से उधर ले जाया जा सकता है। स्लाइड पर चित्रित दृश्य अब इस वैज्ञानिक साधन से विस्तार में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है। सांस्कृतिक पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए रंगीन स्लाइडों का प्रयोग भी किया जाता है। चार्टों को भी स्लाइड पर बनाया जा सकता है। अगर कमरे को अँधेरे से दूर रखना है तो 500 से 750 वाट का बल्ब प्रयोग में लाना चाहिए अन्यथा 120 से काम चल जाएगा। सूक्ष्म स्लाइड (Microscope Slide) दिखाने के लिए एक विशेष प्रकार के प्रोजेक्टर की आवश्यकता होती है। इसका प्रयोग अभी सीमित है।

1.1.3.3. अपारदर्शी प्रक्षेपक (ओपेक प्रोजेक्टर)

इस प्रक्षेपक की सहायता से पुस्तक का कोई पृष्ठ या कोई भी सुन्दर पृष्ठ जो पाठ्य सामग्री की दृष्टि से उपयोगी हो प्रक्षेपित किया जा सकता है। अन्य प्रक्षेपकों की तुलना में इसकी सर्वाधिक उपयोगिता इस बात में है कि इसके माध्यम से कुछ भी दिखाया जा सकता है।

कमरे में अपेक्षाकृत अँधेरा रखना होता है। अच्छा रहेगा यदि पहले से काले परदे खिड़कियों/दरवाजों पर लगे हुए हों, जिनको यथासमय बन्द किया जा सके। इसमें 500 वाट का बल्व प्रयोग में आता है। अँधेरा न होने पर धुँधलापन प्रतीत होगा।

शिक्षक को यदि कोई चित्र/फ़ोटो या पुस्तक का पृष्ठ दिखाना है तो उसे मात्र प्रोजेक्टर के नीचे ट्रे में रखना होता है। इसमें पहले से कुछ तैयार नहीं करना पड़ता। यह ठीक है कि पहले से सोचकर रखना पड़ता है कि क्या दिखाना है। इसके द्वारा छोटे चित्रों को तुरन्त बड़ा करके दिखाया जा सकता है।

अपारदर्शक सामग्री को प्रक्षेपित किया जाता है अतएव इसे अपारदर्शी प्रक्षेपक कहते हैं, वैसे इसका नाम ही एपिडाइस्कोप (Epidiascope) भी है।

इसके माध्यम से चित्र/रेखाचित्र/फोटो आदि ही नहीं, ठोस पदार्थ जैसे सिक्के, प्रतिकृति आदि भी दिखाये जा सकते हैं।

इसके मात्र दो दोष हैं, एक तो कमरे में अँधेरा करना वह भी एकदम कोई सरल कार्य नहीं, दूसरे बल्ब जो तेजी से गरम हो जाता है और उससे प्राप्त गर्मी को साथ-के-साथ ठंडा किया जाए जिससे दिखायी जाने वाली सामग्री को हानि न पहुँचे। कुछ प्रक्षेपकों में ठंडा करने की प्रक्रिया से शोर होता है जिससे कक्षा में बाधा पड़ती है।

किसी एक वस्तु को प्रदर्शित करके दूसरी सामग्री को प्रदर्शित करने में समय लगता है अतएव स्लाइड प्रोजेक्टर, ओवरहेड प्रोजेक्टर आदि की तुलना में गति धीमी होती है।

यह प्रोजेक्टर अन्य प्रोजेक्टरों की तुलना में खर्चीला है।

नोट : लगभग सभी प्रकार के प्रोजेक्टर भारत में बनने लगे हैं।

1.1.4. चित्र पट्टी (फ़िल्म स्ट्रिप)

1.1.4.1. चित्र पट्टियाँ (फ़िल्म स्ट्रिप्स)

चित्र पट्टियों के द्वारा विषयवस्तु को बड़ी आसानी से दिखाया जा सकता है। चित्र पट्टियों को दिखाने के लिए भी प्रक्षेपक की आवश्यकता होती है जिससे स्क्रीन पर प्रक्षेपित किया जा सके। इस दृष्टि से यह भी एक भिन्न प्रकार का प्रक्षेपक है और इसको पिछले विवेचन के साथ ही जोड़ा जाए। पर जानबूझ-कर इसको पृथक् स्थान दिया गया है क्योंकि यहाँ मात्र प्रक्षेपक का महत्त्व नहीं, पाठ्य सामग्री का है जिसको अन्य किसी प्रक्षेपक से नहीं दिखाया जा सकता अतएव प्रक्षेपक यंत्र स्ट्रिप्स का एक अंग मात्र है।

चित्र पट्टियाँ अपेक्षाकृत सस्ती होती हैं जिनको आसानी से तैयार किया जा सकता है। यह फोटोग्राफ़ी से तैयार की जाती है वैसे हाथ से भी आर्टिस्ट तैयार कर सकता है। यदि कोई व्यापारिक फ़र्म इनको तैयार कर ले तो दूसरे इसे खरीद सकते हैं। ऐसी स्थिति में इसकी कीमत भी बहुत अधिक नहीं होगी।

भाषा-शिक्षण में इसकी विशेष उपयोगिता है। सभी प्रकार की क्रियाएँ इस से प्रदर्शित की जा सकती हैं। सभी काल, प्रयोग तथा पक्षों को सरल तथा मिश्र वाक्यों के प्रयोग द्वारा इन पट्टियों की सहायता से सिखाया जा सकता है। विभिन्न आवश्यकताओं के लिए, भिन्न-भिन्न भाषा कौशलों को सिखाने के लिए एक ही फ़िल्म स्ट्रिप्स का प्रयोग बार-बार किया जा सकता है।

जो भाषा सिखायी जा रही है उस भाषिक समाज की पृष्ठभूमि ही इन पट्टियों में प्रदर्शित की जाए जिससे उस देश की संस्कृति का प्रकारान्तर से प्रभाव पड़ सके। निवासियों की प्रकृति और उनका रहन-सहन जितनी सुन्दरता से इन फ़िल्म स्ट्रिप्स की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है उतना अन्य किसी से

नहीं।

फ़िल्म स्ट्रिप्स दिखाये जाने वाला प्रोजेक्टर न केवल सस्ता है पर चलाने में आसान भी। इसको वहाँ भी उपयोग में लाया जा सकता है, जहाँ बिजली नहीं है क्योंकि इसको बैटरी से चलाया जा सकता है।

जब इन स्ट्रिप्सों को दिखाया जाए साथ-के-साथ शिक्षक द्वारा कमेंट्री होनी चाहिए अथवा पहले से कमेंट्री को टेप कर लेना चाहिए। फ़िल्म स्ट्रिप्स वस्तुतः एक प्रकार से कई लगातार ली हुई फ़िल्मों को सीरीज़ में रख लेना मात्र है। स्लाइड की भाँति ही इनका प्रयोग किया जा सकता है।

अधिक संख्या में जो 'स्ट्रिप्स' मिलती हैं उनमें 20 से 40 तक फ्रेम होते हैं जिनका आकार 18 एम० एम० × 24 एम० एम० होता है। इसके अतिरिक्त दो अन्य आकारों में भी स्ट्रिप्स मिलती हैं 24 एम० एम० × 24 एम० एम० तथा 36 एम० एम० × 25 एम० एम०। इसके प्रोजेक्टर इस तरह के बने हुए होते हैं कि किसी भी आकार की स्ट्रिप्स को दिखाया जा सके।

भाषा-शिक्षण विशेष रूप से हिंदी के शिक्षण में इन चित्र पट्टियों का प्रयोग संरचना/रचना-शिक्षण में किया जा सकता है। संरचना के क्षेत्र में अन्विति प्रमुख है किस प्रकार लिंग-वचन का वाच्य तथा क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। क्रिया (कृदन्त रूप) पर लिंग का जो प्रभाव पड़ता है उसकी प्रैक्टिस चित्र पट्टियों की सहायता से करवायी जा सकती है।

चित्र पट्टियों की सहायता से रचना के अन्तर्गत कहानी-लेखन सिखाया जा सकता है। कहानी से मिलती-जुलती अन्य विधाओं जीवन चरित, ऐतिहासिक घटना का विवरण आदि का अभ्यास भी संभव है।

इन पट्टियों को इस प्रकार अनुक्रम से प्रदर्शित किया जाता है कि समग्र प्रभाव विद्यार्थी पर पड़े फिर बाद में अन्विति/रचना के उद्देश्य से धीरे-धीरे प्रदर्शित किया जाए। चित्र पट्टियों का द्वितीय/तृतीय भाषा के संदर्भ में विशेष महत्त्व है। जबकि भाषिक संरचना को पढ़ाया जा रहा हो। यह ध्यान रहे कि प्रयोग में होने वाली चित्र पट्टियाँ स्पष्ट तथा बोधगम्य हों अन्यथा प्रभावी बनने के विपरीत अरुचि उत्पन्न होती है।

भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अभी चित्र पट्टियों का अभाव है। अँग्रेज़ी सिखाने के लिए पर्याप्त सामग्री बाजार में उपलब्ध हैं। भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के तत्त्वावधान में उर्दू, बंगाली की लिपियाँ सिखाने के लिए चित्र पट्टियाँ बनायी गई हैं जो अब बंबई की एलाइट सिने एन्टरप्राइज से उपलब्ध की जा जा सकती हैं।

1.1.4.2. चित्र पट्टी (फ़िल्म स्ट्रिप)

यह न छोटी-सी पट्टी है जैसे फ़िल्म स्ट्रिप्स जो संरचना, कहानी आदि सिखाने

के लिए प्रयुक्त होती है और न पूरी फ़िल्म जिसको सिनेमा के माध्यम से दिखाया जाता है। यह तो 35 एम० एम० प्रोजेक्टर के माध्यम से दिखायी जाने वाली वस्तुतः छोटी फ़िल्म है जो किसी दर्शनीय स्थान विशेष, किसी साहित्यकार के जीवन, किसी विशिष्ट कार्यपद्धति जैसे संगोष्ठी, विचार-गोष्ठी पर बनायी जाती है। भारत में भी इस प्रकार की शैक्षिक फ़िल्मों का निर्माण किया जाता है। 'प्रबंध-विज्ञान' सिखाने के लिए बहुत-सी फ़िल्में आज उपलब्ध हैं।

भाषा-शिक्षण की दृष्टि से इस प्रकार की फ़िल्म अभी भारत में नहीं बनायी गई हैं पर फ्रान्स, इंग्लैंड में इस प्रकार की फ़िल्में बनायी गई हैं। बेसिक अँग्रेज़ी की पुस्तकों की सहायक सामग्री के तौर पर कुछ फ़िल्में बनायी गई हैं।

एक साथ कई फ़िल्में नहीं दिखानी चाहिए। इससे रोचकता फिर नहीं रहती। मूक फ़िल्मों के साथ रनिंग कमेंट्री होनी चाहिए अथवा शिक्षक को साथ-के-साथ माइक से कमेंट्री देनी चाहिए। बहुत अधिक लम्बी फ़िल्म से भी उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। ऐसी फ़िल्म/स्ट्रिप 30 मिनट के लगभग की होनी चाहिए।

1.2. श्रव्य

1.2.0. श्रव्य उपादानों में वे उपकरण सम्मिलित किए जाते हैं जिनके माध्यम से भाषा के ध्वनि समूह, स्वनिम-प्रक्रिया, खंडेतर स्वनिम (मात्रा, बलाघात, सुर, संगम आदि), ध्वनि-विश्लेषण, ध्वनि-भेद, ध्वनि-संप्रेषण आदि सीखा या सिखाया जा सकता है। इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण ग्रामोफोन/फ़ोनोग्राम है।

1.2.1. इसके अनुकरण में भाषा-शिक्षण में 'लिंग्वाफ़ोन' पद्धति का आविष्कार किया गया। इस पद्धति द्वारा किसी भी भाषा की सामान्य ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण, वाक्य साँचों पर पाठ तथा वार्तालाप रेकार्डों के माध्यम से सिखाया जाता है। ये रिकार्ड साउंड प्रूफ़ कमरे में रिकार्ड किए जाते हैं और फिर उनकी प्रतिलिपि कर ली जाती है। इन रिकार्डों को डिस्क रिकार्ड भी कहते हैं। रूसी भाषा के रिकार्ड तो अब प्लास्टिक शीट पर भी मिलने लगे हैं जो एक प्रकार से पाठ्य-पुस्तक के पूरक रूप में प्रयोग में लाए जाते हैं। लिंग्वाफ़ोन पद्धति से अब विश्व की लगभग सभी भाषाएँ पढ़ायी जाती हैं। इस पद्धति से अब हिंदी पढ़ाने का भी पूरा कोर्स मिलता है। आशा है, जल्दी ही अन्य भारतीय भाषाओं पर भी सामग्री उपलब्ध होगी।

जैसा स्पष्ट है कि इस पद्धति से केवल सुना जा सकता है। किसी प्रकार की सहायता नहीं माँगी जा सकती और न पत्राचार से ही समस्या का समाधान हो सकता है। कोई यह भी देखने सुनने वाला नहीं कि शिक्षार्थी कहाँ तक ठीक-ठीक सुनकर बोधगम्य कर रहा है।

ऐसे रिकार्डिंग के लिए आदर्श वक्ता की आवश्यकता है। ऐसा व्यक्ति चुनना चाहिए जो कम-से-कम भाषा के प्रमुख तथा बहुजन के लिए बोधगम्य रूप का प्रतिनिधित्व कर सके।

1.2.2. लिंग्वा रिकार्ड

हिंदी 'लिंग्वा रिकार्ड' वस्तुतः लिंग्वाफोन की पद्धति पर ही भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के तत्त्वावधान में तैयार किए गए हैं। वस्तुतः ये रिकार्ड पत्राचार के माध्यम से हिंदी की पाठ्य सामग्री की संदर्भ सामग्री के रूप में तैयार किए गए हैं। इनको एक प्रकार से पाठ्य सामग्री का पूरक कह सकते हैं।

अहिंदी-भाषी भारतीयों और विदेशियों को हिंदी भाषा का शुद्ध उच्चारण और उसकी वाक्य संरचना तथा व्यावहारिक हिंदी सीखने में सुविधा प्रदान करने के लिए 32 पाठों के 16 रिकार्डों का एक सेट तैयार किया गया है। सेट के पहले चार रिकार्ड ध्वनि और उच्चारण से संबंधित हैं। दूसरे सेट के आठ रिकार्ड (16 पाठों) में आधारभूत व्याकरणिक नमूनों का विश्लेषण किया गया है। इनको व्याकरणिक आधार पर बने पाठ कह सकते हैं। एक पाठ में एक ही प्रकार के वाक्यों को गुम्फित किया गया है। तीसरे सेट के चार रिकार्डों के अन्तर्गत आठ पाठों में विभिन्न परिस्थितियों और वातावरण से संबंधित सामान्य बातचीत का नमूना प्रस्तुत किया गया है। सोलह रिकार्डों के इस सेट को निदेशालय अथवा मैसर्स यंग इंडिया फ़िल्म्स से प्राप्त किया जा सकता है। इस सामग्री को ही अब कैसेट सेट में भी उपलब्ध कराया जा रहा है।

1.2.3. टेपरिकार्डर

आज का युग कैसेट टेपरिकार्डर का है। किसी भी कैसेट में शुद्ध उच्चारण का अभ्यास, भाषणों के अंश, शुद्ध उच्चारण करने वाले लोगों की वार्ताएँ आदि टेप की जा सकती हैं, और फिर उनको टेपरिकार्डर से सुनकर भाव ग्रहण किया जा सकता है, कानों को ट्रेनिंग दी जा सकती है। बार-बार सुनकर शुद्ध उच्चारण के प्रति अभ्यस्त बना जा सकता है। ध्वनियों के प्रत्यक्ष शिक्षण की दृष्टि से इसका आज बहुत महत्त्व है।

वास्तविक वार्तालाप, वार्ता, भाषण आदि को भी टेप किया जा सकता है जिसका बाद में विश्लेषण किया जाए। यह सामग्री सूचक से भी प्राप्त की जा सकती है। इस सामग्री को बार-बार दुबारा सुनकर अभ्यास किया जा सकता है। इसको अनुकरण के लिए आदर्श माना जा सकता है। इस प्रकार की रिकार्डिंग को कक्षा के बाहर भी प्राभ्यास के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

कुछ इस प्रकार के भी दो ट्रेक के कैसेट टेपरिकार्डर हैं जिनमें शिक्षार्थी मॉडल को सुनकर दुहराता हुआ रिकार्ड कर सकता है और बाद में मॉडल से अपने रिकार्डिंग की तुलना कर सकता है और अपनी गलती को स्वयं महसूस कर सकता है। लगभग इसी प्रकार की प्रक्रिया भाषा-प्रयोगशाला में है।

अब तक जो चर्चा की गई है वह 'ध्वनि' से संबंधित है जिसको अनेक प्रकार के श्रव्य उपकरणों के लिए बाँध लिया जा सकता है और जब चाहें तब सुन सकते हैं अथवा सुनने की प्रार्थना कर सकते हैं :
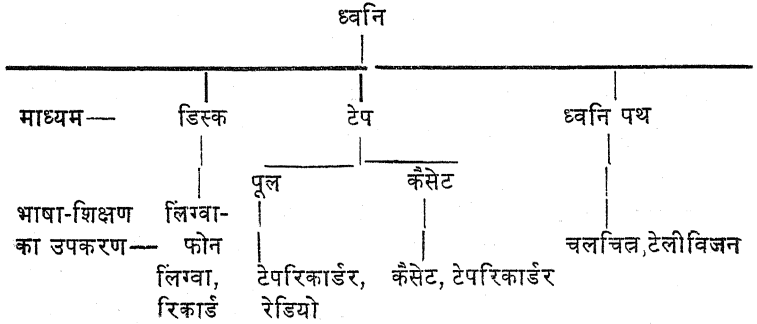
1.2.4. रेडियो

रेडियो श्रव्य साधनों में प्रमुख स्थान रखता है। भाषा-शिक्षण में रेडियो का विशेष महत्त्व है। अनेक विशेषताओं से युक्त रेडियो कार्यक्रम उपयोगी सिद्ध हुए हैं। रेडियो नाटकों ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि मात्र श्रव्य साधन से भी वही प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है जो दृश्य से संभव है। इस दृष्टि से रेडियो टेकनीक में बहुत अधिक संभावनाओं की खोज कर ली गई है।

रेडियो प्रसारण से निम्नलिखित लाभ हैं :

1. रेडियो बोलचाल की भाषा का आदर्श रूप प्रस्तुत करना है जिसको भाषा-शिक्षण के लिए अपनाना अच्छा रहता है।

2. रेडियो से हर प्रकार के श्रोता को सिखाया/पढ़ाया जा सकता है, वह कहीं हो।

3. मातृभाषा के अच्छे-अच्छे लेखक की सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है।

4. अन्य साधनों की अपेक्षा सस्ता तथा सुलभ है।

आज रेडियो के माध्यम से अनेक प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं। बहुजन सम्प्रेषण के माध्यमों में रेडियो अद्यतन तथा महत्त्वपूर्ण है,

ट्रांज़िस्टरों की बाढ़ से सुगम संगीत तथा फिल्मी गीतों के प्रसारण से इसका पर्याप्त प्रचार हो गया है।

यहाँ भाषा-शिक्षण की दृष्टि से रेडियो के माध्यम पर चर्चा की जा रही है। विदेशों में लगभग प्रत्येक देश से भाषा/भाषाओं का प्रसारण होता है। शिक्षा-विभाग का प्रसारण से काफी अच्छा तालमेल होना चाहिए क्योंकि क्या देना है और किसके लिए देना है यह निर्णय शिक्षा-विभाग करेगा और किस प्रकार दिया जाए यह प्रसारण-विभाग। अतएव इन दोनों विभागों में पर्याप्त समन्वय होना चाहिए।

भाषा-शिक्षण के कार्यक्रमों में निम्नलिखित सावधानी रखनी चाहिए :

(क) उच्चारण तथा वार्तालाप का आदर्शतम रूप ।

(ख) काल्पनिक अथवा यथार्थ आदर्श उदाहरण।

(ग) पूरक सामग्री ।

(घ) भाषिक समुदाय की संस्कृति के विभिन्न पक्षों का प्रस्तुतीकरण।

इस दृष्टि से जो पाठ प्रसारण के लिए तैयार करवाए जाएँ उनमें शिक्षक, भाषाविद्, लेखक, उद्घोषक की मिली-जुली भूमिका का महत्त्व है। किसी भी मातृ भाषा-भाषी से पाठ लिखवाने मात्र से काम नहीं चलता। अच्छा रहेगा पाठ लिखने वाला दोनों भाषाओं—लक्ष्य भाषा तथा माध्यम भाषा—का अच्छा जानकार हो। दोनों भाषाओं के व्यतिरेकी अध्ययन के आधार पर पाठ्य बिन्दु पहले से बना लिए जाएँ तो लाभ होगा। प्रस्तुतीकरण की पूरी जिम्मेदारी रेडियो के अधिकारियों पर छोड़ दी जाए। इन अधिकारियों की सहायता से जितनी संभावनाएँ और जोड़ी/छोड़ी जा सकती हैं उस ओर भी ध्यान दिया जाए।

रेडियो द्वारा प्रसारित पाठों का कक्षा में भी उपयोग किया जा सकता है यदि पहले से स्कूल की समय सारिणी इस प्रकार बना ली जाए। इन प्रसारित पाठों को टेप करके भी रखा जा सकता है जिससे उपयोगी सामग्री को जब चाहें तब सुना जा सके।

रेडियो शिक्षण की उपयोगिता निर्विवाद है पर इसके कुछ दोष भी हैं। रेडियो कार्यक्रम मात्र श्रवण कौशल पर आश्रित है, उस पर बल देता है और उसकी अभिवृद्धि करना इसका एकमात्र उद्देश्य है। यह दोष नहीं यह तो उसकी विशेषता है।

कुछ कमियाँ इस प्रकार हैं :

(क) शिक्षक जो चाहे दे सकता है पर शिक्षार्थी कुछ भी नहीं पूछ सकता। वैसे पत्रों के माध्यम से वह अपनी समस्या रख सकता है पर उसका समाधान होगा भी यह नहीं कहा जा सकता। होगा, तो कब, यह भी

नहीं कहा जा सकता।

(ख) विद्यार्थी जब चाहे कार्यक्रम को बन्द कर दे, किसी कारण से अथवा अकारण ही।

(ग) विद्यार्थी कहाँ तक लाभान्वित हो रहा है, यह पता नहीं लगता। पता लगता है तो काफी समय बाद।

(घ) एक ही श्रोता निरन्तर सुनता है अथवा नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता।

इन सब दोषों के होते हुए भी भाषा-शिक्षण में रेडियो महत्त्वपूर्ण उपादान है। भाषा-शिक्षण की दृष्टि से सबसे पहले इस प्रकार के कार्यक्रम 1928 से जर्मनी में प्रारंभ हुए। भारत में इस प्रकार के कार्यक्रमों का प्रारंभ 30 वर्ष से भी पहले त्रिची तथा मद्रास केन्द्रों से हिंदी भाषा के पाठों के रूप में हुआ। प्रारंभ में ये प्रोग्राम काफ़ी उपयोगी सिद्ध हुए लेकिन कालान्तर में राजनैतिक स्थिति बदलने से बन्द कर दिए गए। स्वतन्त्रता के बाद अनेक केन्द्रों से हिंदी पाठ प्रसारित किए जाने लगे। कुछ समय बाद ये भी बन्द कर दिए गए।

आकाशवाणी से विधिवत् इन पाठों का प्रसारण काफ़ी बाद में प्रारंभ हुआ जबकि जन० 1968 में 'सूचना-प्रसारण हिंदी समिति' की बैठक हुई जिसमें हिंदी क्षेत्र में हिंदीतर भाषाओं के प्रसारण की संस्तुति की गई। इस प्रकार हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को विधिवत् पढ़ाने की दृष्टि से प्रसारण वर्ष 1969 के मध्य से प्रारंभ हुआ। फलतः लखनऊ से तमिल, भोपाल से मलयालम, पटना से तेलुगु और जयपुर से कन्नड़ के पाठों का प्रसारण प्रारंभ किया गया। कालान्तर में अन्य स्टेशनों से भी भाषाएँ सिखाने के लिए पाठों का प्रसारण प्रारंभ हुआ जैसे राँची से पंजाबी, तेलुगु तथा तमिल, लखनऊ से बंगाली को बढ़ाया गया, दिल्ली से तमिल, तथा बंगाली और पटना से तमिल, मराठी तथा मलयालम आदि भाषाओं को भी जोड़ लिया गया। एक भाषा के पाठों का प्रसारण 4 से 6 माह तक चलता था; सप्ताह में लगभग पाँच पाठ प्रसारित किये जाते थे और 15 मिनट की अवधि रखी जाती थी। यदि पूरे समय का योग किया जाए तो छह माह में बत्तीस घंटे का प्रसारण हुआ।

यह भी सोचा गया कि भाषा सरल तथा बोधगम्य रहनी चाहिए, रोचकता की दृष्टि से स्थानीय वातावरण को ध्यान में रखा जाए। दोनों भाषाओं के जानकार ही पाठों के प्रसारण हेतु रखे जाएँ, सहभागी के रूप में दो छात्र रखे जाएँ जिनमें से अच्छा हो एक लड़की/महिला हो। पाठ रोचक तथा आकर्षक हो, जिसको पहले से रिहर्सल के बाद रिकार्ड किया जाए। व्याकरणिक जटिलताओं से जहाँ तक हो पाठों को मुक्त रखा जाए। साधारणतः भाषा की विशेषताओं तथा सांस्कृतिक पक्ष पर बल दिया जाए।

इन पाठों का कोई व्यवस्थित ढंग से तो मूल्यांकन नहीं किया जा सका पर

जो भी श्रोताओं/शिक्षार्थियों के पत्र बाद में आए उनसे उपयोगिता निस्संदिग्ध रही। स्थानीय थीम ही लिए जाएँ, इस बात पर विशेष बल दिया गया। पर्यटन की दृष्टि से इन पर बल दिया जाए। भोज्य पदार्थों दाल, साग, फल आदि के नामों पर विशेष बल दिया जाए।

यह भी विचारणीय है कि अन्य भाषा-शिक्षण में पड़ोसी भाषाओं को यदि प्रसारण में स्थान दिया जाए तो अधिक लाभप्रद होगा, जैसे कलकत्ते से असमिया और उड़िया तथा पटना से बँगला, उड़िया, नेपाली आदि भाषाओं का प्रसारण हो। फिर मुख्य बात यह है कि यह प्रसारण किस वर्ग के लिए है—छात्र, कर्मचारी, प्रौढ़, शिक्षित/संभ्रांत वर्ग।

जहाँ तक हिंदी-शिक्षण का संबंध है, इन पाठों का प्रसारण 1966 से विजयवाड़ा, इम्फाल, त्रिवेन्द्रम; 1969 से अहमदाबाद, राजकोट, कलकत्ता, धारवाड़, गौहाटी, कटक तथा 1970 से बंगलौर, हैदराबाद केन्द्रों से प्रारंभ किया गया। 1966 से प्रारंभ होने वाले केन्द्रों से पाठ सं० 105 तक रही जबकि धारवाड़ केन्द्र से प्रसारित होने वाले पाठ 232 तक 1971 में हो गए थे। सर्वाधिक पाठ अहमदाबाद से प्रसारित हुए जिनकी संख्या 257 थी। एक बार सीरीज़ समाप्त होने पर दूसरी सीरीज का प्रारंभ भी किया जाता था। श्रोताओं को लिखित सामग्री भी आकाशवाणी पत्रिका के माध्यम से कभी-कभी दी जाती है।

इस प्रकार भारत जैसे विशाल तथा बहुभाषा-भाषी देश में आकाशवाणी के माध्यम से भाषा-शिक्षण की अभूतपूर्व संभावनाएँ हैं। इस कार्यक्रम को व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए गृहमंत्रालय के राजभाषा विभाग के अन्तर्गत एकरूपता समिति के निर्देशन में काम किया जा रहा है।

1.3. स्पर्श उपकरण

पहले कहा जा चुका है कि इन्द्रियों के प्रयोग के आधार पर स्पर्श उपकरण भी हो सकते हैं। मूर्त पदार्थों को दृश्य, श्रव्य, तथा स्पर्श उपकरणों की सहायता से समझाया जा सकता है जबकि अमूर्त को मौखिक आधार पर।

स्पर्श उपकरणों का प्रायः प्रयोग ब्रेललिपि के साथ किया जाता है। सामान्यतः श्रव्य पदार्थों से ही स्पर्श का अनुभव करवा दिया जाता है। वैसे कुछ विशेष क्रियाओं का अनुभव स्पर्श के माध्यम से अधिक सहज तथा स्थायी होता है, जैसे कड़ा, पिलपिला, खुरदरा, चिकना, रपटीला आदि। अभी इस प्रकार के उपकरणों का विशेष प्रचलन नहीं है। भविष्य में हो सकता है कुछ विशिष्ट विशेषणों/क्रियाओं का प्रत्यक्ष अनुभव कराने के लिए इस प्रकार के साधनों का उपयोग बढ़ता जाए।

1.4. दृश्य-श्रव्य उपकरण

इस कोटि में वे सभी उपकरण समाहित होते हैं जिनके प्रयोग में देखने तथा

सुनने की दोनों क्रियाएँ साथ-साथ सम्पन्न होती हैं। प्राचीन भारत में 'नाट्य' के विविध रूपों के माध्यम से यह संभव था। लोक में अब भी विविध प्रकार की परम्पराशील नाट्य विधाओं का प्रचलन है। रंगमंच का अपना महत्त्व है। लेकिन जन सामान्य की दृष्टि से अब इसका स्थान चलचित्र(सिनेमा) ने ले लिया है। एक नया उपकरण 'टेलीविज़न' बड़ी तेज़ी से प्रचलन में आया है। फलतः दृश्य साधनों में नाटक, सिनेमा तथा टेलीविज़न मुख्यतः लिए जा सकते हैं। नाटक भी कम प्रभावशाली नहीं हैं पर इनका प्रचलन उतना नहीं रहा जितना प्राचीन काल में था।

14.1. चलचित्र (सिनेमा)

सिनेमा का भाषा-शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस बात को कुछ समय के लिए छोड़ भी दें कि फिल्म की सहायता से भाषा-शिक्षण विधिवत् किया जा रहा है, फिर भी सिनेमा के माध्यम से भाषा का अज्ञात प्रभाव पड़ता रहता है। आज अहिंदी क्षेत्रों में फिल्म के माध्यम से जितना हिंदी का प्रचार/प्रसार हो रहा है संभवतः अन्य किसी विधि से नहीं।

जनसंप्रेषण के विविध माध्यमों में आज 'फ़िल्म' सर्वाधिक प्रभावशाली है। जब से रंगीन फ़िल्में बनने लगी हैं इसका प्रभाव और भी गहरा हो गया है।

शिक्षा-शास्त्री भी इस माध्यम का प्रयोग करने लगे हैं। बालोपयोगी फ़िल्मों से किसी भी विषयवस्तु को आसानी से बोधगम्य कराया जा सकता है। दर्शनीय स्थानों, ऐतिहासिक-भौगोलिक महत्त्व के स्थानों पर अब पर्याप्त फ़िल्म बन रही हैं।

प्रदेशों तथा भारत सरकार के फिल्म डिवीज़न के अन्तर्गत शिक्षाप्रद डाकूमेंटरी फ़िल्मों का निर्माण होता है।

भाषा-विषयक फ़िल्मों के प्रदर्शन से भाषा के शुद्ध प्रयोग का अभ्यास संभव है। फ़िल्म के माध्यम से बालक के ज्ञान में जहाँ अभिवृद्धि होती है वहाँ उसकी अभिव्यक्ति में स्पष्टता आती है और अनजाने उसके भाषिक कौशलों, बोलने तथा सुनने में निखार आ जाता है। अभी भारत में इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है पर विदेशों में—फ्रान्स, बेल्जियम, डेन्मार्क, चेकोस्लोवाकिया, सं० रा० अमेरिका आदि देशों में इसका समुचित उपयोग किया जा रहा है।

चलचित्र के माध्यम से पदार्थों का स्पष्टीकरण तो होता ही है साथ में भाषिक विशेषताएँ—विशेषतः नादसौंदर्य, बलाघात, सुर आदि सहज ही शिक्षार्थी के मन-मानस पर स्थायी प्रभाव डालते हैं। भाषा की मुहावरेदानी तथा चुटीले सवाद सीधे श्रोताओं पर प्रभाव डालते हैं। इसमें एक साथ चित्र, गति, रंग तथा ध्वनि का समन्वित प्रभाव पड़ता है।

फ़िल्म के माध्यम से जो भाषा सिखायी जा रही है उसकी सामाजिक-सांस्कृ-

तिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाए कि अभिनय स्वाभाविक हो, पात्रों पर हमेशा यह न छाया रहे कि कोई भाषिक रचना वह सिखा रहे हैं। जिस फ़िल्म के माध्यम से एक साथ दृश्य-श्रव्य के साथ भावनाओं को उभारा जाता है वह उतनी ही सफल समझी जाती है।

भाषा-शिक्षण की सीरीज की फ़िल्म में किसी एक पक्ष को ही प्रस्तुत किया जाए। समय 20 से 25 मिनट हो सकता है।

लिपि सिखाने के लिए भी फ़िल्म का उपयोग किया जाता है। 'देवनागरी लिपि' पर भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के तत्त्वावधान में फ़िल्म बनायी गई है।

जब तब व्यापारिक दृष्टि से इस प्रकार की फ़िल्में न बनायी जाएँ यह व्ययसाध्य उपादान है। शैक्षिक दृष्टि से प्रबंध विज्ञान, प्रशिक्षण विधियों पर अनेक फ़िल्म आज अन्तर्राष्ट्रीय मार्केट में उपलब्ध हैं। अनेक टीचिंग मशीनें भी इस प्रकार की बनायी गई हैं पर इनकी चर्चा 'प्रोद्योगिकी' के अन्तर्गत की जाएगी।

अभी तक यही धारणा बनी हुई है कि चलचित्र मनोरंजन का साधन है। ज्यों-ज्यों शिक्षाप्रद फिल्म बनेंगी और दिखायी जाएँगी, यह धारणा दूर होगी। कक्षा में यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए फ़िल्मों का उपयोग किया जाना चाहिए। छोटी-छोटी साउंड फ़िल्म या साउंड फ़िल्म लूप आदि का निर्माण प्रारंभ में करना चाहिए।

1.4.2. दूरदर्शन (टेलीविज़न)

भाषा में 'स्थितिपरक' तैयार पाठ्य सामग्री को जितनी सुगमता से टेली-विज़न के माध्यम से पढ़ाया जा सकता है, अन्य किसी विधि से नहीं। द्वितीय भाषा-शिक्षण में इस साधन का उपयोग सर्वाधिक प्रभावशाली समझा जाता है। फ्लेस (फोरेन लैंग्वेज इन इलीमेंट्री स्कूल) में इनका अच्छा उपयोग किया जाने लगा है। जून 1954 में प्रकाशित फोरेन लैंग्वेज़ बुलेटिन नं० 25 में इसकी उपयोगिता पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसके माध्यम से आदर्श अध्या-पन के माध्गम से आदर्श शिक्षण का मानदंड प्रस्तुत किया जा सकता है।

इसके माध्यम से ही सी०सी०टी०वी० (क्लोज़्ड सर्किट टी० वी०) की प्रविधि को अपनाया जा सकता है। यह नवीनतम साधन है जिसका प्रयोग शिक्षण/प्रशिक्षण में किया जा रहा है। आजकल भाषा-शिक्षण में भी इसका विशेषत: प्रयोग किया जा रहा है क्योंकि इसके माध्यम से कई प्रकार के भाषा कौशलों को समन्वित रूप से पढ़ाया जा सकता है। वीडियो टेपरिकार्डर के माध्यम से तो बार-बार इसको दिखाया जा सकता है। किसी बड़े नगर में नेटवर्क के रूप में अथवा कई भवनों/स्थानों में साथ-साथ दिखाने के लिए यह उत्तम है। सी०सी० टी०वी० की उपयोगिता तब ही होगी जब एक साथ एक ही पाठ कई कक्षाओं में पढ़ाया जाए। क्रेटन विश्वविद्यालय, सं० रा० अमेरिका में तो यह

कार्यक्रम 1946-47 से प्रारंभ हो गया था।

यह उपकरण कक्षा की पाठ्य सामग्री के पूरक/अनुपूरक के रूप में काम में लाया जा सकता है अथवा जो भी पढ़ाया गया है, उसका पुनर्बलन संभव है। अध्यापक द्वारा ली जाने वाली कक्षा का स्थानापन्न नहीं है। अच्छा यही रहेगा कि वीडियो टेप पर अंकित होने के बाद फ़िल्म की तरह इसको संपादित (एडिटिंग) कर लिया जाए।

इन प्रोग्रामों को कक्षा में कई रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं: (1) शिक्षक के बिना, (2) कक्षा अध्यापक के साथ नियमित रूप से, (3) किसी स्थानीय व्यक्ति/वक्ता के साथ, (4) विशेषज्ञ के साथ। अच्छा यही रहेगा कि जब यह प्रोग्राम दिखाया जा रहा हो तब शिक्षक तथा विशेषज्ञ दोनों उपस्थित रहें।

भारत में हैदराबाद के केन्द्रीय अँग्रेज़ी तथा विदेशी भाषाओं के संस्थान में इस दिशा में कुछ प्रयोग किए गए हैं। अभी भारत में इसका प्रारंभ भी ठीक ढंग से नहीं हो पाया है।

1.5. निष्कर्ष

दृश्य-श्रव्य के जिन उपकरणों की चर्चा ऊपर की गई है उनमें से सर्वाधिक प्रभाव उनका पड़ता है जो दृश्य हैं क्योंकि नेत्रों के माध्यम से सीखना सबसे अधिक प्रभावशाली होता है, क्योंकि—

—इनके माध्यम से समझने में सहायता मिलती है।

—अनुदेश देते समय दृश्य प्रक्रिया भी चलती रहती है अतएव समय बचता है।

—रुचि बनाये रखते हैं।

—अवधान में एकाग्रता लाते हैं।

—मन-मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं।

पर यह ध्यान रहना चाहिए कि उपकरण ठीक प्रकार से काम कर रहा है/रहे हैं। पाठ्य सामग्री आवश्यकतानुसार हिस्सों में विभक्त है। पाठ से संबंधित स्लाइड/स्ट्रिप क्रमानुसार रखी हुई हैं। 'प्रश्न प्रणाली' से यह जाँचते रहना चाहिए कि उपकरण की सहायता से कितना बोधगम्य हुआ है। साथ-के-साथ पाठांश के समाप्त होने पर श्यामपट्ट पर दुहराना चाहिए। किसी भी उपकरण का 20-25 मिनट से अधिक प्रयोग नहीं होना चाहिए। फ़िल्म कुछ लम्बी भी दिखायी जा सकती है। यह भी ध्यान रहे कि ठीक समय पर उचित अवधि के लिए ही प्रयोग किया जाए; जब उपकरण प्रयोग में न लाया जाए तो हटा देना चाहिए, व्यर्थ रखना ठीक नहीं; जब आवश्यक हो, पाठ के हिस्से के रूप में ही पढ़ाया जाए जिससे वह अंश पाठ का पूरक हो।

वस्तुतः इन उपकरणों से अवधान में सहायता मिलती है जिससे रुचि बनी रहती है अतएव इनका प्रयोग यथासमय समुचित ढंग से करना ही श्रेयस्कर

होता है।

2. प्रोद्योगिकी

2.0. भाषा के अध्ययन अध्यापन की बड़ी दीर्घ परम्परा है। पर इधर जब से प्रोद्योगिकी ने भाषा-शिक्षण/प्रशिक्षण के क्षेत्र में पदार्पण किया है आमूलचूल परिवर्तन हो गया है। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है सीखना। कोई भी व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में काम करता हो, चाहे शिक्षण, चाहे कोई फैक्ट्री, चाहे कोई उद्योग उसे कुछ-न-कुछ सीखने की आवश्यकता पड़ती है। अब लगभग सभी क्षेत्रों में संबद्ध व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण देने वाला शिक्षक भी हो सकता है अथवा कोई पुस्तक, मशीन और अब तो कम्प्यूटर भी। शिक्षक अथवा शिक्षक के रूप में पुस्तक, रेडियो (आकाशवाणी), चलचित्र, टेलीविज़न, आदि कोई भी साधन अपनाया जा सकता है जिनकी चर्चा की जा चुकी है।

यह भी उल्लेखनीय है कि सिखाना अथवा सीखना, वह भी स्वयं सीखना दोनों प्रकार से नया ज्ञान उपलब्ध कराया/किया जा सकता है। सीखने, स्वयं सीखने की दिशा में प्रोद्योगिकी ने काफी सफलता प्राप्त की है।

सीखने (अधिगम) के प्रमुख साधनों में आज प्रोग्राम्ड लर्निग है। इसको ही अब शिक्षा प्रोद्योगिकी कहा जाने लगा है, वैसे प्रोद्योगिकी में प्रोग्राम्ड लर्निंग के अतिरिक्त अन्य साधन भी सम्मिलित किए जाते हैं।

यहाँ भाषा-शिक्षण के संदर्भ में प्रोद्योगिकी के अन्तर्गत निम्नलिखित क्षेत्रों को समाहित किया जा रहा है:

1. अभिक्रमित अध्ययन
2. शिक्षण मशीन
3. अन्य शिक्षण विधियाँ/साधन
4. भाषा प्रयोगशाला

2.1. अभिक्रमित अध्ययन (प्रोग्राम्ड लर्निंग)

2.1.0. प्रोग्राम्ड लर्निंग अथवा प्रोग्राम्ड इन्स्ट्रक्शन के लिए हिंदी में कई शब्द प्रचलित हैं जिनमें से उल्लेखनीय है, क्रमसिद्ध अध्ययन, क्रमान्वित अध्ययन, पूर्वायोजित अनुदेश, अभिक्रमित अध्ययन, क्रमबद्ध अध्ययन। इन सब में से यहाँ '**अभिक्रमित अध्ययन**' को ही अपनाया जा रहा है।

इस पद्धति की परिकल्पना अधिकांश में विद्यार्थियों/शिक्षार्थियों को सुनियंत्रित वातावरण में रखने के साथ की गई। नवीनतम शिक्षण पद्धतियों में 'अभिक्रमित अध्ययन' अधुनातन है जिसमें भाषा-विज्ञान, मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र मुख्यतः तथा समाजशास्त्र, तर्कशास्त्र, दर्शन गौणतः सम्मिलित है। इसके द्वारा शिक्षण की ऐसी नवीन पद्धति खोज ली गई है जिसके माध्यम से शिक्षार्थी स्वयं सीखने की ओर प्रवृत्त होता है और सुरुचिपूर्वक सीखता चलता है।

सीखने की क्रिया को प्रभावी साथ ही सरल रखने की दृष्टि से यह पद्धति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। यही कारण है कि आज जहाँ इसका उपयोग भाषा-शिक्षण में किया जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर बैंकिंग, पोस्टल, इंडस्ट्री जैसे विभिन्न व्यवसायों के प्रशिक्षण संस्थानों में भी। इसके लोकप्रिय होने के पीछे मुख्य कारण यही रहा कि इसके द्वारा विषयवस्तु(पाठ्य सामग्री) को छोटे-छोटे पदों में विभक्त कर शिक्षार्थी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और वह एक पद को हृदयंगम कर ही आगे की विषयवस्तु (पाठ्य सामग्री) को सीखने का प्रयत्न करता है। प्रो० रुश ने 'मनोविज्ञान और जीवन' में स्पष्ट किया कि 'अधिगम में एक विशेष प्रकार का निर्देशन जो विद्यार्थी को नई सामग्री सिखाता है और अपने अधिगम को जाँचने का लगातार अवसर देता है' यही कारण है कि इसको पूर्वा-योजित अनुदेश या कभी-कभी स्वचलित अनुदेश भी कहा जाता है।

शिक्षण सिद्धांत के अन्तर्गत हम सुकरात द्वारा प्रचलित विधि का अध्ययन भी करते हैं। इस विधि में अध्यापक श्रृंखलाबद्ध प्रश्न करता है और छात्र एक-एक कर उत्तर देता है अतएव इस विधि को 'प्रश्नोत्तर विधि' भी कहते हैं और सुकरात से प्रेरणा लेने के कारण 'सुकराती विधि'। इस प्रकार अभिक्रमित अध्य-यन का बीज 'सुकराती विधि' में समाहित है अतएव सुकरात को इस नवीन विचारधारा का जन्मदाता भी कहा जाता है।

इस अध्ययन की आधारशिला प्राचीन अनुभवों पर रखी गई और जिस रूप में यह आज उपलब्ध है उसको प्रस्तुत करने का श्रेय बीसवीं शताब्दी के सिडनी एल० प्रेसे तथा बी० एफ० स्किनर को है। सन् 1926 में मनोविज्ञान के डॉक्टर प्रेसे ने एक मशीन का निर्माण किया जिसके द्वारा बच्चा स्वयं अपने उपार्जित ज्ञान की जाँच भी कर सकता था। यही नहीं, यह मशीन बालक द्वारा दिए गए उत्तर को सही अथवा गलत होने की ओर संकेत भी कर देती थी। इस मशीन में ही अभिक्रमित सामग्री को रख दिया जाता था। इसके एकदम बाद इस अध्ययन को कुछ कारणों से आगे नहीं बढ़ाया जा सका। इस बीच कुछ अन्य विद्वान परी-क्षण में लग गए जैसे हार्वर्ड विश्वविद्यालय में बी० एफ० स्किनर तथा हालैंड और पीटरसन, लिटिल तथा एंजिल आदि ने आगे काम किया।

संयोग से स्किनर ने अपनी प्रयोगशाला में जानवरों पर जो प्रयोग किए उनमें इतनी अधिक सफलता मिली कि यह मत बना लिया गया कि यदि किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए कार्य के प्रतिफल की पुष्टि तुरन्त मिल जाए तो उस व्यक्ति के लिए वह उत्प्रेरक का कार्य करता है और वह उसे सीखने के लिए आगे बढ़ता है।

स्किनर के प्रयोगों के कुछ निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

(क) जैसे कहा जा चुका है कार्य के प्रतिफल की पुष्टि से प्रेरणा मिलती है।

(ख) सीखने की क्रिया में पुनर्बलन का लगातार प्रयोग किया जाए तो रुचि

उत्पन्न करने में सहायता मिलती है।

(ग) पुनर्बलन के सिद्धांत से सीखे हुए ज्ञान को स्थायी बनाये रखा जा सकता है।

(घ) पुनर्बलन का प्रयोग जितनी अधिक और जितनी प्रकार से संभव हो किया जाए।

प्रो० रुश ने ही इस सिद्धांत को और आगे स्पष्ट करते हुए कहा कि 'अभिक्रमित अध्ययन वस्तुतः एक ऐसा अनुदेश है जिसमें सामग्री पदों (फ्रेम्ज़)में एक क्रम से प्रस्तुत की जाती है जिससे छात्र को दूसरे एकांश की ओर बढ़ने के पूर्व सही-सही जवाब देना पड़ता है। प्रश्नों की पूर्व योजना शिक्षक द्वारा दी जाती है और उत्तर शिक्षार्थी देता है।'

इससे पहले कि इस सिद्धांत की प्रमुख शाखाओं की विस्तार से चर्चा की जाए यह उल्लेखनीय है कि अब इस संबंध में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है जिसमें सीखने का मनोविज्ञान और तकनीकी व प्रोग्राम्ड लर्निंग में उसके प्रयोग, उत्प्रेरक सिद्धांत, क्रमबद्धता का स्वरूप, उत्तर देने की विधि, उद्देश्य, परिणाम का ज्ञान व्यक्तिगत उत्तरों में अंतर आदि पर बड़े विस्तार से विचार मिलते हैं। विषय और शिक्षार्थी(बालक/प्रौढ़) में निकटतम संबंध स्थापित करने के लिए इस पद्धति के द्वारा पाठ्य बिंदुओं को सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत कर व्यवहार परिवर्तन की ओर उसे अग्रसर किया जाता है।

स्वशिक्षण की इस अभिक्रमित अध्ययन के आधार पर बनी सामग्री को बार-बार शिक्षार्थी पर प्रयोग कर मूल्यांकन विधि से फिर से देखा जाता है। मूल्यांकन के आधार पर सामग्री में भी परिवर्तन निरंतर किया जाता है जब तक प्रयोग द्वारा यह स्पष्ट न हो जाए कि उसके ज्ञान/व्यवहार में परिवर्तन हो गया है।

सरलता और अपनी-अपनी गति सुगमता से आगे बढ़ने का गुण बालक/प्रौढ़ में रुचि उत्पन्न करता है। इस प्रकार अभिक्रमित अध्ययन बालकों के सीखने को न केवल सरल और सुग्राह्य बनाता है वरन् शत-प्रतिशत परीक्षा परिणाम की ओर अग्रसर करता है।

2.1.1. मुख्य विशेषताएँ

इस पद्धति की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

—सीखने का काम खेल-खेल में होना चाहिए। साधारण रूप से यह देखा गया है कि शिक्षार्थी/छात्र अशुद्धियाँ कर देते हैं। किसी भी कार्य को सीखते समय अधिक गलतियाँ होने से अरुचि उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में अच्छा यह रहेगा कि अधिक से अधिक शिक्षार्थी कम-से-कम गलतियाँ करें। 'ट्रायल तथा एरर' विधि से साथ-के-साथ उसको अशुद्धि करे, तो बचाया जाए।

—पाठ्यवस्तु सुनियोजित ढंग से रखी जाए। छोटे-छोटे पदों में विभक्त हो

जिससे छात्रों से सीखते समय कोई गलती न हो। छोटे-छोटे पदों में विभक्त पाठ्यवस्तु को वह आसानी से आत्मसात् कर लेता है।

—पाठ्य सामग्री जो छोटे-छोटे पदों में विभक्त हो, वह शृंखलाबद्ध, क्रमबद्ध हो। उसमें असम्बद्धता किसी भी प्रकार नहीं होनी चाहिए।

—परिणामों की तुरन्त पुष्टि की बात पर विस्तार से कहा जा चुका है।

—यही एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें छात्रों/शिक्षार्थियों का सक्रिय सहयोग लिया जाता है। निष्क्रिय रहने की कोई बात यदि दिखाई दे तो सोचना चाहिए कि प्रोग्राम में कुछ-न-कुछ दोष होगा। प्रोग्राम को बदलने की ओर आवश्यकतानुसार कसाव, परिवर्तन, परिवर्द्धन की ओर शिक्षक/प्रोग्रामर को सक्रिय रहना चाहिए।

—हम यह जानते हैं कि कुछ छात्र शीघ्रता से तथा कुछ देरी से किसी पाठ्य सामग्री को हृदयंगम कर पाते हैं/सीख पाते हैं। अभिक्रमित अध्ययन को अपनी गति से सीखा जा सकता है। परम्परागत कक्षाओं में अपनी गति से सीखने/पढ़ने का अवसर विद्यार्थी को नहीं मिलता है।

—इस अध्ययन द्वारा शिक्षार्थी द्वारा की गई त्रुटियों का लिखित रिकार्ड रहता है। इन त्रुटियों से जहाँ शिक्षार्थी सीखता है वहाँ शिक्षक को भी पता लगता है कि कहाँ उसके प्रोग्राम में अशुद्धि है। प्रोग्रामर स्वयं आत्मालोचन की विधि से सोचने के लिए बाध्य होता है।

—अभिक्रमित अध्ययन के अन्त में परीक्षा भी संभव है जिसमें परिणाम का प्रतिशत शत-प्रतिशत नहीं तो 90 प्रतिशत अवश्य रहना चाहिए।

2.1.2. अभिक्रमित अध्ययन के प्रकार

इस प्रकार इकाईवार पद-पद की जानकारी तथा प्रगति, उत्तर की जाँच का अवसर, क्षमतानुसार, सीखना तथा संशोधन की सुविधा इस सिद्धांत में प्राप्त है। इन पाँच मुख्य सिद्धांतों पर आधारित यह अध्ययन मुख्यत: दो प्रकार का होता है :

रेखीय (लीनियर) प्रोग्रामिंग,
शाखीय (ब्रांचिंग) प्रोग्रामिंग।

2.1.2.1. रेखीय (लीनियर) प्रोग्रामिंग

रेखीय (लीनियर) प्रोग्रामिंग को ही स्किनेरियन प्रणाली भी कहते हैं, क्योंकि डा० स्किनर ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। उनका कथन था कि किसी निश्चित सूचना को किसी एक फ्रेम में प्रस्तुत किया जाए और उसे शिक्षार्थी के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए जिससे कि वह सीधे एक फ्रेम से दूसरे फ्रेम पर चलता जाए। प्रत्येक फ्रेम में दी गई सामग्री जहाँ एक ओर अपने में पूर्ण हो वहाँ दूसरी ओर दूसरे फ्रेम से किसी न किसी रूप से संबंधित।

धीरे-धीरे एक फ्रेम के बाद दूसरे फ्रेम की ओर शिक्षार्थी बढ़ता जाता है। सिखाने वाले को भी यह जानकर संतोष होता है कि वह कुछ न कुछ सीखता हुआ आगे बढ़ रहा है। अगर उसका उत्तर दिए हुए ठीक उत्तर से नहीं मिलता है जो कि प्रायः उस फ्रेम के पीछे और कभी-कभी नीचे अथवा बायें हाशिये में लिखा होता है, तो वह वहाँ रुककर स्वतः विचार कर लेता है। उत्तर लिखने के लिए फ्रेम में ही खाली स्थान छोड़ दिया जाता है।

दिया हुआ उत्तर निश्चित होना चाहिए और उसमें किसी प्रकार का संशय और संदेह नहीं होना चाहिए। किसी अन्य संभावित उत्तर की गुंजाइश भी नहीं होनी चाहिए जिससे कि शिक्षार्थी उत्तर देते समय और मिलान करते समय निर्भ्रान्ति रूप से यह समझ सके कि उत्तर सही है अथवा गलत। शिक्षार्थी को सह-भागी के रूप में बनाये रखना ही प्रोग्रामिंग का मुख्य उद्देश्य है। प्रोग्रामिंग में इस प्रणाली को ही संरचित अनुक्रिया (कन्स्ट्रक्टेड रेस्पोंस) कहते हैं।

प्रोग्रामिंग में फ्रेम का निर्णय इस प्रकार होना चाहिए कि दोहराने की प्रक्रिया भी चलती रहे। 'दोहराने की प्रक्रिया' से तात्पर्य है कि प्रकारान्तर से वही प्रश्न बार-बार पूछा जाए जिससे कि शिक्षार्थी को उन्हीं जरूरी बातों को बार-बार दोहराना पड़े। इसी प्रक्रिया के साथ पुनः याद करने की प्रक्रिया भी चलती रहती है क्योंकि शिक्षार्थी को प्रश्नों के उत्तर याद या स्मरण रखने होते हैं। इस सम्बन्ध में उत्तर प्राप्त करने की जो एक और प्रक्रिया है जिसके अनुसार कई प्राप्त वैकल्पिक उत्तरों में से एक सही उत्तर को ढूँढ़ना पड़ता है। इस प्रक्रिया से याद रखने की प्रक्रिया अधिक अच्छी समझी जाती है।

रेखीय प्रोग्राम बनाना अपेक्षाकृत आसान है। वैसे इसमें भी मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का पालन करना होता है। अगर विषय जटिल या दीर्घ है तो या तो विषय बिखर जाता है अथवा शिक्षार्थी बोर हो जाता है, ऐसी स्थिति में संपूर्ण सामग्री को कुछ खंडों में विभाजित कर लेना चाहिए। प्रोग्राम की बार-बार परीक्षा की जाती है। यदि अशुद्धियों का प्रतिशत पाँच से अधिक है तो प्रोग्राम को अनुपयुक्त मानना चाहिए।

2.1.2.2. शाखीय (ब्रांचिंग) प्रोग्रामिंग

शाखीय प्रोग्रामिंग का सिद्धान्त प्रो० एन० क्राउडर द्वारा किए गए शोध पर आधारित है जिसमें रेखीय के अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत तथा जटिल विषयों पर कभी-कभी एक से अधिक पैराग्राफ भी एक फ्रेम में दे दिए जाते हैं। यह भी संभव है कि पूरी धारणा को भी किसी फ्रेम में दे दिया जाता है। इस प्रकार यह पद्धति रेखीय पद्धति की तुलना में अधिक लचीली है।

शाखीय पद्धति की विशेषताएँ
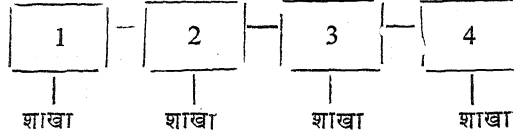
इस पद्धति द्वारा शिक्षार्थी अच्छी पृष्ठभूमि के साथ बिना इधर-उधर जाए अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेता है। हर फ्रेम के बाद मूल्यांकन के निमित्त प्रश्न दिए जाते हैं और इन दिए गए अनेक उत्तरों में से सही उत्तर ढूँढ़ना पड़ता है। अगर शिक्षार्थी ठीक तथा उचित उत्तर ढूँढ़ता चलता है तथा साथ ही समझता चलता है, तो कम-से-कम समय में वह इस निश्चित प्रोग्राम को समाप्त भी कर लेता है।

अगर किसी कारणवश उसने अशुद्ध उत्तर दिया तो किसी पूरक फ्रेम (सब फ्रेम) के द्वारा गलती समझाकर फिर से पहले फ्रेम पर भेजा जा सकता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि प्रोग्रामिंग बनाने वाले को पहले से ही उन सभी संभावित अशुद्धियों का अनुमान कर लेना श्रेयस्कर होगा जिससे किन-किन परिस्थियों में एक शिक्षार्थी से कहा जाए, और वह उस अशुद्धि को कैसे ठीक करे। यह सब पूरक फ्रेमों में समझाया जाएगा और आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग किया जाएगा।

यह पद्धति विद्यार्थियों को शिक्षण सामग्री ही नहीं देती साथ अशुद्धियों को ठीक अवसर भी प्रदान करती है। पग-पग पर शिक्षार्थी को प्रश्नावली का सामना करना पड़ता है और किसी कारण से शिक्षार्थी ठीक उत्तर नहीं दे पाता है तो इन पूरक फ्रेमों में गलती समझायी जाएगी जिससे आगे से वह गलती न करे। यहाँ सोचने का अवसर मिला है। जब वह ठीक-ठीक उत्तर देने का प्रयत्न नहीं कर लेता उसको बार-बार प्रवीणता दिलाई जाती है। प्रवीणता दिलाने के बाद उसको फिर से पहले फ्रेम पर वापस भी भेज दिया जाता है।
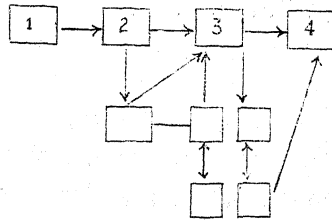
बहुशाखीय पद्धति से शिक्षार्थी को अधिक गहराई से बातों को सिखाया जा सकता है और अधिक गहराई तक ले जाया जा सकता है :
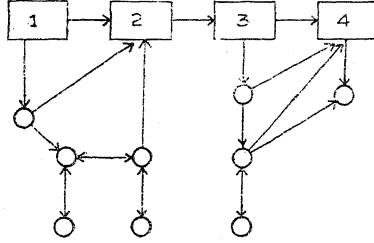
2. 1. 3. प्रोग्राम तथा शिक्षक की उपस्थिति

किसी भी प्रोग्राम को दो स्थितियों में पूरा कराया जा सकता है :
1. शिक्षक की उपस्थिति में, अथवा 2. शिक्षक की अनुपस्थिति में ।

2. 1. 3. 1. शिक्षक की उपस्थिति में

शिक्षक की उपस्थिति में प्रोग्राम पूरा करवाने के कई लाभ हैं (1) शिक्षक स्वत: ही अपने विद्यार्थियों के बीच न केवल प्रोग्राम को वितरित कर सकता है वरन् उसमें दिया हुआ अनुदेश भली प्रकार समझा सकता है और जहाँ कहीं आवश्यक हो वहाँ उदाहरण देकर भी समझा सकता है । हो सकता है कि बिना उदाहरणों के अनुदेश स्पष्ट न हों, घर पर या कक्षा के बाहर प्रोग्राम पूरा करते समय शिक्षार्थी को कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो ऐसी स्थिति में वह बार-बार अगर शिक्षक से पूछेगा, और किसी बात को बार-बार समझाने में हो सकता है कि और अधिक समय देना पड़े। इस प्रकार समय की दृष्टि से भी बचत होगी ।

शिक्षक की उपस्थिति में निरीक्षण स्वत: ही हो जाता है और अनुशासन की समस्या भी नहीं खड़ी होती। और सबसे बड़ा लाभ यह है कि बीच-बीच में शिक्षार्थी द्वारा दिए गए उत्तर को शिक्षक देख सकता है और अगर वह यह अनुभव करता है कि अशुद्धियाँ अधिक हो रही हैं तो वह उनको मार्ग-दर्शन या अनुदेश दे सकता है । प्रोग्रामिंग पद्धति में प्राय: उत्तर पीछे/नीचे अथवा बगल में दिया होता है । अतएव विद्यार्थियों को सहज उसको जानने की इच्छा होती है। ऐसी स्थिति में अध्यापक की अनुपस्थिति में पूरा तो नहीं लेकिन काफी देर तक रोक लगा सकता है अन्यथा शिक्षार्थी स्वत: ही सोच-समझकर उत्तर को लिखकर दिए हुए उत्तर को देखने की ओर अग्रसर होता है। प्रारंभिक अवस्था में शिक्षार्थी की प्रवृत्ति को रोकना बहुत ही आवश्यक है । अतएव शिक्षक की

उपस्थिति लाभप्रद ही सिद्ध होगी। शिक्षक के कक्षा में रहने के कारण प्रोग्राम के अन्त में वह सिखायी हुई सामग्री के आधार पर परीक्षा भी ले सकता है।

शिक्षक की उपस्थिति में जहाँ इतने गुण हैं वहाँ कुछ बुराइयाँ भी हैं : हर प्रोग्राम एक निश्चित समय में पूरा किया जाना चाहिए। शिक्षक की उपस्थिति समयबद्ध प्रोग्राम शिक्षार्थी को बाध्य करते हैं कि वह शीघ्रता से काम करे क्योंकि उसके अन्य अच्छे साथी तेज़ी से प्रोग्राम में आगे बढ़ रहे हैं तो वह भी क्यों न आगे बढ़े, इस प्रकार ग्रुप-प्रेशर के अन्तर्गत उसकी अपनी निजी गति में बाधा पड़ती है। हर शिक्षार्थी अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ना चाहता है। और प्रोग्रामिंग का लक्ष्य भी यही है कि हर शिक्षार्थी अपनी गति से आगे बढ़े और शिक्षक की उपस्थिति से अन्य साथियों के साथ यह प्रवृत्ति कि वह पीछे रह रहा है और भली प्रकार से सोचने-समझने का मौका नहीं देती, क्योंकि शिक्षक से उसको आशंका है कि वह बीच-बीच में पूछते रहने पर टोक भी देगा।

2.1.3.2. शिक्षक की अनुपस्थिति में

शिक्षक की अनुपस्थिति में प्रोग्राम पूरा कराये जाने के लिए काफी समय की आवश्यकता है या तो कक्षा से शिक्षक को उस अवधि के लिए एक दूसरे काम पर भेज दिया जाए अथवा शिक्षार्थी को यह छूट दे दी जाए कि वह उस को चाहे घर पर पूरा करे अथवा जहाँ चाहे वहाँ बैठकर पूरा करे। इस प्रकार उसे उपयुक्त समय सोचने के लिए मिलता है और वह स्वतंत्र रूप से और बिना किसी रुकावट या टोका-टोकी के गहराई से सोचने के लिए बाध्य होता है। एक और लाभ भी है कि कक्षा के समय की बचत भी होती है तथा विद्यार्थीभी कुछ और सीख सकते हैं और अध्यापक भी कुछ और काम कर सकता है। ग्रुप-प्रेशर से उसे मुक्ति मिलती है साथ ही स्वयं सीखने सोचने-समझने की ओर वह प्रवृत्त होता है जो उसका मुख्य उद्देश्य है।

2.1.4. प्रोग्राम में अनुदेशों का महत्त्व

प्रोग्राम में दिए गए अनुदेशों/निर्देशों का विशेष महत्त्व होता है जिसे/जिन्हें शिक्षार्थी को पालन करना चाहिए। विशेष रूप से नीचे लिखे अनुदेश दिए जाते हैं :

(क) सूचना देने के लिए

प्रोग्राम में कितने भाग हैं, प्रत्येक भाग में कितने फ्रेम हैं, किस भाग का किस भाग से संबंध है। जिन चिह्नों का प्रयोग किया गया हो तो उसकी विशेष जानकारी।

(ख) पढ़ने के लिए

फ्रेम को कैसे पढ़ेगा। कभी-कभी उत्तर हाशिये पर, ऊपर-नीचे कहीं लिखे रहते हैं। यदि पुस्तक इस ढंग से मुद्रित नहीं की गई तो निर्देश आवश्यक हैं।

(ग) उत्तर कैसे लिखना है

रिक्त स्थान पर लम्बी रेखा है, डोटेड (टूटी) लाइन है अथवा निश्चित शब्दों/पदों के हिसाब से स्थान/डैश रखे गए हैं, इनका स्पष्ट निर्देश होना चाहिए।

(घ) उत्तर की शुद्धता की जाँच

फ्रेम पढ़कर जो उत्तर लिखा गया उसकी जाँच किस प्रकार की जाए इसका स्पष्ट अनुदेश।

(च) समय

समय निश्चित हो तो लिख दें अन्यथा अपनी गति से आगे बढ़ने का निर्देश दें।

'नेमी कार्यालय टिप्पणियाँ' शीर्षक से जो प्रोग्राम राजभाषा विभाग ने प्रकाशित किया है उसमें दिए गए अनुदेश इस प्रकार हैं :

1. यह बहुत ज़रूरी है कि एक समय में एक ही फ्रेम पढ़ें।
2. फ्रेम में दी गई पूरी सामग्री पहले ध्यान से पढ़ें यदि आवश्यकता हो तो दुबारा पढ़ें और फिर नीचे अपने उत्तर लिखें।
3. एक खाली जगह पर एक ही शब्द भरें। दो या दो से अधिक खाली जगहों पर दो या दो से अधिक शब्द भरें।
4. कुछ जगहों पर शब्द का पहला या पहला व आखिरी अक्षर ही लिखे गए हैं। इस हालत में आपको उनके बीच शब्द के सही अक्षर भरने होंगे।
5. इस प्रोग्राम्ड लर्निंग सामग्री के कुछ स्थानों पर संकेत या तो कोष्ठक में और या फ्रेम के अंत में मिलेंगे। आप अपने उत्तर उनकी सहायता से पूरे कर सकते हैं।
6. जब कभी आपको शब्द या वाक्यांश और रिक्त स्थानों में मध्य 'या' शब्द मिले तो आप शब्द या वाक्यांश को अनुदेश के अनुसार हिंदी या अँग्रेज़ी में लिख सकते हैं।
7. इस पुस्तक के अन्त में पैनल (तालिका) बुक संलग्न है। जब आपसे कहा जाए तो एक ही पैनल खोलें। पैनल को बहुत ध्यान से पढ़ें और उससे फ्रेम को पूरा करने में तभी मदद लें जब आपको कठिनाई अनुभव हो, दूसरे पैनल तब तक न देखें जब तक आपसे न कहा जाए।
8. अपने उत्तरों को पृथक् कागज़ पर लिखें। कृपया प्रोग्राम्ड लर्निंग सामग्री के ऊपर न तो लिखें न ही निशान लगाएँ।
9. अपने उत्तरों को सफे के पीछे लिखे गए सही उत्तरों से मिलाएँ।

10. आप पहले पढ़े प्रोग्रामों को दुबारा देखना चाहें तो देख सकते हैं ।
11. यदि आप यह समझें कि आप कुछ भाग नहीं समझ पाए हैं तो प्रोग्राम सामग्री के उस भाग को दुबारा पढ़ें और जब-जब ज़रूरी समझें पढ़ें ।
12. कुछ फ्रेमों में आप लम्बा खाली स्थान पाएँगे । उसका मतलब यह है कि आपको पूरा पदबंध (फ्रेज़) या वाक्य लिखना है ।
13. अब प्रोग्राम्ड सामग्री के अनुसार कार्य प्रारंभ करें ।
    यदि आपने नियम समझ लिए हैं तो—
    (1) प्रत्येक फ्रेम को ध्यान से पढ़ें ।
    (2) उत्तर दूसरे कागज़ पर लिखें ।
    (3) अपने उत्तरों को फ्रेम के पीछे लिखे उत्तरों से मिलाएँ । इसी प्रकार के अनुदेश दिए जा सकते हैं ।

2.1.5. भाषा-शिक्षण तथा अभिक्रमित अध्ययन

अन्य विषयों—विज्ञान, गणित, भूगोल आदि के संदर्भ में इस पद्धति को विशेष उपयोगी माना गया है पर भाषा-शिक्षण में भी इसका महत्त्व कम नहीं । भाषा की ध्वनि-प्रक्रिया के अन्तर्गत ध्वन्यंकन, स्वनिमविज्ञान, दो ध्वनियों के मध्य पहचान, रूप ध्वनि-प्रक्रिया, रूप विज्ञान तथा वाक्य विज्ञान आदि विभिन्न पक्षों का अध्ययन/शिक्षण किया जा सकता है । वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत लिखित वाक्य, उसकी स्वरलहर, वाक्यांश—उपवाक्य, पदबंध आदि का अध्ययन इसकी सहायता से किया जा सकता है । अगर एक बार भाषा के रूप की व्याख्या हो जाए, निर्विवाद रूप से जो कुछ शिक्षार्थी को देना/पढ़ाना है वह सामने आ जाए तो अध्यापन की योजना, सीखने वाले की ज़रूरतों को देखते हुए प्रोग्रामर प्रोग्राम बना सकता है ।

राजस्थान के शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत हिंदी व्याकरण के विविध पक्षों पर प्रोग्राम बनाये गए हैं । डा० देवल तथा भागीरथ सिंह शेखावत के अनेक प्रोग्राम उल्लेखनीय हैं । हिमाचल विश्वविद्यालय के शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत व्याकरणिक रूपों के कुछ अंशों पर प्रोग्राम बनाए गए हैं । उदाहरणार्थ 'हिंदी में संस्कृत उपसर्ग' प्रोग्राम लिया जा सकता है । प्रारंभ में परिचय तथा विहंगम दृष्टि के अतिरिक्त अभिक्रम के उद्देश्य दिए गए हैं । संपूर्ण प्रोग्राम कुछ भागों में विभक्त हैं—उपसर्ग की परिभाषा, शब्दों के साथ उपसर्गों का योग और उनसे वियोग, उपसर्गों के अर्थ, एक मूल शब्द के साथ विभिन्न एक या अधिक उपसर्गों का योग, उपसर्गों के विभिन्न प्रयोग । इस प्रकार कुल फ्रेमों की संख्या 26 (क), 60 (ख), 110 (ग), 24 (घ), 35 (ङ) इस प्रकार है जिनके अन्त में निष्पत्ति-परीक्षा दी गई है ।

'अनु'—उपसर्ग के संबंध में फ्रेम इस प्रकार हैं :

ख—14 'अनुरूप' शब्द एक मूल शब्द और एक उपसर्ग के योग से बना है। 'अनुरूप में मूल शब्द' रूप है और उपसर्ग 'अनु' है। 'अनुचर' शब्द एक मूल शब्द और एक उपसर्ग के योग से बना है। इसमें मूल शब्द 'चर' है और 'उपसर्ग' '—' है।

ख—15 'अनुगामी' में मूल शब्द 'गामी' है और एक उपसर्ग है।

(उत्तर—अनु)

लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी के अन्तर्गत भाषा संकाय में प्रशासन में बहुप्रयुक्त पदबंधों पर प्रोग्रामों की सीरीज़ तैयार की गई है, जिसके पहले खंड 'नेमी कार्यालय टिप्पणियाँ' में 178 फ्रेम हैं साथ ही अंत में पैनल बुक में सात पैनलों में 60 वाक्यांश/वाक्य हैं।

पत्राचार माध्यम में भी अभिक्रमित अध्ययन का विशेष उपयोग किया जा सकता है।

2.1.6. जाँच के आधार पर प्रोग्राम

जब प्रोग्राम पूरा हो जाता है और विभिन्न छात्रों/शिक्षार्थियों में इसका प्रयोग हो जाता है तो उसकी जाँच के आधार पर प्रोग्राम को पुनः बदला जाता है उसमें परिमार्जन, परिवर्द्धन किया जाता है। यह जाँच का कार्य कई प्रकार के परिणामों पर आधारित होता है। जाँच कई प्रकार से की जा सकती है :

क—व्यक्तिगत जाँच

ख—सामूहिक जाँच

इस प्रकार के कुछ परीक्षणों के बाद संशोधन कर प्रोग्राम प्रकाशित किया जा सकता है।

शिक्षार्थियों के लिए अभिक्रमित अध्ययन सामग्री द्वारा अध्यापन/शिक्षण की व्यवस्था करने पर शिक्षक वर्ग को अध्यापन कार्य से पर्याप्त समय मिल जाएगा जिसका सदुपयोग अन्य प्रोग्रामों के बनाने तथा पुरानों में संशोधन के लिए किया जा सकता है।

2.2. शिक्षण मशीन (टीचिंग मशीन)

आज का युग मशीन प्रधान युग है। शैक्षिक तकनीक में शिक्षण मशीनों का प्रयोग भी प्रारंभ हो गया है। प्रो० एरिक ने लिखा है, 'इस शताब्दी में मुद्रण के आविष्कार के बाद पहली बार शिक्षण में नई तकनीकियों का प्रयोग किया जा रहा है जो निश्चय ही शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया को रूपान्तरित कर देगी, यद्यपि यह रूपान्तर क्या होगा, यह कल्पना की बात है। फिर भी अब तक अनेक प्रकार की स्वचालित शिक्षण मशीनें आ चुकी हैं। अब तो संगणक (कम्प्यूटर) के

युग में पदार्पण किया जा रहा है।

कुछ लोग 'अभिक्रमित अध्ययन' को ही शिक्षण मशीन कह देते हैं पर दोनों में अंतर है। यह सत्य है कि 'टीचिंग मशीन' में अभिक्रमित अध्ययन का उपयोग किया जाता है। जब कोई विधा जो अध्ययन को सरल और सुविधापूर्ण बनाती है तो उसे अति प्राचीन गणनापट् से लेकर अधुनातन संगणक तथा शिक्षण मशीन के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं। इन मशीनों को तीन भागों में बाँट सकते हैं :

क—स्वघोषित या स्वचालित शिक्षण मशीन

ख—स्वशिक्षक मशीन

ग—संगणक मशीन

कुछ लोगों की धारणा है कि अभिक्रमित अध्ययन की विधि को ठीक-ठीक उपयोग में लाने के लिए टीचिंग मशीन की आवश्यकता होती है। 'ब्रिस्टल' ने इस प्रकार की स्वचालित मशीनों का निर्माण किया है जिसके माध्यम से प्रबंध विज्ञान की अनेक शाखाओं का अध्ययन किया जा सकता है। आज बाज़ार में साधारण से लेकर कम्प्यूटर आधारित अनेक प्रकार की मशीनें उपलब्ध हैं। प्रेसे तथा स्किनर की मशीनें तो प्रसिद्ध हैं।

2.2.1. टीचिंग मशीन की विशेषताएँ

1. इनसे व्यक्तिगत प्राभ्यास कराया जा सकता है, सामूहिक प्राभ्यास की कोई व्यवस्था नहीं।
2. प्रत्येक फ्रेम के बाद ठीक उत्तर आएगा, ठीक उत्तर की जाँच स्वयं करनी होगी।
3. मशीन स्वयं ठीक उत्तर देने के लिए किसी दूसरे फ्रेम की ओर जाने का निर्देश दे सकती है।
4. एक बार ठीक उत्तर आ जाने पर जो प्रत्युत्तर दे दिया गया है उसे नहीं बदला जा सकता।
5. गति तेज रखनी होती है तभी लाभ उठाया जा सकता है।

2.2.2. कुछ महत्त्वपूर्ण टीचिंग मशीनें

कुछ उपयोगी टीचिंग मशीनों का विवरण इस प्रकार है :

1. Grundymaster Linear Teaching Machine.
2. Grundytutor Branching Teaching Machine.
3. Group Teaching Machine.
4. Industrial and Commercial Education Machine.
5. RITT Audio Tape Instruction.
6. Programmed Bridge Simulator.

ये सभी मशीनें पर्याप्त व्ययसाध्य हैं । जैसे-जैसे विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जाएगी और पढ़ने के घंटे बढ़ेंगे इन मशीनों के मूल्य कम होते जाएँगे । प्रो० रिचमांड ने कहा है कि शिक्षण मशीनों के विकास की तीसरी अवस्था अब आ चुकी है जबकि संगणक (कम्प्यूटर) की सहायता से विद्यार्थी/शिक्षार्थी सीख रहे हैं । संगणक-संबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत बहुत से प्रोग्राम आते हैं । उक्त सभी मशीनों में रिट (RITT) की पद्धति स्वशिक्षण पर आधारित है जिसको स्वीडिश 'राशनल इन्स्ट्रक्शन एण्ड ट्रेनिंग विद रिकार्डेड टेप्स' कहा जाता है। यह शिक्षक के स्थान पर नहीं पर उसके कार्य में सहायक है । शिक्षक चाहे तो प्रशिक्षण पद्धति को भी रिकार्ड कर देता है । यह विश्लेषणात्मक पद्धति का विस्तार मात्र है ।

2.3. अन्य शिक्षण विधियाँ/साधन

शिक्षण-प्रशिक्षण में अन्य साधन भी कारगर सिद्ध हुए हैं । इन विधियों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

(क) फ्लोचार्ट

इसमें प्रत्येक विचार के दो हिस्से होते हैं। जिनका उत्तर हाँ या न में दिया जाता है । शिक्षार्थी हाँ की ओर बढ़ता जाता है । यह चार्ट रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

(ख) वृक्षतालिका (लोजीकल ट्री)

इसमें पाठ्य-सामग्री को वृक्ष के रूप में शाखा-प्रशाखाओं के साथ प्रस्तुत किया जाता है। भाषा-शिक्षण में छन्द शास्त्र, व्याकरण के विभिन्न पक्षों पर इस प्रकार के चार्ट बनाये जाते रहे हैं । यह उसका ही व्यवस्थित रूप है।

(ग) समस्या समाधान के गुरू (एल्गोरिथ्ज़्म)

इस विधि में पाठको को कुछ पाठ्य सामग्री प्रश्नोत्तर विधि से दी जाती है। किस प्रकार वह आगे बढ़े इसके लिए उसे आवश्यक निर्देश दिए जाते हैं। किसी भी समस्या का विधिवत् हल ढूंढ़ने के लिए अनुदेशों का एक निश्चित क्रम से पालन करना होता है । इसके भी दो प्रकार हो सकते हैं— एक में समस्या को समझा जाता है और दूसरे में उसका समाधान ढूंढ़ा जाता है। भाषा-शिक्षण में अभी इस विधि का प्रयोग नहीं किया जा रहा है । इससे स्मरण रखने में भी सहायता मिलती है ।

(घ) बेल तथा हावेल लैंग्वेज मास्टर

यह प्रोग्राम अँग्रेज़ी सिखाने के लिए बनाये गए हैं जिसमें मैग्नेटिक टेप स्ट्रिप पर सारी सामग्री टेप की हुई रहती है। टेप स्ट्रिप बार-बार दुहरायी जाती है यही सारी सामग्री कार्ड पर भी लिखी हुई होती है। अभी इसी प्रकार की दृश्य-श्रव्य सामग्री हिंदी भाषा के लिए नहीं बन सकी है ।

हो सकता है भविष्य में भारत सरकार अथवा किसी संस्थान के तत्त्वावधान में बनायी जा सके। साउंड फिल्म लूप की चर्चा दृश्य-श्रव्य सामग्री के साथ की जा चुकी है। इसमें प्रत्येक पाठ्य सामग्री प्रोग्राम्ड रहती है।

2. 4. भाषा-प्रयोगशाला

'भाषा-प्रयोगशाला' भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में वस्तुत: सहायता मात्र है, न कि शिक्षक के स्थान पर प्रतिस्थापन। प्रारंभ में प्राय: यह समझा जाता रहा है कि भाषा-प्रयोगशाला आने पर शिक्षक की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। पर अब यह बात तथ्य से परे सिद्ध हुई है। भाषा-प्रयोगशाला स्थापित होने पर शिक्षक का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। शिक्षक को कक्षा में तो उपस्थित रहना पड़ता है, साथ ही प्रयोगशाला में और भी अधिक सक्रिय। देखा जाए तो अनेक दृश्य-श्रव्य साधनों तथा प्रोद्योगिकी में से एक साधन 'भाषा-प्रयोगशाला' है जिसका अत्यधिक महत्त्व है। कक्षा-अध्यापन का पूरक 'भाषा-प्रयोगशाला' है क्योंकि यह और कुछ नहीं बस बहुत से टेपरिकार्डरों का सामूहिक स्वरूप है जो इस प्रकार से व्यवस्थित है कि शिक्षक अपने टेपरिकार्डर से कक्षा को जो चाहे प्रसारित कर सकता है और साथ ही विद्यार्थी के पास स्थित टेपरिकार्डर में रिकार्ड भी कर सकता है।

कक्षा की अपेक्षा भाषा-प्रयोगशाला में विद्यार्थी अधिक सक्रिय भाग लेता है। उसकी यह सक्रियता ही अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। भाषा-प्रयोगशाला के पाठ अधिक प्रभावशाली होते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

(1) भाषा का रिकार्डिंग,अधिक स्वाभाविक वातावरण की सृष्टि करता है।

(2) शिक्षक-कन्सोल से प्रसारित पाठ की ध्वनियाँ सीधे विद्यार्थी के कान में पहुँचती हैं फलत: उनका प्रभाव कक्षा तथा लिंग्वाफोन से भी अधिक पड़ता है।

(3) विद्यार्थी अपने ही माइक से अपनी आवाज़ को इयर-फोन की (कर्ण-यंत्र) की सहायता से सुन सकता है।

भाषा-शिक्षण में अब प्रारंभ में पढ़ने-लिखने के स्थान पर सुनने-बोलने पर बल दिया जा रहा है। इस सिद्धान्त का सही अर्थों में पालन भाषा-प्रयोगशाला में होता है। विद्यार्थी जब किसी भी भाषा को जितना अधिक बोलेगा-सुनेगा उतना ही अधिक वह उसे बोलने-लिखने में समर्थ होता चलेगा। कालान्तर में वह जितना अधिक उस भाषा को पढ़ने-लिखने में समर्थ होगा, उतना ही अधिक निष्णात होता चलेगा। पढ़ने के बजाय श्रवण-कथन अभ्यास में अधिक व्यस्त रहना ही उसको अपने लक्ष्य में समर्थ बनाएगा। फलत: वह आसानी से लक्ष्य भाषा में बातचीत कर सकता है जिसकी काफी संभावना भाषा-प्रयोग-

शाला में है । इसके ठीक विपरीत लिपि के अभ्यास से पढ़ने-लिखने में तो गति बढ़ती है पर भाषा के बोलने के पक्ष में नहीं। प्रारंभ में भाषा के एक पक्ष पर अधिक केन्द्रित होने से भाषा में तीव्रता से गति आती है। बाद में सभी पक्षों पर समान बल दिया जाना चाहिए।

प्रो० एडविन पैकर के अनुसार 'भाषा-प्रयोगशाला वैद्युतिकीय साजसज्जा से युक्त एक शिक्षण-कक्ष होता है जिसका उपयोग भाषाओं में समूह शिक्षण के लिए किया जाता है। कक्ष-सज्जित प्रयोगशालाओं में हर एक छात्र के लिए एक-एक बूथ (पीठिका) होता है जो विद्यार्थियों को शोरगुल से अलग रखता है और प्रत्येक बूथ पर शीर्ष ध्वनि यंत्र (हेड सेट) रहता है जिसकी सहायता से
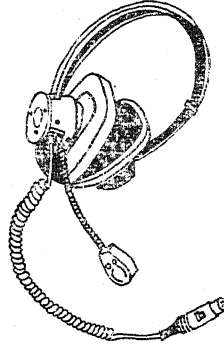
हेडसेट—माइक के साथ

वे बोलते हुए अध्यापक या टेपरिकार्डर या अध्यापक के नियंत्रण में बजने वाले रिकार्ड को सुनते हैं। अधिक सज्जित प्रयोगशालाओं में विद्यार्थियों के द्वारा पहने जाने वाले हेड फोन्स एक संलग्नक के साथ फिट रहते हैं जो लोगों के मुख के सामने एक माइक साधे रहते हैं और विद्यार्थी के पास एक टेपरिकार्डर प्रायः दोहरे ट्रैक और दोहरे रिकार्ड को पुनः चलाने वाले शीर्ष के साथ उसके नियंत्रण में रहता है।'

2.4.1. भाषा-प्रयोगशाला की उपयोगिता

भाषा-प्रयोगशाला की उपयोगिता निस्सन्देह है। यह वह स्थान है जहाँ कक्षा में पढ़ाई गई पाठ्य सामग्री का प्राभ्यास कराया जाता है। यदि कक्षा तथा प्रयोगशाला में समुचित समन्वय रहे तो यह काफ़ी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसकी उपयोगिता के विविध पक्ष हैं :

1. वातावरण-निर्माण संभव है।
2. लक्ष्य भाषा की ध्वनि व्यवस्था तथा वाक्य साँचों का प्राभ्यास।

3. सुनी हुई पाठ्य सामग्री दुहराने के लिए अवसर प्राप्त होता है।
4. अपनी-अपनी गति से विद्यार्थी अभ्यास कर सकता है।
5. अपेक्षाकृत कम तेज बुद्धि वालों पर प्रारंभ से ही नियंत्रण रखा जा सकता है।
6. बिना पूरी कक्षा का ध्यान आकर्षित किए शिक्षक व्यक्तिगत ध्यान दे सकता है और विद्यार्थी की अशुद्धियों को वहीं-के-वहीं ठीक कर सकता है।
7. शिक्षक की अशुद्धियों को फौरन टोकना चाहिए साथ ही शुद्ध उच्चारण, शब्द या वाक्य साँचा उसके कान में सीधे डालकर दुहरवाना चाहिए जिससे विद्यार्थी लक्ष्य भाषा का ठीक-ठीक उच्चारण कर सके साथ ही उसकी आदत पड़े कि वह टेप पर ठीक-ठीक प्रत्युत्तर/प्रतिवचन (रेस-पोंस) दे और स्वयं अपने को ठीक कर सके। तत्काल अशुद्धि ठीक कर शुद्ध उच्चारण सुनने की सुविधा भाषा-प्रयोगशाला में अधिक संभव है। तत्काल शुद्ध उत्तर प्राप्त करने से 'प्रबलन' प्राप्त होता है और विद्यार्थी में लक्ष्य भाषा की ओर बढ़ने का आत्म-विश्वास बढ़ता है।
8. कक्षा में दुहरवाने में जो समय लगता है उसकी बचत होती है जिसका शिक्षक अन्य किसी काम में सदुपयोग कर सकता है। भाषा पढ़ाने के लिए अच्छा योग्य प्रशिक्षित शिक्षक चाहिए। संयोग से अगर कहीं ऐसा नहीं है तो योग्य प्रशिक्षित शिक्षक द्वारा तैयार टेप पाठों का उपयोग भाषा-प्रयोगशाला में अपेक्षाकृत कम योग्य अप्रशिक्षित शिक्षक कर सकता है और वह स्वयं भी सीख सकता है।
9. जहाँ तक लक्ष्य भाषा के विभिन्न पक्ष/कौशल हैं उनमें से निम्नलिखित पक्षों का अध्यापन भाषा-प्रयोगशाला में सरलता से संभव है—
(1) ध्वनि-भेद, (2) उच्चारण अनुकृति, (3) पदबंध, (4) उपवाक्य, (5) वाक्य, (6) मुक्त भाषण, (7) श्रुतलेख, (8) पठन, (9) शब्दावली, (10) श्रवणाभ्यास, तथा (11) अनुच्छेद को बोधगम्य कराना।
10. सीधे वार्तालाप की सुविधा पर आगे विस्तार से कहा जाएगा।
11. भाषिक पक्षों के अतिरिक्त भाषा के बोलीगत विविध स्वरूप तथा संस्कृति का अध्यापन भी संभव है।
12. विद्यार्थी के कार्य की जाँच उसको बिना बताये भी की जा सकती है और उसके उपचार के लिए शिक्षक विचार-विमर्श कर सकता है।

इससे पूर्व कि भाषा-प्रयोगशाला के विविध पक्षों पर चर्चा की जाए, यह उल्लेखनीय है कि जब, जहाँ भाषा-प्रयोगशाला की स्थापना की आवयश्कता का अनुभव हो, उसके लिए उपयुक्त धनराशि, स्थान तथा प्रशिक्षित तकनीकी व्यक्ति की संभावनाएँ देख ली जाएँ। यदि पहले से नियुक्त शिक्षक इस दिशा में प्रशि-

क्षित नहीं हैं तो उन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण दिलाया जाए।

2.4.2. भाषा-प्रयोगशाला के लिए स्थान

स्थान की दृष्टि से जो नितांत आवश्यक है :

1. बूथों की संख्या की दृष्टि से एक बड़ा कमरा। कमरा इतना बड़ा हो कि उसमें शिक्षक-कन्सोल तथा प्रोग्राम प्रसारण के निमित्त बड़े-बड़े 4 टेप-रिकार्डर आ सकें। कुछ आदर्श रेखाचित्र साथ में दिए जा रहे हैं।
2. टेप-लाइब्रे री के लिए कक्ष में उपयुक्त अलमारियाँ हों। अच्छा यह रहेगा कि पास में ही कोई छोटा कक्ष हो। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अलमारियाँ स्टील की न हों क्योंकि कभी-कभी रिकार्ड किए हुए टेप बेकार हो जाते हैं।
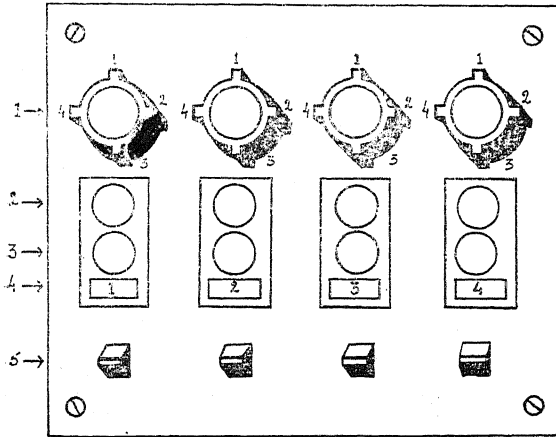
कन्सोल का एक भाग
Students Monitoring Panel

(1) ग्रुप सेलेक्टर, (2) हरा बल्ब, (3) लाल बल्ब, (4) विद्यार्थी बूथ का नम्बर, तथा (5) विद्यार्थी बूथ से बात करने के लिए स्विच।

3. साउंड-प्रूफ रिकार्डिंग स्टूडियो बनाने के लिए कोई छोटा कमरा।

4. यंत्रों/टेप रिकार्डरों की मरम्मत आदि के लिए पृथक् कक्ष की व्यवस्था

फ़र्नीचर में विद्यार्थी-बूथों तथा शिक्षक के कंसोल का निर्माण उस कंपनी से ही करवाया जाए जिससे प्रयोगशाला के उपकरण खरीदे जाएँ अन्यथा काफी प्रशिक्षित बढ़ई ही इस कार्य को विशेष निरीक्षण में पूरा कर सकता है। बिजली के तारों का वायरिंग, वोल्टेज-स्टेबलाइजर आदि की व्यवस्था कंपनी के इंजीनियरों के निरीक्षण में सम्पन्न करायी जाए। फिलिप्स कं० द्वारा दिया गया 32 बूथों का आदर्श ले-आउट यहाँ दिया जा रहा है :
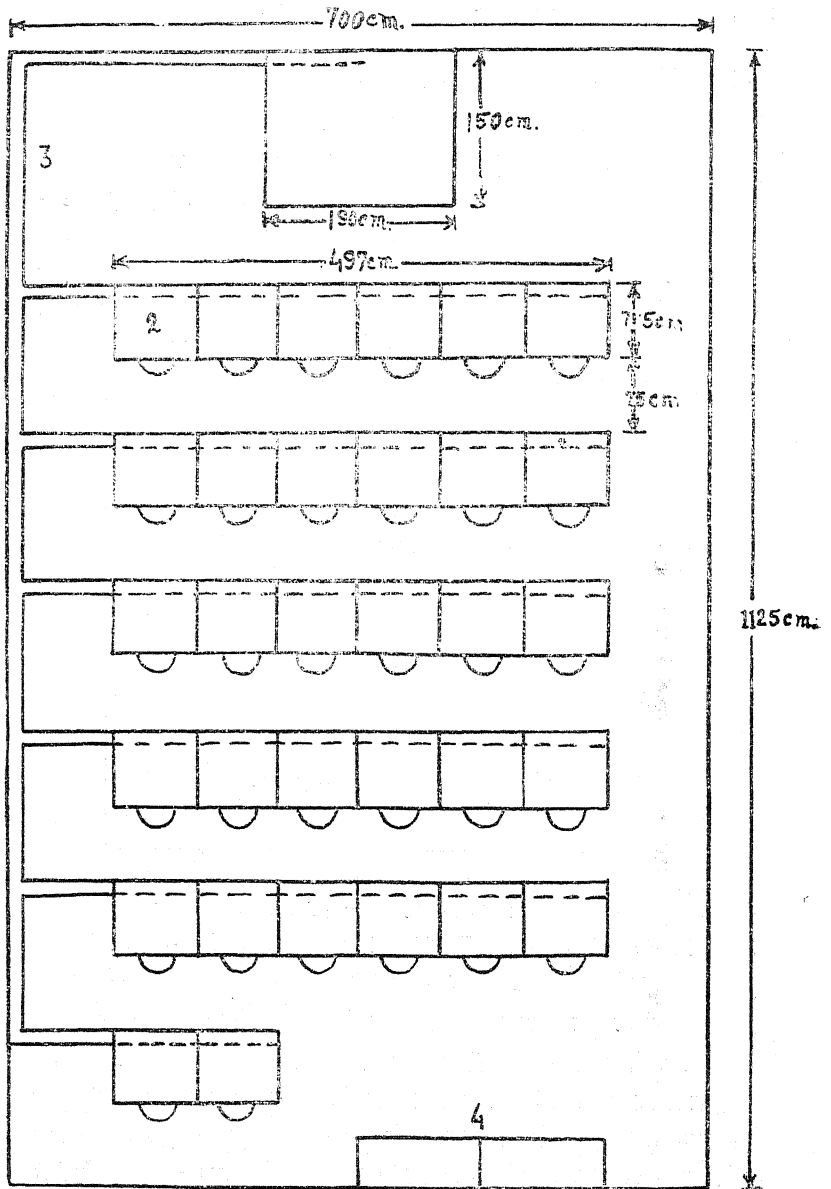
1. Platform with teacher's Console, 2. Student's booth.
3. Cableduct. 4. Storage Cabinet.

2.4.3. भाषा-प्रयोगशाला के प्रकार

भाषा योगशालाएँ कई प्रकार की हो सकती हैं। इनका विभाजन कई दृष्टियों से किया जा सकता है। यदि हम प्रयोगशालाओं के निर्माणकर्त्ताओं की ओर ध्यान न दें तो भी विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता :

2.4.3.1. तार की दृष्टि से

तार-युक्त प्रयोगशाला।

तार-मुक्त प्रयोगशाला।

2.4.3.1.1. तार-युक्त

इस प्रकार की प्रयोगशालाओं में बिजली के तारों के द्वारा 'कन्सोल विद्यार्थी बूथ/बूथों से जुड़ा रहता है जो प्रायः विद्युत चालित होते हैं। इस प्रकार की प्रयोगशाला में बूथ एक स्थान पर स्थिर होते हैं। विद्यार्थी को निश्चित स्थान पर बैठना होता है। तार (वायरिंग) भूमिगत रहें, तो आवागमन में सुविधा रहती है। अगर वायरिंग फ़र्श के ऊपर या दीवार पर की जाए तो अत्यधिक संख्या में तार होने के कारण उनको किसी केसिंग में रखना चाहिए। इस विधि से आवागमन में तो असुविधा रहती है पर कभी किसी प्रकार की खराबी को दूर करने में सुविधा रहती है। ये प्रयोग-शालाएँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं जिनका वर्णन आगे किया जाएगा।

2.4.3.1.2. तार-मुक्त

'तार-मुक्त' से वस्तुतः तात्पर्य बेतार-के-तार (वायरलेस) की प्रयोगशाल, से है जिसमें शिक्षक ट्रांसमीटर के माध्यम से भाषा पाठों का प्रसारण करता है और विद्यार्थी रिसीवर-यंत्र द्वारा उनको विभिन्न फ्रीक्वेंसीज पर ग्रहण करता है। पाठ प्रसारण के स्थान से किसी निश्चित दूरी तक ही एक विशिष्ट प्रकार के लूप एरियल के माध्यम से इनको ग्रहण किया जा सकता है। समस्त व्यवस्था तार-मुक्त होने के कारण तथा बैटरी-चालित रिसीवर होने के कारण विद्यार्थी बूथ को कहीं भी उठाया-धरा जा सकता है। फलतः विद्यार्थी सुविधानुसार कहीं भी किसी भी मुद्रा में प्रसारित पाठों को सुन सकता है। इसकी व्यवस्था काफी सरल तथा कम खर्चीली है। स्थान भी अपेक्षाकृत कम घिरता है। संपूर्ण कक्षा को सामान्य निर्देश भी दिए जा सकते हैं। एक प्रकार से यह मिनी रेडियो-स्टेशन है।

वैसे चाहें तो रेडियो स्टेशन के प्रसारण के सुनाने के लिए किसी भी कक्षा को भाषा-प्रयोगशाला में बदला जा सकता है बशर्ते प्रसारण ग्रहण कर सकने के लिए स्वचालित रिसीवर सेटों की व्यवस्था हो।

2.4.3.2. प्रोग्राम के अनुसार

'प्रोग्राम' से तात्पर्य उस पाठ्य सामग्री से है जो शिक्षक प्रसारित करता है। एक साथ एकाधिक प्रोग्राम प्रसारित किए जा सकते हैं। अलग-अलग प्रयोगशालाओं में प्रोग्रामों की संख्या निश्चित होती है। प्रायः चार तक प्रोग्राम हो सकते हैं। कोई भी पाठ्य सामग्री पर आधारित प्रोग्राम किसी एक भाषा के विभिन्न स्तरों का हो सकता है अथवा भिन्न-भिन्न भाषाओं का। एक साथ एक प्रोग्राम सुनने वालों को ग्रुप सिलेक्टर द्वारा ग्रुप कर दिया जाता है। इस प्रकार विभिन्न ग्रुप विभिन्न प्रोग्राम या एक ही प्रोग्राम सुन सकते हैं। शिक्षक प्रोग्रामों पर नियंत्रण रखता है। जिस प्रोग्राम के सुनने वालों को पाठ से अतिरिक्त जो भी सूचनाएँ शिक्षक देना चाहे वह कन्सोल से माइक द्वारा दे सकता है।

2.4.3.3. विद्यार्थी की क्रियाशीलता के अनुसार

2.4.3.3.1. क्रियाहीन (पैसिव) प्रयोगशाला (पी० प्रकार)

इस प्रयोगशाला से तात्पर्य है केवल हेड सेट के माध्यम से सुनना। यह श्रवणाभ्यास शिक्षक द्वारा कन्सोल से प्रसारित पाठ अथवा अपने किसी टेप-रिकार्डर से संभव होता है। इसमें विद्यार्थी के पास न कोई माइक होता है और न टेपरिकार्डर दूसरी ओर शिक्षक कन्सोल से सिवाय प्रसारण के कुछ नहीं कर सकता है जिसके फलस्वरूप शिक्षक, विद्यार्थी कोई बातचीत नहीं कर सकता। आजकल इस प्रयोगशाला का प्रचलन लगभग समाप्त हो गया है।

2.4.3.3.2. श्रव्य क्रियाशील (ऑडियो एक्टिव) प्रयोगशाला (ए० ए० प्रकार)

इस प्रकार की प्रयोगशाला में विद्यार्थी हेड सेट की सहायता से प्रसारित पाठ को तो सुन ही सकता है पर साथ ही माइक के माध्यम से दुहराये गए पाठ को स्वयं भी सुन सकता है और अध्यापक के पास तक भी भेजा जा सकता है। विद्यार्थी अपना उच्चारण सुनकर स्वयं यह पता लगा सकता है कि वह कहाँ तक शिक्षक द्वारा प्रसारित मानक उच्चारण के समीप है। शिक्षक भी कन्सोल से उपलब्ध सुविधा का प्रयोग करते हुए कभी भी विद्यार्थी के उच्चारण को सुन सकता है और उसको शुद्ध कर वहीं के वहीं दुहरवा कर सुन सकता है। उसको उसकी अशुद्धियाँ समझा सकता है, समस्या का समाधान कर सकता है

और यदि अधिकांश विद्यार्थी किसी विशेष अशुद्धि को कर रहे हैं तो ऑल कॉल (All Call) द्वारा पूरी की पूरी क्लास को समझा सकता है। केवल विद्यार्थी के पास अपना टेपरिकार्डर नहीं होता जिससे वह मास्टर टेप के पाठ को और अपने उच्चारण को टेप कर सके। इसको ही ब्राडकास्ट प्रयोगशाला भी कहा जाता है।

1.4.3.3.3. श्रव्य क्रियाशील-मिलान (ऑडियो एक्टिव कम्पेयर) प्रयोगशाला (ए० ए० सी० प्रकार)

इस प्रयोगशाला के माध्यम से विद्यार्थी मास्टर टेप को सुन सकता है, दुहराता है और रिकार्ड भी करता है। इसकी विशेष बात यह है कि विद्यार्थी के पास अपना टेपरिकार्डर होता है जिसमें वह शिक्षक द्वारा प्रसारित पाठ को टेप भी कर सकता है और साथ ही स्वयं दुहराया गया पाठ भी। आजकल इस प्रकार की प्रयोगशाला का ही विशेष प्रचलन है क्योंकि यह सबसे अधिक सुविधाजनक है। भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर तथा इसके विभिन्न केन्द्र—मैसूर, भुवनेश्वर, पटियाला; केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा तथा लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी आदि स्थानों पर इस प्रकार की ही प्रयोगशालाएँ हैं। इसको ही पुस्तकालय (लाइब्रेरी) प्रयोगशाला भी कहते हैं। इसका ही अधुनातन रूप डायल प्रयोगशाला है जिसमें डायल करके मन चाहा टेप 'टेप-लाइब्रेरी' से स्वचालित ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार की प्रयोगशालाओं में शिक्षक कन्सोल से ही 'रिमोट कंट्रोल' विधि से विद्यार्थी-बूथ के टेपरिकार्डर में रिकार्ड कर सकता है। विद्यार्थी स्वयं भी अपने टेपरिकार्डर पर रिकार्ड कर सकता है और पुनः शिक्षक की वाणी से अपनी वाणी का मिलान कर सीख सकता है। अपने किए हुए टेप को टेपांकित सामग्री से मिला सकता है क्योंकि विद्यार्थी के टेपरिकार्डर में फिट कैसेट टेप में दो ट्रैक होते हैं, प्रथम में शिक्षक द्वारा प्रसारित पाठ टेप होता चलता है और दूसरे में विद्यार्थी द्वारा स्वयं उच्चरित पाठ।
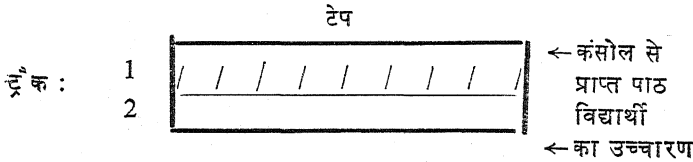
यह उल्लेखनीय है कि इस प्रयोगशाला में सर्वाधिक सुविधाएँ हैं। विद्यार्थी अपनी गति से आगे बढ़ सकता है और कमजोर विद्यार्थी बार-बार सुविधा-

नुसार टेप को सुन सकता है। जिस अंश में कठिनाई है उसको स्वयं भी दुहराया जा सकता है और शिक्षक से भी समाधान ले सकता है। इस प्रयोगशाला में अनेक प्रकार की सुविधाएँ हैं :

1. स्थानानुसार 8, 16, 32, 40, बूथ लगाये जा सकते हैं।
2. एक साथ चार पाठ प्रसारित किये जा सकते हैं जिनमें से तीन, तीन टेपरिकार्डरों के माध्यम से और चौथा शिक्षक द्वारा। ये चार प्रोग्राम भिन्न-भिन्न भाषाओं के हो सकते हैं अथवा किसी एक भाषा के विभिन्न स्तरों के। लगभग यही सुविधा वायरलेस की प्रयोगशाला में भी है।
3. तीन शिक्षक एक साथ कन्सोल पर समस्याओं का समाधान कर सकते हैं साथ ही किसी बूथ को मोनीटर कर सकते हैं। दो शिक्षक हेड सेट तथा तीसरा माइक्रोफोन का उपयोग कर सकता है।
4. विद्यार्थी व्यक्तिगत रूप से अपना पाठ पढ़ सकता है। वह चाहे तो किसी ग्रुप के साथ भी और किसी अन्य बूथ से वार्तालाप भी संभव है जिसमें शिक्षक भी हिस्सा ले सकता है।
5. व्यक्तिगत शिक्षण में विद्यार्थी अपने बूथ के टेपरिकार्डर में पूर्वांकित मास्टर टेप को सुनता है जिसको वह मिटा नहीं सकता।
6. ग्रुप शिक्षण में कन्सोल से प्राप्त पाठ उसके टेपरिकार्डर में टेप होता चलता है जिसको वह सुनता भी जाता है पर उसको मिटा नहीं सकता।
7. सामान्य निर्देश (All Call) द्वारा शिक्षक पूरी कक्षा को निर्देश दे सकता है, पाठ का अंश समझा सकता है।
8. शिक्षक चाहे तो सबसे, ग्रुप से अथवा किसी बूथ विशेष के साथ बात-चीत कर सकता है।
9. किसी भी एक विद्यार्थी अथवा किसी ग्रुप का नियंत्रण(मोनीटरिंग) कर सकता है।
10. दूरस्थ नियंत्रण (रिमोट कंट्रोल) भी संभव है। शिक्षक स्वयं ही किसी भी विद्यार्थी के बूथ के टेपरिकार्डर पर पाठ टेप कर सकता है उसका पूरा-पूरा संचालन कर सकता है।
11. शिक्षक को अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं टेपरिकार्डर/रों से पाठ प्रसारित करना, माइक से प्रसारण, हेड सेट का उपयोग (सुनने, वार्तालाप करने अथवा शंका समाधान करने के लिए)। इस प्रकार वह पाठ प्रसारित करने में ही सक्षम नहीं वरन् पूरा-पूरा नियंत्रण रख सकता है।
12. इस प्रयोगशाला के साथ दृश्य उपादानों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

2.4.4. प्राभ्यास प्रकार

विद्यार्थी के प्राभ्यास के लिए जिस पाठ का निर्माण होता है उसको कुछ इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है। भाषा-प्रयोगशाला के लिए सामग्री निर्माण पद्धति पर काफी विस्तार से लिखा जा सकता है। इधर पाठ-निर्माण की पद्धति पर राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर तथा लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी में भाषणमाला तथा कार्यगोष्ठियाँ आयोजित की जा चुकी हैं। भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर से एक पुस्तक[1] प्रकाशित हुई है और लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी से शोध पत्रिका विशेषांक[2]। फिर भी संक्षेप में कहा जा सकता है कि पाठ निर्माण करने के निमित्त निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए :

1. यह स्पष्ट उद्देश्य सामने रहना चाहिए कि अमुक पाठ किस कोटि, पृष्ठभूमि, स्तर के विद्यार्थी के लिए है।
2. निश्चित उद्देश्य के अनुसार एक पाठ एक पाठ्य बिन्दु पर केन्द्रित होना चाहिए। यह उद्देश्य प्रारंभ में कम-से-कम शब्दों में स्पष्ट कर देना चाहिए।
3. पाठ के प्रारंभ में जो भूमिका दी जाए वह आरंभिक अवस्था में माध्यम भाषा में दी जा सकती है पर बाद में उसको लक्ष्य भाषा में बदल देना चाहिए। भूमिका अत्यधिक संक्षिप्त तथा अर्थपूर्ण होनी चाहिए जिससे अरुचि उत्पन्न न हो।
4. पाठ के मध्य में दिए गए आदेश स्पष्ट, छोटे तथा सरल भाषा में हों।
5. पाठ स्तरित हों और पाठ-माला इस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती जाए कि प्रत्येक नये पाठ में कोई-न-कोई नया विचार/नया नियम उद्घाटित होता जाए।
6. पाठ उच्चारण, वाक्य साँचे, वार्तालाप आदि पर हो सकते हैं जिनमें आवश्यकतानुसार क्रिया-विधि बदली जा सकती है।
7. प्रारंभ में नमूने के लिए सही उच्चारण/वाक्य साँचा दिया ही जाएगा पर अंत में भी हो अथवा नहीं इसमें भिन्न-भिन्न मत हैं फिर भी अधिकांशतः विद्वानों ने यही मत व्यक्त किया है कि अंत में सही उच्चारण दिया जाना चाहिए जिससे इकाई समाप्त करते समय विद्यार्थी के कानों में सही रूप ही पड़े और वह अपनी त्रुटि जान सके।

1. Preparation of Language Teaching Tapes, Michael Dobbyn, 1971.
2. Journal of L.B.S. National Academy of Administration, Vol. XIX, No. 1, Spring, 1974.

8. दिए गए उच्चारण/वाक्य साँचे को दुहराने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए।

प्राभ्यास (ड्रिलिंग) के लिए पाठ की प्रत्येक इकाई के अंतर्गत भिन्न-भिन्न प्रावस्था (फ़ेज़) हो सकती हैं :

मात्र दो :
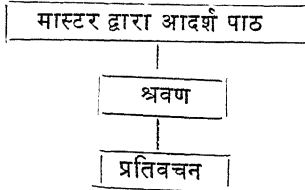
टिप्पणी—इस प्रकार का प्राभ्यास प्राय: व्यतिरेकी ध्वनियाँ सिखाने में उपयोगी सिद्ध होता है।

तीन फ़ेज़ :

ट्रैक 1—	शिक्षक-कन्सोल से प्राप्त	रिक्त टेप	सही रूप
ट्रैक 2—	—	विद्यार्थी प्रतिवचन	—

चार फ़ेज़ :

इसका ही आज विशेष प्रचलन है :

शिक्षक-कन्सोल से प्राप्त		शिक्षक-कन्सोल से पुन: शुद्ध उच्चारण	
	विद्यार्थी प्रतिवचन		दुहराना

चार फ़ेज़ वाले प्राभ्यास के टेप का स्वरूप इस प्रकार होगा :

प्रथम ट्रैक—	1		3	
द्वितीय ट्रैक—		2		4

1 तथा 3 = शिक्षक कन्सोल से प्राप्त पाठ्य सामग्री।

2 तथा 4 = रिक्त टेप विद्यार्थी द्वारा दुहराने के लिए

जिन प्रयोगशालाओं में मिलान करने की सुविधा प्राप्त है वहाँ यह प्रणाली विशेष उपयोगी सिद्ध होती है पर यह ध्यान रहना चाहिए कि टेप के प्रथम ट्रैक को मिटारने की सुविधा न दी जाए।

9. पाठ के अंत में पाठ्य सामग्री पर आधारित अभ्यास दिए जाएँ जिससे समुचित मूल्यांकन हो सके। श्रवण अभ्यास तथा बोधगम्यता पर आधारित अनेक प्रकार के टेस्ट लिए जा सकते हैं। विकसित देशों में तो समुचित मूल्यांकन के लिए स्वचालित मशीनें भी तैयार हो गई हैं।

10. उच्चारण संबंधी पाठों में श्रवणाभ्यास तथा उच्चारणाभ्यास कराया जाता है। वाक्य साँचों पर आधारित प्राभ्यास पाठ अनेक प्रकार के हो सकते हैं; जैसे, विरचन, प्रतिस्थान, परिवर्द्धन, रूपान्तरण, प्रतिवचन, प्रश्नोत्तर।

इसके अतिरिक्त किसी भी सकेत को देकर सादृश्य के आधार पर वाक्य बनवाया जा सकता है, दो पृथक्-पृथक् पदबंधों/उपवाक्यों/वाक्यों को एक पदबंध/उपवाक्य/वाक्य में बदलवाया जा सकता है। रूपान्तरण प्राभ्यास देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे ही अभ्यास दिए जाएँ जिनमें वाक्य का प्रारंभिक स्वरूप वैसा ही बना रहे, केवल अंत में परिवर्तन हो अर्थात् कर्ता का लिंग/वचन बदलकर जितनी आसानी से क्रिया बदलवायी जा सकती है उतनी सुविधा से बदली हुई क्रिया के अनुसार कर्ता नहीं।

इन सबमें प्रतिस्थापन तथा रूपान्तरण प्राभ्यास अधिक कारगर सिद्ध हुए हैं। प्रयोगशाला के लिए बनाये गए पाठों में से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

प्रतिस्थापन प्राभ्यास :

अ-2 'केस' के स्थान पर दिया हुआ शब्द लगाकर वाक्य बोलिए :

वि-

अ-2 उदाहरण सुनिए।

अ-1 मैं अदालत में केस सुन रहा था।

अ-2 'बयान'।

अ-1 मैं अदालत में **बयान** सुन रहा था।

अ-2 अब बोलिए।

अ-1 मैं अदालत में केस सुन रहा था।

अ-2 'गवाही'।

क- ....

अ-1 मैं अदालत में **गवाही** सुन रहा था।

रूपान्तरण प्राभ्यास :

अ-2 दिए गए उदाहरण की तरह **'मैं'** की जगह **'हम'** और **'हम'** की जगह **'मैं'** रखकर वाक्य बोलिए :

वि-

अ-2 उदाहरण सुनिए।

अ-1 मैं कल सुबह हाकी खेल रहा था।

अ-2 'हम'।

अ-1 हम कल सुबह हाकी खेल रहे थे।

अ-2 अब बोलिए।

अ-1 मैं होटल में खाना खा रहा था।
अ-2 'हम'।
क- ....
अ-1 हम होटल में खाना खा रहे थे।
नोट—यहाँ अ-1, व अ-2 अध्यापक के लिए प्रयुक्त हुए हैं और 'क' से तात्पर्य कक्षा से है।

2.4.5. टेप पाठों की रिकॉर्डिंग

टेप पाठों की रिकार्डिंग जहाँ तक संभव हो साउंड प्रूफ़ रिकार्डिंग स्टूडियो में होनी चाहिए। प्रशिक्षित टेकनीशियन द्वारा टेपरिकार्डर पर निश्चित गति तथा वोल्यूम पर टेपांकित होना चाहिए। टेप करने वालों (महिला/पुरुष) की आवाज़ सधी, मधुर तथा स्पष्ट होनी चाहिए। बोलने का ढंग न अधिक तेज ही हो और न अधिक धीमा। मध्यम गति में स्वाभाविक स्वर-लहर तथा अनुतान के साथ टेप पाठ आदर्श माना जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है विद्यार्थी के दोहराने के लिए टेप में उपयुक्त स्थान रिक्त छोड़ा जाए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भाषा-प्रयोगशाला के अनेक उद्देश्यों में वातावरण की सृष्टि प्रधान है, ऐसी स्थिति में यदि टेपांकन मातृभाषा-भाषी की वाणी में नहीं किया गया है तो वह निष्फल हो जाता है। टेपों को उपयोग में लाने से पहले अध्यापक को स्वयं ही नहीं सुन लेना चाहिए वरन् अन्य किसी दूसरे व्यक्ति को भी सुनवाना चाहिए। वैसे तो सभी टेप पाठ स्पष्ट आवाज़ में स्वाभाविक शैली में प्रवाह युक्त होने चाहिए पर उच्चारण पाठों की रिकार्डिंग में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। जिन दो ध्वनियों का अंतर व्यतिरेकी शब्द युग्मों द्वारा स्पष्ट किया जाए वह नितांत स्पष्ट होना चाहिए। अगर आवश्यक समझा जाए तो प्रशिक्षित ध्वनिविज्ञानी की सहायता ली जा सकती है। पाठों की अवधि सामान्यत: 30 मिनट से अधिक नहीं होनी चाहिए। विशेष ध्वनि-भेद, तथा विशिष्ट ध्वनि सिखाने के लिए 3 से 5 मिनट के सुधारात्मक पाठ तैयार कर लेने चाहिए। अगर दो भिन्न आवाज़ें रखी जा सकें तो नीरसता से बचा जा सकता है यथासंभव दूसरी आवाज़ महिला की रखी जाए। रिकार्डिंग में कागजों की खड़खड़ अथवा अन्य प्रकार की ध्वनि नहीं होनी चाहिए।

2.4.6. मास्टर टेप लाइब्रेरी

प्रत्येक भाषानुसार टेपों का रिकार्ड होना चाहिए। रजिस्टर की क्रम संख्या टेप पर भी अंकित होनी चाहिए। और वही किसी चार्ट पर भी होने से टेप निकालने में सुविधा रहेगी। रजिस्टर पर प्रत्येक टेप से संबंधित निम्नलिखित सूचनाएँ होनी चाहिए :

क्रमांक	टेप पाठ प्रकार	पाठ संख्या	सामग्री संक्षेप में	समय	किसने तैयार किया	वाणी
1	साँचा पाठ	1	मैं डाक्टर	17 मिनट	श्री 'क'	श्रीमती 'ख' व डा० 'ग'

प्रत्येक भाषा के विविध प्रकार के टेप व्यवस्थित रहने चाहिए जिससे कम-से-कम समय में टेप को निकाला जा सके। जहाँ एक ही टेप में कई पाठ हों तो उनका स्पष्ट निर्देश समय/संख्या के अनुसार टेप पर होना चाहिए और संभव हो तो उपयुक्त विधि से अंकन भी। अगर टेपों की पर्याप्त संख्या है तो मास्टर टेपों की प्रतिलिपि कर लेनी चाहिए। अब तो 'कैसट टेप डुप्लीकेटिंग मशीन' से टेपों की मनचाही प्रतियाँ कम समय में की जा सकती हैं। और उनको जो चाहे उसे दिया/बेचा जा सकता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि टेपों को लकड़ी की अलमारी में उपयुक्त तापमान में रखना चाहिए। यह ध्यान रहे कि कोई ऐसा पदार्थ उसके समीप न हो जो उसे नष्ट कर दे अन्यथा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।

प्रत्येक टेप की 'टेप-स्क्रिप्ट' के प्रारंभ में कुछ आवश्यक सूचनाएँ इस प्रकार रहनी चाहिए :

1. संस्थान तथा विभाग जहाँ टेप तैयार हुआ है : लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (भाषा-विभाग)।
2. पाठ प्रकार तथा संख्या : हिंदी साँचा—सं० 8
3. मास्टर टेप संख्या : 18
4. टेप-पहचान : संक्षेप में विवरण दिया जाए।
5. पाठ का उद्देश्य : 'रहा था,' तथा 'रहे थे' का अभ्यास।
6. पाठ प्रारंभ :
7. मूल पाठ :
8. पाठ समाप्त : अंत में अवश्य होना चाहिए।

मास्टर टेप जब जिस शिक्षक को दिया जाए उसका उल्लेख पृथक् रजिस्टर में करते रहना चाहिए। पूर्व नियोजित योजनानुसार शिक्षक को कौन-सा टेप चाहिए इसकी सूचना पहले से प्रयोगशाला इंचार्ज को दे देनी चाहिए।

2.4.7. उपस्थिति तथा प्रगति-विवरण चार्ट

उपस्थिति तथा प्रगति-विवरण चार्ट को निम्नलिखित रूप में पहले से तैयार कर प्रयोगशाला में रखना चाहिए :

		सुनना	सुनना तथा बोलना	सुनना, बोलना तथा रिकार्ड करना	प्लेबेक कर सुनना तथा मिलाना	सुनना, बोलना तथा पुन: रिकार्ड करना
हैड/ईयरफ़ोन के माध्यम से	शिक्षक द्वारा प्राप्त प्रोग्राम	✓	✓	✓	अपने टेप-रिकार्ड द्वारा	✓
	विद्यार्थी द्वारा स्वयं मानीटर करना	×	विद्यार्थी के अपने माइक से	अपने माइक से	अपने माइक से	अपने माइक से
	शिक्षक-विद्यार्थी-वार्ता	×	✓	✓	✓	✓
माइक के माध्यम से	विद्यार्थी द्वारा स्वयं मानीटर करना	×	संभव है	✓	×	✓
	शिक्षक-विद्यार्थी-वार्ता	×	✓	✓	✓	✓
	विद्यार्थी द्वारा रिकार्डिंग	×	×	✓	×	✓

विद्यार्थी का नाम : ....
कक्षा : ....
ग्रुप सं० : ....

दिनांक	उपस्थिति	पाठ संख्या	प्रगति-विवरण	शिक्षक के हस्ताक्षर

प्रगति-विवरण में कई विधियाँ अपनायी जा सकती हैं। सर्वोत्तम, उत्तम, मध्यम, निम्नकोटि आदि कोटियों के लिए शिक्षक सुविधानुसार अ, ब, स, द अथवा 1, 2, 3, 4 आदि को अपना सकता है। विद्यार्थियों की संख्या तथा शिक्षक की अपनी रुचि के अनुसार इन कोटियों को आसानी से घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

2.4.8. भाषा प्रयोगशाला द्वारा विभिन्न भाषा कौशलों का अर्जन

भाषा-प्रयोगशाला

विभिन्न भाषा-कौशलों का अर्जन

(कृपया चार्ट पृ० सं० 194 पर देखें।)

इसी प्रकार टेपरिकार्डर जो विद्यार्थी के बूथ में फ़िट रहता है उससे भी सभी प्रकार के भाषा-कौशलों को प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस टेपरिकार्डर में दो ट्रैक का टेप (फ़ीता) होता है, जिसके पहले ट्रैक पर शिक्षक द्वारा कंट्रोल से भेजा गया प्रोग्राम अंकित होता जाता है और दूसरे पर उसके (विद्यार्थी के) द्वारा उच्चरित रूप । इस टेप को ही फिर से चलाकर वह विभिन्न भाषा-कौशल अर्जित कर सकता हैं। इसको ही हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :

टेपरिकार्डर

प्रथम ट्रैक (अध्यापक)	द्वितीय ट्रैक (विद्यार्थी)
↓	↓
प्लेबैक (फिर से लौटाकर टेप सुनना)	(प्लेबैक फिर से लौटाकर टेप सुनना)
↓	↓
रेकार्ड भी कर सकता है	सुनने और मिलान करने का अभ्यास संभव है।
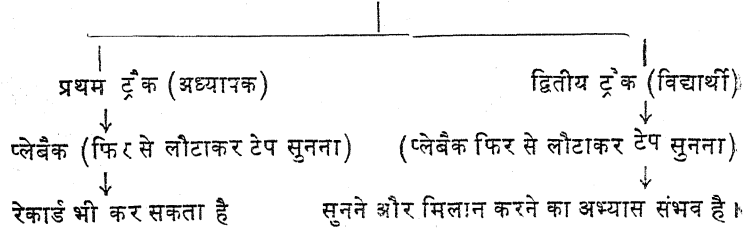
2.4.9. भारत में भाषा-प्रयोगशालाओं का भविष्य

भाषा-प्रयोगशाला की उपयोगिता निर्विवाद एवं स्वयंसिद्ध है अतएव हम अपने विद्यालयों में इसको स्थान दें अथवा नहीं यह कोई समस्या नहीं। द्वितीय भाषा-शिक्षण तथा विदेशी भाषा-शिक्षण में तो इसकी महती आवश्यकता है ही पर मातृभाषा शिक्षण तथा छंदों के सम्यक् लयतालयुक्त उच्चारण सिखाने में

भी इसको उपयोग किया जा सकता है। जापान तथा अमेरिका जैसे सम्पन्न देशों में आज से 15-20 वर्ष पूर्व इसका नाम-मात्र का प्रचलन था जबकि आज सभी विकसित देशों के स्कूलों में इसका पर्याप्त प्रचलन हो गया है। आज वहाँ केवल वही विद्यालय इस सुविधा से वंचित है जहाँ पैसे का अभाव है।

अभी भारत में इसका उपयोग काफ़ी सीमित क्षेत्र में है जैसे कुछ राष्ट्रीय प्राविधिक संस्थान, विश्वविद्यालयों के भाषा/भाषाविज्ञान विभाग, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के संस्थान, कुछ विशिष्ट कालेज—दकन कालेज, पूना, विल्सन कालेज, बंबई आदि। लेकिन विश्वास है कि शीघ्र ही उच्चस्तरीय विद्यालयों/महाविद्यालयों में इसका प्रयोग बढ़ता जाएगा क्योंकि भारत इलैक्ट्रोनिकल्स लि० बंगलौर ने इसका निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया है।

ये 'बेल' भाषा-प्रयोगशालाएँ निम्नलिखित प्रकार की हैं :

बेसिक प्रयोगशाला

जिसका प्रयोग सामान्य कक्षा में ब्राडकास्ट के लिए किया जाता है।

टाइप प्रथम (इंस्टालेशन)

भाषा-प्रयोगशाला — 10 बूथों युक्त (FAS-557/I)
भाषा-प्रयोगशाला — 20 बूथों युक्त (FAS-558/I)
भाषा-प्रयोगशाला — 30 बूथों युक्त (FAS-559/I)

टाइप द्वितीय (इंस्टालेशन)

भाषा-प्रयोगशाला — 10 बूथों युक्त (FAS 557/II)
भाषा-प्रयोगशाला — 20 बूथों युक्त (FAS-558/II)
भाषा-प्रयोगशाला — 30 बूथों युक्त (FAS-559/II)

इन सभी में केन्द्रीय नियंत्रण से प्रसारण संभव है तथा साथ में प्रत्येक विद्यार्थी बूथ पर टेपरिकार्डर की सुविधा उपलब्ध है। दोनों ही प्रयोगशालाओं में श्रवण/वार्तालाप, सामान्य निर्देश (ऑल कॉल), विद्यार्थियों द्वारा उच्चरित वाक्यों पर नियंत्रण, गोपनीयता, वर्ग-चर्चा, मास्टर प्रोग्राम का प्रसारण, विद्यार्थी बूथ में टेपरिकार्डर पर रिकार्डिंग तथा पुनः रिप्ले द्वारा सुनना सम्मिलत है।

इस दृष्टि से बहुभाषी भारत में भाषा-प्रयोगशाला का भविष्य काफ़ी उज्ज्वल है। आशा है जल्दी ही ब्राडकास्ट की विधि से बेतार-के-तार की प्रयोगशालाओं का विकास भी यहाँ संभव हो सकेगा। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कक्षा के पठन-पाठन के साथ भाषा-प्रयोगशालाओं का उचित तालमेल रखा जाए और टेप पाठों का निर्माण तेज गति से हो। द्वितीय भाषा तथा विदेशी भाषा के शिक्षण-प्रशिक्षण की जितनी संभावना भारत में है अन्यत्र नहीं। वह दिन दूर नहीं जब डायल से लेकर स्वचालित भाषा-प्रयोगशालाएँ भी विभिन्न राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थानों में प्रस्थापित हो सकेंगी।

भाषा-मूल्यांकन | 14

0.0. मूल्यांकन, परीक्षण, परीक्षा

भाषा-शिक्षण में तीन शब्दों का प्रयोग काफ़ी कुछ पर्याय के रूप में हो रहा है : **मूल्यांकन** (Evaluation), **परीक्षण** (Test या Testing), **परीक्षा** (Examination)। कोई व्यक्ति भाषा सीख रहा है तो उसने भाषा कितनी सीख ली है, इसका पता लगाने के लिए समय-समय पर भाषा-अधिगम-**मूल्यांकन** या भाषा-संप्राप्ति-**मूल्यांकन** करते हैं, 'भाषा सीखनेवाले ने भाषा का जो कुछ हृदयंगम किया है, वह कितना ठीक है, और कितना ग़लत ?' इसका पता लगाने के लिए हर हफ़्ते, हर पखवाड़े या हर महीने **परीक्षण** (Test) करते हैं; तथा 'भाषा सीखनेवाले ने क्या भाषा इतनी सीख ली है कि उसे आगे का पाठ्यक्रम पढ़ाया जा सके या उसे उत्तीर्ण घोषित करके आगे की कक्षा में प्रवेश के उपयुक्त ठहराया जा सके' इसके लिए उसकी **परीक्षा** लेते हैं। मोटे रूप से, परीक्षा अधिक औपचारिक और व्यापक होती है, वर्ष में एक, दो या तीन बार होती है, तथा वर्षान्त परीक्षा का संबंध अनुत्तीर्ण होकर उसी कक्षा में रहने या उत्तीर्ण होकर ऊपर की कक्षा में जाने से है। परीक्षण न तो इतना औपचारिक होता है, और न इसका संबंध आगे की कक्षा में प्रवेश पाने या न पाने से होता है, साथ ही यह परीक्षा जितना व्यापक भी नहीं होता। परीक्षा का ध्यान सर्वांगीण प्रगति पर होता है, जबकि परीक्षण का सीमित का। उदाहरण के लिए हर सप्ताह होने वाला परीक्षण हर सप्ताह की भाषा-प्राप्ति को जाँचता है। उत्तीर्णता-अनुत्तीर्णता इसमें भी होती है, किंतु उसका लक्ष्य परीक्षा की उत्तीर्णता-अनुत्तीर्णता से भिन्न है। मूल्यांकन में उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण की बात नहीं उठती, केवल यह देखा जाता है कि पाठ्यक्रम का जो अंश पढ़ाया जा चुका है, उसे भाषा सीखने वाले ने कितना ग्रहण किया है, तथा जो ग्रहण किया है, वह कितना ठीक और कितना ग़लत है।

इन सूक्ष्म अंतरों की बात छोड़ दें तो मूल्यांकन करने, परीक्षण करने तथा परीक्षा लेने की पद्धति में कोई विशेष प्रकार का या मूलभूत अंतर नहीं है। इसीलिए यहाँ मूल्यांकन शब्द में शेष दो को भी समाहित करके, इसी का प्रयोग

किया जा रहा है। यों भी मूल्यांकन उत्तीर्णता-अनुत्तीर्णता से संबद्ध नहीं है, अतः उसका प्रयोग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अधिक उपयुक्त है।

1.0. **मूल्यांकन का उद्देश्य**—'मूल्यांकन' के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं : (1) **उपलब्धि का पता लगाना**—अर्थात् भाषा सीखनेवाले को जो कुछ पढ़ाया गया है, उसने उसे कितना हृदयंगम किया है ? इस उद्देश्य से किए गए मूल्यांकन को **उपलब्धि मूल्यांकन** कहा जा सकता है। (2) हृदयंगम की गई बातों के आधार पर, भाषा के चारों, या अपेक्षित कौशलों में उसकी कितनी गति या दक्षता हो सकी है, इसके लिए किए गए मूल्यांकन को **दक्षता-मूल्यांकन** कहा जा सकता है। इसका संबंध पाठ्यक्रम से नहीं होता, क्योंकि दक्षता के विचार में महत्त्वपूर्ण यही है कि वह कितना दक्ष हो सका है, यह नहीं कि उसका पाठ्यक्रम क्या था ? (3) उसे पढ़ाई गई सभी बातें, फिर से पढ़ाई जाएँ (अनुत्तीर्ण), या केवल कुछ बातें फिर से पढ़ाई जाएँ, या फिर कोई भी पठित बिंदु फिर से पढ़ाने की आवश्यकता नहीं (उत्तीर्ण)। ऐसे मूल्यांकन को **उत्तीर्णता-मूल्यांकन** कहा जा सकता है। इसके आधार पर या तो विद्यार्थी को फिर उसी कक्षा में रखते हैं या ऊपर की कक्षा में जाने के योग्य घोषित करते हैं। (4) जिसके भाषा-ज्ञान का मूल्यांकन किया गया है, वह क्या कुछ अभी नहीं सीख सका है, उस शेष को सिखाने के लिए क्या कुछ किया जाना चाहिए, उसके भाषा-अधिगम को देखते हुए पाठ-सामग्री, अभ्यास-सामग्री या पढ़ाने की विधि में किसी परिवर्तन की आवश्यकता तो नहीं है, और है तो किस प्रकार के और कितने ? इस प्रकार के मूल्यांकन को **निदानात्मक** (Diagnostic) या **उपचारात्मक** (Remedial) कहते हैं। (5) **भाषा-रुझान का पता लगाना**—किसी व्यक्ति में भाषा सीखने की सहज रुझान कितनी है, इसका पता लगाने के लिए भी मूल्यांकन करते हैं। ऐसे मूल्यांकन को **रुझान** (Aptitude) **मूल्यांकन** अथवा **अभिक्षमता मूल्यांकन** नाम दिया गया है। इसका आधार यह होता है कि अन्य बातों के समान होने पर रुझान वाला व्यक्ति अन्यों की तुलना में अधिक दक्षता प्राप्त कर लेगा।

2.0. मूल्यांकन के प्रकार

मूल्यांकन के विभिन्न प्रकार कई आधारों पर हो सकते हैं :

2.1. **उद्देश्य के आधार पर**—उद्देश्य के आधार पर **उपलब्धि-मूल्यांकन, दक्षता-मूल्यांकन, उत्तीर्णता-मूल्यांकन, निदानार्थ** अथवा **उपचारार्थ-मूल्यांकन, प्रवेशार्थ मूल्यांकन, सेवार्थ मूल्यांकन** तथा **रुझान** अथवा **अभिक्षमता-मूल्यांकन** आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से निम्नांकित चार को भूत और भविष्य से इस प्रकार जोड़ा गया है :

मूल्यांकन	**भूत ←———**	**मूल्यांकन-बिंदु**	**———→ भविष्य**
उपलब्धि मूल्यांकन	←————	क	
दक्षता मूल्यांकन	←............	क	————→
अभिक्षमता मूल्यांकन		क	————→
निदानार्थ मूल्यांकन	←————	क	————→

अर्थात्, उपलब्धि-मूल्यांकन में इस बात का मूल्यांकन करते हैं कि मूल्यांकन के समय तक पढ़ाई गई पाठ सामग्री क्या कुछ विद्यार्थी ने सीख ली है, अर्थात् इस मूल्यांकन का ध्यान भूतकाल पर होता है, भूतकाल में पढ़ाए गए पाठसामग्री और पाठ्यक्रम पर। दक्षता-मूल्यांकन का संबंध भूतकाल से विशेष न होकर थोड़ा-थोड़ा होता है। उसका ध्यान इस बात पर विशेष होता है कि उसने आगे काम करने के लिए कितनी दक्षता प्राप्त कर ली है। वैसे ही, जैसे कार-चालक के मूल्यांकन में हमारा ध्यान इस बात पर नहीं होता कि उसे क्या पढ़ाया-सिखाया गया है, अपितु इस बात पर होता है, कि वह कार-चालन कितना जानता है। अभिक्षमता-मूल्यांकन का संबंध भूत से नहीं होता। उसमें आगे भाषा सीखने की रुझान का पता लगाने के लिए मूल्यांकन करते हैं, अतः यह भविष्य-केन्द्रित है। निदानार्थ मूल्यांकन भूत-केन्द्रित भी है, और भविष्य-केन्द्रित भी, क्योंकि एक तरफ यह भूतकाल में पढ़ाई गई पाठ-सामग्री, दिए गए अभ्यास तथा प्रयुक्त की गई पाठन-पद्धति की समीक्षा करता है, दूसरी ओर भविष्य में इनमें क्या परिवर्तन-परिवर्धन करें, इसका संकेत देता है।

2.2. **स्वरूप के आधार पर**—स्वरूप के आधार पर अनेकानेक प्रकार के भाषा-संप्राप्ति-मूल्यांकन हो सकते हैं। जैसे :

2.2.1. **अनुवाद**—भाषा-संप्राप्ति के मूल्यांकन के लिए बहुत से देशों में अनुवाद एक प्रमुख आधार माना जाता रहा है तथा मूल्यांकन के लिए मातृभाषा से लक्ष्य में तथा लक्ष्य-भाषा से मातृभाषा में अनुवाद कराया जाता रहा है। सामान्यतः इसके लिए केवल अनूद्य सामग्री देते हैं, किंतु सोवियत संघ आदि कुछ देशों में, साथ में कोश रखने की भी छूट रहती है। प्रश्न यह है कि अनुवाद द्वारा किस बात का मूल्यांकन संभव है, और किस बात का नहीं। यदि ध्यान दिया जाए तो यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा कि अनुवाद से निम्नांकित का ही मूल्यांकन हो सकता है : (क) व्यक्ति की भा-1 से भा-2 में तथा भा-1 से भा-2 में अनुवाद करने में कितनी गति है। (ख) उसकी भा-2 में पढ़ने तथा लिखने में कितनी दक्षता प्राप्त है। मूल्यांकन के इस प्रकार की कमियाँ हैं : (क) इससे सुनने तथा बोलने के कौशल की बिल्कुल ही परीक्षा नहीं हो पाती। (ख) कुछ लोगों के अनुसार अनुवाद भाषा के चार कौशलों से अलग एक कौशल है, अतः इसमें उस कौशल का ही मूल्यांकन हो पाता है; भाषा-संप्राप्ति का नहीं। वस्तुतः

इससे संदेह नहीं कि भाषा के समग्रज्ञान के परीक्षण का साधन अनुवाद नहीं हो सकता, किंतु यदि किसी व्यक्ति को आगे अनुवादक या दुभाषिया बनना है, तो उसके लिए अनुवाद कराना मूल्यांकन की अच्छी कसौटी है।

2.2.2. **व्याकरणिक विश्लेषण**—भाषा-संप्राप्ति के मूल्यांकन के लिए व्याकरणिक विश्लेषण का प्रयोग भी अनेक देशों में किया जाता है। इसमें वाक्य-विश्लेषण, वाक्य संश्लेषण पद-परिचय (Parsing), शब्द-रचना, संधि-विच्छेद, समास-विग्रह, व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों की सोदाहरण परिभाषा और भेद-प्रभेद तथा व्याकरण के नियमों आदि से संबद्ध प्रश्न पूछे जाते हैं। आधुनिक भाषा-शिक्षण-विज्ञान में मूल्यांकन के इस ढंग की काफ़ी निंदा की गई है, किंतु इसमें संधि-विच्छेद, समास-विग्रह तथा व्याकरणिक नियमों की जानकारी का सबंध भाषा-प्रयोग से हो ही नहीं, ऐसी बात नहीं। अतः, इनका एक सीमा तक प्रयोग अच्छा है, मुख्यतः यदि उस भाषा को पढ़ने के बाद व्यक्ति उस भाषा का शिक्षक बनना चाहता हो। यों इस प्रसंग में दो बातें अवश्य ध्यान देने की हैं : (1) किसी भाषा का विश्लेषण जानना, उसके नियमों-उपनियमों को जानना एक बात है, तथा उस भाषा का प्रयोग जानना दूसरी बात है। दोनों का संबंध तो है किंतु दोनों एक नहीं हैं। (2) ऐसे बहुत से लोग, जो भाषा-विशेष का (चारों कौशलों में) अच्छी तरह प्रयोग कर लेते हैं, किंतु वे उस भाषा के नियम-उपनियम या विश्लेषण से परिचित नहीं होते। ऐसे ही जो भाषा का विश्लेषण कर लेते हैं और उसके नियमों से परिचित होते हैं, कोई आवश्यक नहीं कि ठीक से उस भाषा को बोल-लिख भी सकें।

2.2.3. **शब्दार्थ और शब्द-प्रयोग**—इनके आधार पर भी भाषा-संप्राप्ति का मूल्यांकन किया जाता है। यों यह भी मूल्यांकन का कोई बहुत अच्छा आधार नहीं है, किंतु एक सीमा तक इसकी उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता।

2.2.4. **रूपांतरण**—संज्ञा से विशेषण, विशेषण से संज्ञा, संज्ञा या विशेषण से क्रियाविशेषण, मूल वाक्य से निषेधवाचक, प्रश्नवाचक, मिश्रित तथा संयुक्त वाक्य आदि बनाना तथा वाच्य, वचन, लिंग, पक्ष, काल आदि में परिवर्तन इसमें आता है। एक सीमा तक यह भी उपयोगी होता है।

2.2.5. **रिक्ति-पूर्ति**—अधूरे वाक्य देकर, रिक्तियों की पूर्ति कराना इसमें आता है। यह भी उपयोगी है।

2.2.6. **अपठितांश**—अपठित गद्य या पद्य-खंड देकर, उसका शीर्षक, सार, रेखांकित अंशों का अर्थ आदि पूछने की पद्धति भी प्रचलित है। यह भी समझने तथा लिखने की दक्षता के मूल्यांकन का अच्छा साधन है।

2.2.7. **श्रुतलेख**—इसके आधार पर सुनने (श्रवण) तथा लिखने (लेखन) के कौशल का मूल्यांकन किया जाता है। लिखने में वर्ण-लेखन और वर्तनी दोनों ही के मूल्यांकन आते हैं।

2.2.8 **मौखिक परीक्षा**—इसमें बातचीत करना, भाषा-प्रयोग के नियम तथा शब्दार्थ आदि पूछना, पढ़वाना (वाचन) तथा उच्चारण, रूपरचना, वाक्य-रचना, सहप्रयोग आदि की दृष्टि से अशुद्ध वाक्य बोलकर शुद्ध रूप पूछना आदि बातें आती हैं। इसमें सुनने तथा बोलने का मूल्यांकन बहुत अच्छा हो जाता है।

2.2.9. **योजन**—कोई पद, पदबंध या वाक्य देकर उसमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण का विस्तार करने (या उनके साथ कुछ जोड़ने) को कहकर भी मूल्यांकन किया जा सकता है। जैसे 'लड़का गया' से 'राम का लड़का घर गया।'

2.2.10. **वियोजन**—उपर्युक्त के ठीक उलटा। जैसे 'राम का लड़का घर गया' से 'लड़का गया।

2 2.11. **अन्य**—उपर्युक्त के अतिरिक्त कोई वस्तु, चित्र, क्रिया और स्थिति दिखा या बताकर उसके विषय में कुछ कहने को कहकर भी मूल्यांकन किया जा सकता है।

2.3.0. मूल्यांकन को दो अन्य दृष्टियों से भी वर्गीकृत किया जाता है :

2.3.1. **एकीय-मूल्यांकन** (डिसक्रीट) बनाम **समग्र-मूल्यांकन** (इंटिग्रेटिड) —बोलना, सुनना, लिखना, पढ़ना, वर्णन करना, रूपांतरण करना, शब्दप्रयोग, शब्द-रचना, पदबंध-रचना, वाक्य-रचना करना, संक्षेप करना, विस्तार करना, समझाना; विश्लेषण करना, अनुवाद करना आदि में, किसी एक का मूल्यांकन एकीय में आता है, तथा सभी का मूल्यांकन समग्र में। यों दोनों के बीच दो, तीन, चार आदि का भी आवश्यकतानुसार मूल्यांकन किया जाता है।

2.3.2. **निर्धारण** (आइडेंटिफ़िकेशन)—**मूल्यांकन** बनाम **स्मरण** (रिकले-क्शन) **मूल्यांकन**—पहले में दो या अधिक वाक्य आदि देकर यह पूछते हैं कि कौन-सा सही है कौन-सा गलत (सत्यासत्य परीक्षण); या फिर दो या अधिक देकर चुनने (चयन-परीक्षण) को कहते हैं। दूसरे में रिक्त स्थान की पूर्ति आदि कराते हैं।

3.0. अंत में इतना और जोड़ देना आवश्यक होगा कि पहले मूल्यांकन का उद्देश्य उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण करना होता था, अब इसका मुख्य उद्देश्य है, जो कुछ नहीं सीखा जा सका है, या जो नहीं आता है, उसे सिखाना या पढ़ाना। इसके लिए मूल्यांकन के आधार पर भाषा सीखने वाले की क्षमता आदि को दृष्टि में रखते हुए आगे का कार्यक्रम बनाया जाता है, तथा पाठ-सामग्री, अध्यापन-पद्धति, अभ्यास-सामग्री में सुधार किया जाता है ताकि समवेततः भाषा-शिक्षण को अधिक प्रभावी और सफल बनाया जा सके। इसके साथ ही यदि किसी नौकरी में लेना हो तो भाषा-विशेष में गति और दक्षता का पता भी इससे लगाते हैं।

सहायक ग्रंथ

श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ—भाषा-शिक्षण, प्रथम संस्करण, दिल्ली

Allen तथा Corder-Edinburgh Course in Applied Linguistics, First Edition, Oxford.

Bennet, W.A.—Aspects of Language and Language Teaching, 1968, Cambridge.

Corder, S.P.—Introducing Applied Linguistics, Penguin, 1977.

Corder, S.P.—The Visual Element in Language Teaching, Longmans, 1966.

Lado, Robert—Language Teaching (A Scientific Approach), Tata Mc Graw Hill Pub. Co. Ltd., 1974.

Mackey, W.F.—Language Teaching Analysis, Longmans, 1966

Stock, Edward M.—The Language Lab. and Modern Language Teaching, Oxford University Press, London, 1971.

Turner, J.D.—Programming for the Language Laboratory, University of London Press Ltd., 1968.

Turner, J.D.—Introduction to the Language Laboratory, University of London Press Ltd., 1968.

Unesco— The Teaching of Modern Languages, 1965.

□□